अक्षय-यौवन



कवि विनोद वैद्य भूषण

पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य, लाहौर।

प्रथम वार १०००]

[मूल्य १)

अक्षय-यौवन ।

प्रथम खंड ।

मनुष्य की प्रकृति मानसिक और शारीरिक दो भागों में विभक्त है, और यह दोनों अवस्थायें एक दूसरे से ऐसी मिली जुली हैं कि एक को समझे बिना दूसरी समझना असम्भव है ॥

हृदय की जो अवस्था होती है वही शरीर की भी होगी, और प्रत्येक शारीरिक काम के आरम्भ और अंत में मानसिक क्रिया का होना आवश्यक है ॥

पाठक मानसिक शब्द स्मरण रक्खें। इसको आंगल भाषा में *Meta-Physical* और उर्दू में 'तबई' कहते हैं, जो मन के साथ सम्बन्ध रखता है ॥

प्रत्येक वस्तु जो शरीर पर प्रभाव डालती है, वह मन या मस्तिष्क पर भी प्रभाव करती है, और जो हृदय पर प्रभाव करती है, शरीर पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। अतः मनुष्य जीवन में किसी शक्ति, कार्य, या अवस्था के विषय में कोई अंतिम परिणाम नहीं निकाला जा सकता, जब तक कि प्रस्तुत विषय की मानसिक और शारीरिक दोनों दृष्टि से छान बीन न कर ली जाय। इस छान बीन से जो परिणाम निकले उसी को सच्चा ज्ञान कहा जाता है। साधारण रीति से देखने पर भी यह बात स्पष्ट प्रकट है कि किसी अन्य प्रकार से सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ॥

जिन लोगों ने केवल शरीर का अनुशीलन किया है वे मनुष्य के तत्त्व को नहीं समझ सके और ना ही वे लोग जो केवल मानसिक अवस्थाओं का पारिशीलन करना अपना ध्येय समझ बैठे हैं। इनके फल अपूर्ण होने के कारण विद्वत्तापूर्ण नहीं हैं, अतः जो लोग ऐसे परिणामों पर अमल करते हैं वह अपने ध्येय को प्राप्त नहीं कर सके॥

अब तक स्थायी यौवन का रहस्य न मालूम होने का सब से बड़ा कारण यह है, कि जिन नियमों पर अमल करने से चिर-स्थायी यौवन प्राप्त हो सक्ता है, वह मानसिक और शारीरिक दोनों पहलुओं को लिए हुए हैं, अतः न तो केवल शारीरिक अनुसंधान और न ही केवल मानसिक अनुसंधान इसको मालूम करने में सफल हो सके हैं। एक और कारण यह है कि शरीर विद्या तो मनुष्य की सीमा नियत करती है, और मानसिक विद्या शरीर की रचना का पूर्ण ज्ञान रखने के कारण मनुष्य के लिए सीमा उत्पन्न करती है।

पुराने विचार चाहे बिल्कुल शारीरिक हों या मानसिक,, मनुष्य को ऐसा काम करने की शक्ति नहीं देते जो कि पहिले साधारणतया न किया जाता हो, और क्योंकि चिरस्थायी यौवन को अभी तक साधारण सफलता प्राप्त नहीं हुई अतः विचारों में एक नवीन परिवर्तन होना आवश्यक है। पूर्व इसके कि मनुष्य सदैव जवान रहने की विद्या सीख सके, नई विचार शैली को जिसका कि दूसरा नाम "तात्त्विक विज्ञान" (Exact saince) है, द्वारा यौवन को स्थिर रखने की विधि सीख सकता है, क्योंकि एग्जेक्ट साइन्स या विज्ञान से मनुष्य में सब कुछ सीखने की शक्ति विद्यमान है। तात्विक विज्ञान इस बात को सिद्ध हुए नियमों के रूप में ही उपस्थित नहीं करती, बल्कि ऐसे नियम बताती है जिनसे कि बिना इस बात के विचारे कि उनसे प्रमाण प्राप्त करने का काम कौन मनुष्य करता है, इस नियम का प्रमाण मिलना संभव है।

इस सिद्धांत से कि "मनुष्य जो सीखे वही कर सकता है" केवल यही मतलब नहीं समझना चाहिए कि वाह्य ज्ञान जिसका सम्बन्ध अनुभव होने वाले कामों से है, प्राप्त करने योग्य है, बल्कि यह, एक ऐसा विषय है जो हर प्रकार की ज्ञान की दशा में

यथार्थ और ठीक है, यहां तक कि जो कुछ उद्देश निश्चित किया जाय, उसको यथार्थ रूप में प्राप्त करने की दशा में भी ठीक है।

जब मनुष्य किसी ध्येय का विचार कर सक्ता है, तो वास्तव में प्राप्त भी कर सकता है, यह विज्ञानही का फल है। और चूंकि किसी भी इच्छित गुण का हद अनुमान नहीं किया जा सक्ता है, अतः प्रत्येक पूर्ण करने योग्य वस्तु को पूर्ण करना संभव है, क्योंकि गुण और उसकी पूर्ति कार्य कारण की भांति साथ २ मिलते हैं।

यह बात कि स्थायी यौवन का अनुमान हो सक्ता है, प्रमाणित करता है कि यह यथार्थ में प्राप्त करने योग्य वस्तु है। तात्त्विक विज्ञान-द्वारा कोई सीमा निश्चित नहीं हो सकती, यदि यथार्थ में इसकी प्राप्ति संभव न हो। किन्तु बहुत से आदमियों का अपने ध्येय तक पहुंचने में सफल न होने का कारण तात्त्विक विज्ञान के नियमों पर अमल न करना है। वे या तो बिल्कुल शारीरिक नियमों पर निर्भर रहते हैं या केवल मानसिक नियमों पर; और यह नहीं मानते कि मनुष्य शारीरिक और मानसिक दो भागों से बना है, और इसीलिए मनुष्य जीवन में किसी प्रकार की उन्नति, या परिवर्त्तन उपस्थित नहीं हो सकता जब तक कि शारीरिक और मानसिक दोनों नियमों को सामान्य रूप से और एक साथ अमल में न लाया जावे।

यह सिद्धान्त कि मनुष्य सब कुछ सीख सकता है, शारीरिक और मानसिक नियमों की विवेचना का फल है। यदि मन की विवेचना वाह्य संसार के विषय में की जावे तो प्रतीत होगा कि ज्ञान, अनुमान और बुद्धि की शक्तियां अपरिमित हैं। मन की गति के आरम्भिक नियमों का परिशीलन प्रकट करेगा कि वह जितना ही अधिक सीखने की ओर होगा, उतना ही अधिक उसमें सीखने की शक्ति बढ़ेगी, और मन जब अगणित बातों को सीखने की ओर आकर्षित करेगा तो वह उतना ही अधिक अपरिमित व अनन्त समय में सीखने की शक्ति को बढाता चला जायगा।

अतः दर्शन शास्त्र द्वारा इस परिणाम पर पहुंचते हैं, कि मन जो चाहे सीख सकता है, और जो मनुष्य प्रत्येक वस्तु सीखने

आरम्भ करे, हमेशा प्रत्येक वस्तु निरन्तर सीखता चला जावेगा।

ये युक्तियां न केवल इस बात को निश्चित करती हैं कि मनुष्य युवा रहना सीख सकता है, प्रत्युत यह भी प्रमाणित करती हैं कि जब वह युवा है, तो जिस वस्तु को वह आत्मिक उत्तेजना से प्रेरित किए जाने और या उसके जीवन को बड़ा सुन्दर और अनुकरणयि बनाने में सहायता देने के कारण सीखना चाहे, निरन्तर सीखता चला जा सक्ता है, अतः तात्त्विक विज्ञान से यौवन की स्थिरता को सीखना और जीवन के अधिक से अधिक खुशियों को भोगने में सफलता प्राप्त करना संभव है। किन्तु यह बातें संभावना से भी ऊपर हैं।

यदि मन को भली भांति समझ लिया जाय तो मालूम होगा कि मनुष्य वह काम करना भी सीख सक्ता है जो कि प्रथम कभी न किया गया हो और इस प्रकार मनुष्य के राज्य से "असंभव" शब्द बिल्कुल दूर कर दिया जा सक्ता है, किन्तु यौवन को स्थिर रखने में पहिले सफलता प्राप्त हो चुकी है, अतः यह बात संभावना मात्र से बढ़कर है। जो काम पहिले किया जा चुका हो, दोबारा भी किया जा सक्ता है और उत्तम रीति से किया जा सक्ता है। कुछ समय तक प्रत्येक मनुष्य युवा रह चुका है, अतः यौवन की स्थिरता का सिद्धान्त मनुष्य की शक्ति में गुप्त रीति से विद्यमान है। यह एक प्राकृतिक नियम है कि, जो शक्ति मनुष्य में गुप्त रूप से विद्यमान है, उसको जागृत किया जा सक्ता है और जब तक चाहें उसे प्रयोग में लाया जा सक्ता है। यही बात प्रत्यक्ष सिद्ध करती है कि, कोई मनुष्य बिना इस विचार के कि उस समय उसकी अवस्था क्या है, और उसकी वर्त्तमान शारीरिक अवस्था क्या है, युवा हो सक्ता है और जब तक चाहे युवा ही रह सकता है। इस सिद्धान्त को पाहिले से अधिक प्रभावशाली, और अयुक्त ख्याल किया जा सक्ता है, किन्तु कोई मनुष्य मानवी प्रकृति का अनुशीलन करने से इस परिणाम पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता; अतः यह एक निश्चित बात है; और सचाई को हमेशा स्वीकार करना होगा, चाहे वह कहानी से भी कहीं बढ़कर अद्भुत क्यों न मालूम होती हो॥

यौवन को स्थिर रखने की विद्या सीखने के लिये सबसे पहिले यह बात आवश्यक है कि, अपने ध्येय की ओर चित्त को आकर्षित किया जाय। यह प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि अपने तमाम विचारों का मूल इस सच्चे विश्वास पर रखा जाय कि, मानवी शक्ति में किसी वस्तु की सीमा या अंत नहीं है और सम्पूर्ण बातों में मनुष्य के अस्तित्व और अपने ध्येय प्राप्ति की प्रबल इच्छा के महत्व का स्वीकार किया जाना आवश्यक है। जब तक कि मनुष्य की शक्ति को परिमित समझा जाय तब तक मनुष्य का पूर्ण विकाश होना भी संभव नहीं है, और जब तक मनुष्य अपनी शक्ति के परिमित होने का विचार बिल्कुल दूर न कर दे तब तक मनुष्य कोई महती उन्नति कर ही नहीं सकता। मनुष्य को अपनी दृष्टि सदा आगे रखनी चाहिये। सदैव युवा रहने की विद्या, एक बहुत उत्तम विद्या है, और यद्यपि सीखने पर वह बहुत साधारण विद्या है, किन्तु उस समय तक इसको सीखने में सफलता प्राप्त नहीं हो सक्ती, जब तक मन में सदा उत्तम अवस्था में रहने का स्वभाव पैदा न हो जावे। मन की ऐसी अवस्था प्राप्त करने और उस अवस्था में सदा रहने के लिये जो कुछ आवश्यक है वह यह है कि, जीवन का मूल इस विश्वास पर रक्खा जाय कि मनुष्य की शक्तियों की कोई सीमा नहीं है।

यह सिद्धान्त कि मनुष्य की शक्तियों की कोई सीमा नहीं है तात्विक विज्ञान द्वारा सिद्ध किया गया है, अतः जो मनुष्य इस विज्ञान के नियमों पर यत्न करेगा, उसको प्रगट हो जायगा कि मनुष्य की शक्ति परिमित नहीं है। इस से उसको संतोष हो जायगा और वह स्वभावतः आवश्यक बातों को ग्रहण कर लेगा॥

तात्विक विज्ञान पर अमल करना क्या है?:-मानव जीवन की प्रत्येक वस्तु को दो दृष्टियों से देखना:—अर्थात् आत्मिक और शारीरिक दृष्टि से। जो लोग इससे अनभिज्ञ हैं, उन्हें इसकी बिधियां और इनके प्रयोग के विषय में विस्तृत हाल अगले पृष्ठों में मिलेंगे। सदा युवा रहने के लिये मन की नियमित और उपयुक्त दशा की आवश्यकता इस बात से भली भांति प्रगट है कि, शरीरधारी

मनुष्य अन्तःकरण के विचारों का वाह्य रूप है और अन्तःकरण केवल मन की निरन्तर दशाओं का ही परिपाक है।

अनुवादक का नोट—जब हम सोच कर काम करें तो उसको कान्शंस कहते हैं, किन्तु जब ऐसा स्वभाव हो जाय कि बिना सोचे वही होता जावे तो उसको सबकांशंस कहते हैं। कभी आपने नया मकान बदला हो तो दफ्तर इत्यादि से आते हुए अपने ध्यान में मग्न पहले घर की ओर क्यों चले जाते हैं। वह इसलिए कि मार्ग मन की सबकांशंस दशा में आ चुका है। कोई२ वाक्य ऐसे कंठस्थ हो जाते हैं कि दूसरी ओर ध्यान होने पर भी वह मुंह से निकल पड़ते हैं। ग्रन्थकार कहता है कि, हमारा शरीर वस्तुतः मन की सबकांशंस शक्ति का रूप है। हमको इन नये विचारों को भी उसके अंदर इस प्रकार फेरना चाहिये॥)

मनुष्य का शरीर प्रतक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सबकांशंस संकल्प का फल है, और मनुष्य इच्छानुसार किसी भी मानसिक अवस्था को प्राप्त कर सकता है; अतः शरीर में जो कुछ भी परिवर्तन इत्यादि करना चाहें या जो अवस्था बनाना चाहें बना सकते हैं। सब से अन्तिम परीक्षा से मालूम होता है कि मनुष्य की शारीरिक अवस्था में जो कुछ भी प्रगट होता है उसका आरंभिक कारण सबकांशंस संकल्प है, और चूंकि मनुष्य सबकांशंस रीति पर जो और जैसे चाहें विचार कर सक्ता है, इसलिये मनुष्य की शारीरिक अवस्था (स्वास्थ्य) और भाग्य उसके अपने हाथों में है। अतः यह बात कि मनुष्य में अपना यौवन नित्य स्थिर रखने की शक्ति विद्यमान है, एक प्रमाणित बात है॥

किन्तु इच्छित फल प्राप्त करने के लिये सम्पूर्ण विचार प्राकृतिक नियमों के अनुकूल होने चाहियें, और उन विचारों को शारीरिक व मानसिक अवस्थानुसार प्राकृतिक नियमों के अनुकूल चलाना चाहिये। शारीरिक कामों में इन नियमों को पालन करना और मानसिक कामों में इनकी उपेक्षा करना अथवा मानसिक कामों में इनका पालन करना और शारीरिक कामों में इन पर ध्यान न देना, भूल है, अतः तात्त्विक विज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है:-अर्थात् उस विद्या को प्राप्त करने की आवश्यकता है जिससे कि मनुष्य की शारीरिक व मानसिक शक्तियों का ज्ञान हो।

प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलने के लिये आवश्यक है कि मनुष्य उन्हीं कामों का बीड़ा उठावे, जिसको पूरा करना उस की शक्ति से बाहर न हो। यद्यपि कोई बात असंभव नहीं है, किन्तु सब बातें प्राकृतिक नियमों के अनुसार काम करने से ही संभव हो सकती हैं॥

यदि प्राकृतिक नियमों के अनुकूल बुढ़ापे का आजाना अनिवार्य होता तो यौवन का स्थिर रहना संभव नहीं हो सकता और मनुष्य किसी ऐसे नियम पर भी चलने से युवा नहीं रह सक्ता, जिस से कि स्वयं प्रकृति किशोरावस्था उत्पन्न करती है, किन्तु ऐसा नहीं है, प्राकृतिक नियम किसी मानवी अवस्था को अनिवार्य ही नहीं सिद्ध करता॥

मनुष्य की प्रकृति एक साधन है न कि अंतिम फल; अतः उसको मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित, परिवर्धित किया जा सकता है। प्राकृतिक नियमों का उद्देश्य यह है कि, मनुष्य को ऐसे साधन प्रस्तुत किये जावें जो कि उसके जीवनोद्देश्य को बढ़ाने में सहायक हो सकें। और क्योंकि उसका उद्देश्य उन्नति है, इसलिये प्रकृति हर एक ऐसी वस्तु प्रस्तुत करने को तैयार है जो कि उन्नति के लिये आवश्यक हो॥

स्थायी यौवन भी उन्हीं आवश्यकताओं में से है, क्योंकि स्थायी यौवन के बिना निरन्तर उन्नति करने का विचार भी नहीं किया जा सक्ता। यह जीवन के प्रत्येक नियम के विरुद्ध है, अतः प्रकृति ने आवश्यक रूप से यौवन स्थिर रखने के लिये समस्त साधन प्रस्तुत किये होंगे, जैसा कि अगले पृष्ठों में इसका वर्णन किया जायगा॥

यदि मनुष्य की परीक्षा तात्त्विक विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार की जाय तो वे नियम हमको मालूम हो सकते हैं, जो यौवन स्थिर रख सकते हैं, रखते हैं और रखेंगे, और क्योंकि ये नियम मानवी प्रकृति का स्थायी अंश हैं, इसलिये मनुष्य के अंतःकरण में स्वभावतः यह विचार उत्पन्न होता है कि यौवन को स्थिर रखा जा सक्ता है॥

प्रत्येक मनुष्य के हृदय में जहां इस बात का सूक्ष्म ज्ञान है, और उसकी वृद्धि की जाती है, स्थायी जवानी की इच्छा स्वयं उत्पन्न

होजाती है, और जिस बात को हमारा हृदय स्वीकार करे कि हम कर सकते हैं, उसको पूरा करने की इच्छा हम अवश्य करेंगे, और वह इच्छा दिन प्रति दिन पुष्ट होती चली जायगी।

जीवनोद्देश्य को मालूम करने से भी यौवन स्थिर रखने की प्रबल अकांक्षा उत्पन्न हो जाएगी। मनुष्य की आन्तरिक सूक्ष्म विवेक शक्ति अत्यन्त स्पष्ट रूप से देखती है कि अबोध उन्नति और स्थायी यौवन उच्च जीवन के लिए उत्तम मार्ग है। ये दो ऐसी वस्तुएं हैं जो पृथक नहीं की जा सकती हैं॥

अतः यह बात प्रकट है कि यदि मनुष्य को यहां अपने जीवनोद्देश्य की पूर्त्ति करना है तो उसे अपने यौवन को स्थिर रखना चाहिए। अपना और अपने जीवन का सदुपयोग करने के लिए उसे आवश्यक है कि वह यौवन को चिरस्थायी रूप से स्थिर रखने की विद्या सीखे।

मनुष्य का आगमन इस संसार में आकस्मिक नहीं होता, प्रत्युत वह इस संसार में किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये आया है, क्योंकि इस संसार में अबाध उन्नति करनी इस उद्देश्य पूर्ति के लिये आवश्यक है, इसलिये इस जीवन में कोई ऐसी बात नहीं होने देनी चाहिये जो कि उन्नति को रोकती है। उन्नति का रोकने का सब से बडा कारण वृद्धावस्था है॥

बूढ़ा होने से मनुष्य निर्बल हो जाता है और उसका स्वास्थ्य क्षीण होने से वह असफल होजाता है, इसलिये यह जीवन के नियम को तोड़ता है और जीवनोद्देश्य के मार्ग में एक ऐसी रुकावट है जिसको दूर करना आवश्यक है, यदि मनुष्य अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहता है, जिसके लिये कि वह पैदा किया गया है।

वास्तव में मनुष्य का यह धर्म है कि, वह सब कुछ, जो कुछ कि उसकी सक्तियों से संभव है, अवश्य प्राप्त करे। मनुष्य की वर्त्तमान परिस्थिति जिन अवस्थाओं को प्राप्त करने और जिन कार्य्यों का सम्पादन करने की आज्ञा देती है, उन को प्राप्त करना और सम्पादन करना आवश्यक है। अब उसे जीवन से यह सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहिये, जो कि वह प्राप्त कर

सकता है। उसे अपनी समस्त आत्म शक्तियों का विकास करना चाहिये। उसका जीवन सब प्रकार के ऐश्वर्य से भर जाना चाहिये। उसकी कामनाएं पूर्ण होनी चाहियें और उसे आनन्दमय जीवन व्यतीत करना चाहिये। किन्तु पूर्व इसके कि वह ऐसा जीवन व्यतीत कर सके उसे नित्य युवा रहना सीखना आवश्यक है और तत्त्वविज्ञान ही इस बात की घोषणा करता है कि यह बात संभव है!!

द्वितीय खंड।

जब मनुष्य अपने आप में होना सीख जावेगा तो बिना प्रयत्न भी उसका यौवन स्थिर रहेगा।

मनुष्य के सारे शरीर में एक नया बनने या ताजा होने का काम बराबर जारी है। मनुष्य के शरीर का प्रत्येक परमाणु एक निश्चित समय के बाद निकल जाता है और उसके स्थान पर एक नया परमाणु आ जाता है। यह निश्चित समय भिन्न २ दशाओं में चंद सप्ताह से ८—९ सप्ताह तक हो सक्ता है। कभी २ एक वर्ष तक। अतः किसी समय भी यह नहीं कहा जा सक्ता कि मनुष्य के शरीर का कोई भाग एक साल से अधिक का है। मानव शरीर शास्त्र में यह एक अद्भुत और आवश्यक वस्तु है; और इससे अकाट्य रूप से यह सिद्ध होता है कि, वृद्धता लाने वाली क्रिया एक कृत्रिम वस्तु है, जिसे मनुष्यों ने स्वयं ही अपनी भूल से काम पर लगाया है, न कि प्रकृति ने।

सदैव जवान रहना स्वाभाविक है, और वृद्ध रहना अस्वाभाविक, अतः युवा रहने के लिए मनुष्य को जो कुछ करना है वह केवल यह है कि स्वाभाविक बन जावे:—आप में हो जावे, अर्थात् प्रकृति जो कुछ उसे बना रही है, वही रहे॥

२

मनुष्य को अपने शरीर में जवानी पैदा करना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रकृति सदैव यह काम कर रही है, बल्कि आवश्यक बात यह है कि जब शरीर हमेशा जवान होता है तो उस के वृद्ध होने के विचार को ही दूर किया जाय। जवान रहना सीखने का तात्पर्य केवल यही है कि जो कुछ मनुष्य यथार्थ में है, वही प्रगट होना सीखे। अतः यह एक अत्यन्त साधारण बात है, कोई नवीन बात नहीं सीखनी और ना ही कोई विशेष कार्य करना है, बल्कि केवल एक काम का करना छोड़ दो जो कि तुम कर रहे हो और शरीर को अपनी प्रकृति पर छोड़ दो, चाहे वह कैसी ही हो।

यह बात कि शरीर सदैव युवा रहता है, इस बात का कारण होना चाहिए कि, शरीर हमेशा जवान दिखाई दे और मनुष्य अनुभव करे कि मैं जवान हूं, चाहे उसकी आयु कितनी हो गई हो। उसका भौतिक शरीर कभी भी ८—९ मास से अधिक आयु का नहीं होता बल्कि उसके शरीर का अधिकांश भाग गत कई सप्ताहों में ही बिल्कुल नए मसाले से तैयार हुआ होता है।

प्रकृति का यह निश्चित नियम है कि अशीति वर्षीय वृद्ध का शरीर वैसा ही नवीन है, जैसा कि १२ मास के बच्चे का यद्यपि आजकल यह सचाई अत्यन्त आश्चर्य जनक प्रतीत होती है।

प्रकृति के राज्य में कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि क्यों एक आशीति वर्षीय वृद्ध को एक वर्षीय बालक से अधिक वयस्क देख पड़ना चाहिए। परन्तु यह बात कि संसार में मनुष्यों की आयु जितनी अधिक होती जाती है, उतने ही वे बूढ़े व दुर्बल दिखाई देते हैं और वे अपने आप को वृद्ध अनुभव करते हैं, सिद्ध करती है कि, प्रकृति के किसी बडे भारी नियम का निरन्तर उलंघन हो रहा है।

यह बड़ा नियम नित्यनवीन परिवर्त्तन का नियम है, जोकि मनुष्य के शरीर का नवीन रूप से निर्माण करता रहता है, और शरीर में प्रत्येक नस या सूक्ष्म तंतुओं को, कुछ सप्ताह या

महीने वर्त चुकने के अनन्तर मिटा देता है और उसके स्थान पर नए नस व तंतुओं को बना देता है॥

शरीर के नवीन परमाणु और तंतु यथार्थ में नए होते हैं, जैसे वसन्त में हरे २ पत्ते। जब वे प्रथम बनाए जाते हैं तो वे ८० वर्ष के बूढ़े और एक वर्ष के बच्चे में एक समान नए होते हैं। किन्तु अब प्रश्न यह होता है कि, क्यों ये नए परमाणु अशीति वर्षीय आदमी के शरीर में शीघ्र ही पुरानी व थकी मांदी दिखाई देने वाली शकल धारण कर लेते हैं? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर देना विज्ञान (साइंस) के लिए आवश्यक है, और साथ ही कोई वैज्ञानिक इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता है। बालक के नवीन परमाणु उस समय तक नवीन ही देख पडते हैं, जब तक कि उनके स्थान पर और नए परमाणु नहीं बन जाते, किन्तु अशीति वर्षीय मनुष्य के शरीर में इन्हीं नए परमाणुओं की वही दशा क्यों नहीं होती? लड़के के शरीर में नवीन परमाणु उस समय तक ताजा रहते हैं जब तक कि वे शरीर में हैं, जिसकी अवधि अधिक से अधिक कुछ मास होती है, किन्तु वह अशीति वर्षीय मनुष्य की दशा में लगभग पैदा होते ही निर्बल और निकम्मे हो जाते हैं और उन पर कुम्ललाहट (मुर्दनी) सी छा जाती है। इस का क्या कारण है? कोई न कोई कारण होना आवश्यक है और वस्तुतः उसका कारण है जो कि तत्त्वविज्ञान ने प्राप्त कर लिया है।

नित्य नया बनने के नियम का उद्देश केवल मनुष्य के शरीर का नवीन परिवर्त्तन करना ही नहीं है, बल्कि उसका मुख्य उद्देश्य शरीर की मरम्मत करना औरउस को नवीन जन्म देना है। नये रूप से जन्म देनेवाला नियम ही क्रिया में आया हुआ, नये रूप से परिवर्त्तन करने वाले नियमों को अपना काम करने के लिये गति देता है।

मनुष्य के शरीर के तन्तु और परमाणु आदि विशेष २ उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए बनाए गए हैं और उनकी उत्पत्ति के साथ ही उन में कुछ न कुछ शक्तियां भरी होती है। जब यह सारी शक्तियां अपना काम कर चुकती हैं, तो इन का उद्देश्य पूर्ण हो

जाता है और प्रकृति फिर उसी में शक्ति भरने के स्थान में उसे रद्दी की भांति नष्ट कर देती है, और उसके स्थान एक नवीन वस्तु उत्पन्न कर देती है जो कि नवजीवन और शक्ति से भरी हुई होती है।

मनुष्य के शरीर में यह पुनर्जन्म की क्रिया हर समय जारी रहती है। जिस समय शरीर का कोई परमाणु बेकार होजाता है, उसी समय वह हटा दिया जाता है और उसके स्थान पर नया आ जाता है। अतः प्राकृतिक रूप से मनुष्य के शरीर में कोई ऐसा अवसर नहीं है जिससे कि एक भी निर्बल मुरझाया हुआ वा बेकार परमाणुओं का गुच्छा उसके अन्दर रह सके। जो शरीर अपनी प्राकृतिक अवस्था में हो उसमें केवल ताजे और शक्ति शाली परमाणु ही रह सकते हैं, ज्यों ही इनमें बल और जीवन नहीं रहता वे तत्काल ही मल की तरह नष्ट हो जाते हैं। इसलिए यह बात कि जो लोग ३० या ४० वर्ष की आयु के होते हैं, उनके अन्दर मुर्झाए हुए निकम्मे और पुराने दिखलाई देने वाले परमाणु होते हैं, सिद्ध करती है कि, उनका शरीर अपनी प्राकृतिक अवस्था में नहीं है; इसीलिए पुनर्जन्म का नियम उनमें अपने काम को पूर्ण रीति से नहीं करने पाता और वह मनुष्य प्रकृति का नियम उलंघन करने के कारण न्याय-संगत काम नहीं कर रहा अथवा यों कहिए वह अपने आप में नहीं है।

जब तक कोई मनुष्य स्वयं अपने साथ उचित व्यवहार करता है, अर्थात् अपनी प्राकृतिक अवस्था में रहता है, तब तक यह बात असंभव है कि वह बूढा दीखने लगे अथवा बुढ़ापा अनुभव करे। जब मनुष्य अपने आप, अर्थात् प्राकृतिक अवस्था में है तो वह अवश्य जवान है, क्योंकि प्रकृति ने उसे ऐसा ही बनाया है। इसलिए जो मनुष्य अपने आप में रहना सीख जाय उसका यौवन बिना प्रयत्न ही स्थिर रहेगा।

यौवन स्थिर रखने के लिए यत्न करने से यौवन स्थिर नहीं रह सकता। जो बात तुम्हें प्रकृति से ही प्राप्त है उसे प्राप्त करने के यत्न करने का तात्पर्य तो यह हुआ कि तुम

उस पर विश्वास नहीं करते जो कुछ कि तुम्हारे पास है। फल यह होगा कि अपने प्रयत्न को उलटी ओर ले जाकर उद्देश्य की सिद्धि न हो सकेगी। जब मनुष्य अपने आप को समझ लेगा और उसे अपनी प्रकृति के अनुसार रहना आ जावेगा, तो उसे स्वयं ही अपनी वास्तविक शक्ति का ज्ञान हो जावेगा। उसे ज्ञान हो जावेगा कि उसका सारा शरीर हर समय नवीन रूप से बनाया जा रहा है। इस प्रकार वह हर समय नए बनने की क्रिया में हस्ताक्षेप करना छोड़ देगा और उसे अनुभव होने लग जावेगा कि वह हर समय जवान है और उसमें सदैव अपने को अपनी असली दशा में अनुभव और प्रकट करने की इच्छा नित्य बढ़ती चली जावेगी।

जितने ही पूर्ण रूप से मन को अपनी प्रकृति का ज्ञान होता है और जितना ही अधिक मनुष्य को अपने वस्तुतत्त्व और आत्मा का ज्ञान होता है उतना ही अधिक अपने यौवन को स्थिर रखने की इच्छा मनुष्य में प्रबल होती जाती है। इसका कारण और मूल यही है कि मनुष्य अपने विषय में जितना ही अधिक ज्ञान प्राप्त करेगा उतना ही उसका मन जीवन के मुख्य २ नियमों को समझता जावेगा; और फल यह होगा कि उसमें प्रकृति के उन नियमों के अनुसार काम करने की प्रवृत्ति प्रबल होती जावेगी।

अपनी सत्ता के मूलीभूत नियमों के अनुसार काम करने का तात्पर्य अपने आप में ही होना है, और अपने आप में होना नित्य जवान होना है, क्योंकि प्रकृति सदैव हमको नवयौवन दे रही है॥

प्रत्येक रसायनज्ञ इस बात की विवेचना कर सक्ता है कि प्रकृति मनुष्य को इसी जीर्ण परिवर्त्तन नियम के अनुसार हर समय जवान बना रही है, और प्रत्येक मानव जीवन शास्त्रवेत्ता इस बात को जानता है कि ज्योंही यह नवकरण नियम बंद होगा, उसी समय जीवन नष्ट हो जायगा। जब शरीर के अणु अपना कार्य कर चुकते हैं तो वे केवल मल के रूप में परिवर्त्तित हो जाते हैं, इस लिये शरीर का कोई भी परमाणु शरीर में कुछ

मास से अधिक काल तक काम के योग्य नहीं रह सक्ता। इस लिये यदि जीर्ण परिवर्त्तन का काम स्थगित कर दिया जाय तो कुछ ही मास में सारा शरीर रद्दी का ढेर हो जायगा। परन्तु नहीं, नवीन रूप से परिवर्त्तन की नियम क्रिया शरीर के जीवन को स्थिर रखने के लिये शरीर के प्रत्येक परमाणुओं को हटा देती है, जब कि वह चंद मास तक शरीर में काम कर चुके हों, और उनके स्थान पर नये परमाणु उत्पन्न कर देती है; सुतरां सारा का सारा शरीर सदैव नवीन ही बनाया जा रहा है। यथार्थ बात तो यह है कि, एक दिन जीवित रहने के लिये भी मनुष्य को इस नित्य जीर्ण परिवर्त्तन के नियम के हाथों से गुज़रना आवश्यक है॥

मनुष्य को स्वभावतः इस नियम के हाथों में स्थायी रूप से रक्खा गया है और वह सदा इस नियम में बद्ध रहेगा; या उस समय तक यह नियम उस पर अपना अमल करता चला जावेगा, जब तक कि वह इस नियम का हर प्रकार से उल्लंघन करके अपने जीवन से सम्बन्ध न तोड़ ले॥

इस बात से कि मानवी शरीर सदैव जीर्ण परिवर्त्तन नियम में बद्ध है और इसी कारण से स्थिर भी है, सिद्ध होता है कि सदैव इसको नवीन किया जा रहा है, और यह सदैव युवावस्था में रखा जाता है॥

जिस समय शरीर का नवीन रूप से बनना बन्द हो जायगा, उस समय उसके जीवन का अंत हो जायगा। जीवन का क्रम जारी रहने के लिए नवीन रूप से पुनः निर्माण का क्रम जारी रहना आवश्यक है। और पुनः निर्माण नया जन्म है अथवा यों कहो कि स्थायी यौवन है। इस जीर्ण परिवर्त्तन नियम पर ध्यान पूर्वक विचार किया जाय तो प्रगट होता है, कि मानवी शरीर के परमाणुओं में से लग भग ९० फी सदी परमाणु ४ मास से थोड़े समय में ही परिवर्त्तित हो जाते हैं। जिन मांसपेशियों से प्रति दिन बहुत काम लिया जाता है, वे तो ३, ४, ५ सप्ताहों में ही बिल्कुल ताज़े हो जाते हैं। परिवर्त्तन का समय परिश्रम, शारीरिक स्वास्थ्य, व शक्ति पर निर्भर होता है॥

वह परिश्रम उत्तम है, जो कभी मर्यादा को उल्लंघन नहीं करता

और असावधानी से नहीं किया जाता। केवल मशीन की भांति किए हुए व्यायाम मांस पेशियों को निर्बल कर देते हैं। और बहुत कठिन व्यायाम बार २ करने से शरीर के ऐसे सूक्ष्म अवयवों को नष्ट कर देता है कि जो अभी बलवान और नवीन है। शारीरिक व्यायाम से अभिप्राय यह है कि जितनी शक्ति उत्पन्न होती है उसे विरचन क्रिया में लगाया जावे और जब यह सारी शक्ति निर्माण के काम में लगी हुई हो तो उस मनुष्य का सारा शरीर क्रम से शीघ्र ही पूर्ण रूप से नवीन और तरो ताज़ा होता चला जावेगा, अतः यह बात स्पष्ट है कि मजबूरी से किया हुआ परिश्रम (व्यायामाधिक्य) और या परिश्रम का अभाव (व्यायाम न करना) जीर्ण अंशों के परिवर्त्तन क्रम में विघ्न करेगा। यही कारण है कि साधारण पहलवान शीघ्र ही बूढ़ा हो जाता है और छोटी आयु में ही मृत्यु का ग्रास होता है, जिसका कारण यह होता है कि वह व्यायाम बहुत कठिन और या मजबूरन बिना समझे मशीन की तरह करता रहता है।

जिन मांस पेशियों को ऐसे काम में या व्यायाम में लगाया जाता है, जोकि बहुत आनन्ददायक भी हो तो उन मांस पेशियों का अत्युत्तम व्यायाम होता है, और वे थोड़े ही समय में पूर्ण रूप से नई हो जाती हैं। तमाम पट्ठों की नए रूप से रचना होता है, चाहे उन्हें पूर्ण व्यायाम प्राप्त हो या न, किन्तु जिनका व्यायाम बहुत कम होता है वे परमाणु अधिक से अधिक साल भर तक शरीर में रह सक्ते हैं, फिर वे भी नष्ट हो जाते हैं।

शक्तिदायी अवयव यथा हृदय, आमाशय, फेफड़े इत्यादि शीघ्र २ अपने आप को ताजा करते हैं, यदि शारीरिक अवस्था ठीक हो।

साधारण मनुष्य के जो नियमानुसार सांस लेता हो और और ताजी वायु में रहता हो केवल ३ फेफड़े प्रतिवर्ष नए होते हैं। यदि आमाशय को अधिक न भरा जाय और ना ही

उसकी शक्ति का दुरुपयोग किया जाय तो प्रतिवर्ष दो तीन बार नया बन जाता है। पेट सम्बन्धी अन्य अवयवों की भी यही दशा है।

हृदय, नाड़ियां, ज्ञानतन्तु, मस्तिष्क इत्यादि ६० से ९० दिन तक में नये उत्पन्न हो जाते हैं, जब कि त्वचा ८, १० दिन में ही बिल्कुल बदल जाया करती है।

मानवी शरीर के अस्थि भाग में परिवर्त्तनक्रिया पूर्ण होने के लिये सब से अधिक समय की आवश्यकता होती है, वह भिन्न २ दशाओं में ७ मास से १ वर्ष तक हो सक्ता है। कभी २ यह अवधि १४ मास होसक्ती है।

जब शरीर का स्वास्थ्य पूर्ण न हो तो परिवर्त्तन क्रिया में कुछ विघ्न हो जाता है, किन्तु यह बात निश्चित है कि पुराने से पुराने भी रोगी का सारा शरीर डेढ़ वर्ष से कम समय में बिल्कुल नया हो जाता है॥

इन बातों के होते हुये बुढ़ापा आने का कौन सा कारण है? यह नवीनकरण की क्रिया सदा जारी रहती है, और जब तक मनुष्य जीता रहे तब तक बहुत सूक्ष्म भेद से इसी प्रकार रहेगी इसी लिये कहा जाता है कि, मानवी देह सदा ही नवयुवा है। इसे तो सदा ही युवा दीख पड़ना और उसे हमेशा युवा नज़र आना चाहिये और सदा ही यौवन की शक्ति अनुभव करनी चाहिये॥

यह बात कि शरीर युवावस्था के व्यतीत होने पर इतना युवा नहीं प्रतीत होता जैसा कि वह वास्तव में है, इस बात को सिद्ध करता है कि किसी प्राकृतिक नियम की अवहेलना की गई है॥

केवल इस नियम की अवहेलना न करना और इस के अनुसार जीवन व्यतीत करना ही, यौवन स्थिर रखने के लिये आवश्यक है। यद्यपि यह नियम पूर्ण होने पर एक बहुत ही सादा मालूम होगा, किन्तु इसे पूर्ण करने के पहिले नित्य के रहन सहन और विचारों को पलटा देना पड़ेगा॥

आरंभ में मनुष्य को अपने आप में होना सीखना चाहिये। उसे केवल अपने को जवान समझना ही नहीं सीखना होगा,

प्रत्युत उसे जवान हो ही जाना चाहिये, क्योंकि वह वास्तव में जवान है ही। उसकी प्रत्येक क्रिया, गति और विचार यौवन के अनुभव, या यूं कहिये एक प्रकार के मद से रंगे होने चाहियें, जिन से यह प्रतीत हो कि "वास्तव में प्रकृति ही से मेरे में यौवन भरा हुआ है"। तत्त्व यह है कि सारे का सारा स्वभाव ही युवाओं का सा हो जाना चाहिये ॥

मनुष्य वास्तव में हर समय जवान है, और इसी से हर एक वस्तु जोकि मनुष्य के शरीर में है, हर समय जवानी की हालत में रहनी चाहिए। इसलिए जवान होने के लिए मनुष्य को कुदरत के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिए, न कि बनावटी रूप से, और ना ही बनावटी विचारों से,। उसे अपने आप में होना चाहिए और अपनी असलीयत को हर समय याद रखना चाहिये।

जवानी केवल बाह्यरूप तक परिमित नहीं है, प्रत्युत यह मनुष्य के आन्तरिक जीवन तथा अन्तःकरण के संस्कारों का फल है, जोकि मानवी शरीर के प्रत्येक परमाणु में व्याप्त हो कर उसे चिरस्थायी यौवन प्रदान करता है। अतएव कोई बाहरी औषधि या रसायन यौवन उत्पन्न नहीं कर सक्ता और ना ही रासायनिक उपचार कोई लाभ कर सकते हैं।

सारा रहस्य यह है कि मनुष्य अपनी आन्तरिक चेतनता का, जोकि सदा युवा है, ज्ञान प्राप्त करे और इसे सदा अपनी आत्मा में अनुभव करे। इस ज्ञान की प्राप्ति का साधन केवल अपने आप में होना है।

जवानी भीतर से आती है। यह मानवी शरीर के रग २ में मौजूद है, परन्तु मनुष्य विशेष नियमों का उलंघन करके जवानी को पूरे और प्राकृतिक रूप से विकसित होने में बाधा डालता है। जवानी के पूर्ण व प्राकृतिक प्रवाह को उन्नति देने के लिए मनुष्य को अपने आप में होना चाहिए। उसके विचार और उसका अन्तःकरण भी युवा होना चाहिए। और अन्तःकरण को जवान बनना सिखलाने के लिए प्रतिदिन मन में यह विचार करना चाहिए कि, मेरा शरीर प्रतिक्षण नया हो रहा है।

प्रत्येक मनुष्य को अपने में सदैव यह विचार दृढ करने चाहिएं कि उसका शरीर हमेशा जवान है और उसका प्रत्येक अंश और रग २ इस प्रकार प्रतिक्षण नया हो रहा है, जैसे कि वसन्त ऋतु में फूल और पत्ते उस ब्रह्माण्ड की अपार शक्ति से भर जाते हैं।

मन में शरीर के स्थायी यौवन के इस विश्वास को बार २ दृढ करने पर, यह विश्वास आंतरिक चेतनता की आत्मा में प्रविष्ट हो जायगा, जो कि नित्य ही युवा है, और जिसके प्रभाव से मनुष्य के प्रत्येक परमाणु में यौवन भरता है।

इस प्रकार के ज्ञान और आन्तरिक अनुभव की दशा में रहना मानो स्थायी यौवन के नियमों को पहिचानना है, और इन सिद्धान्तों और नियमों की पहिचान उन सब दुष्कर्मों और विचारों को दूर कर देता है, जिससे कि उन नियमों का उलंघन होता है।

इस प्रकार जब नित्य नए होने के नियमों का उलंघन न होगा तो शरीर हमेशा इतना जवान रहेगा और जवान दिखाई देगा, जितना जवान कि वह आन्तरिक रूप में सदा ही है, और उसे भी अनन्त काल तक यह बात अनुभव होगी कि मैं जवान हूं, चाहे वह कितने ही समय तक इस संसार में जीवित रहे।

संभव है इसमें अत्युक्ति दिखलाई दे; किन्तु यह तात्विक विज्ञान का सिद्धांत है, और चूंकि सच्चा विज्ञान शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से मनुष्य की वास्तविक प्रकृति पर और सत्य पर निर्धारित है, इसलिए इस सिद्धांत को स्वीकार करने और इस पर अमल करने के बिना और कुछ नहीं हो सकता। यह एक सचाई है कि मानवी शरीर हमेशा जवान रहता है; अतः जब मनुष्य अपने आपको अपने आप में प्रगट होने का स्वभाव डालेगा; तो बिना प्रयास ही वह जवान बना रहेगा।

तृतीय अध्याय

यदि मनुष्य को प्रतिवर्ष प्रकृति से नवीन शरीर मिलता है, तो वह बुड्ढा क्यों होता है ?

आयु के मध्य भाग में पहुंचते ही मनुष्य के रूप रंग में वृद्धता दिखलाई देने के दो कारण हैं—एक तो मनुष्य के शरीर का अस्थियों (हड्डियों) में परिवार्त्तित होते जाना है और दूसरा वृद्धावस्था। मानवी शरीर की अस्थि परिवर्त्तन की ओर प्रवृत्ति के भिन्न २ कारण हैं, जिनमें से कुछ शरीर से सम्बंध रखने वाले होते हैं और कुछ मन से। परन्तु इन सब कारणों पर ध्यान पूर्वक विचार करने से मूल कारण मानसिक कार्य क्रम में कोई न कोई हेर फेर का होना ही प्रतीत होता है। अस्थि परिवर्त्तन से तात्पर्य यहां शरीर के कुछ भागों का कठोरता में परिवर्तित होना है। (हम इसको अस्थिपरिवर्तन ही के नाम से लिखते जावेंगे।) जब शरीर के परमाणु और तन्तु अस्थिरूप ग्रहण करने लगते हैं तो मांस पेशियां (पट्ठे) कठोर होती जाती हैं, हड्डियां अधिक सख्त होती जाती हैं, और भिन्न २ अंग भारी और सुस्त होकर तमाम शरीर मुर्झाना और सूखना आरम्भ हो जाता है। इस तरह जीर्णपरिवर्तन की क्रिया में अवरोध होता है, शरीर में दूषित माद्दा बढ़ जाता है, जो शीघ्र ही शरीर पर ऐसा प्रभाव करता है कि भिन्न २ अंग इतने सुस्त हो जाते हैं कि, वे अपना २ काम नहीं कर सकते।

जब मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु अस्थि रूप धारण करने लगते हैं, तो उस में दिन प्रतिदिन आलस्य उपस्थित होने लगता है, बुद्धि मन्द होने लगती, और स्मरणशक्ति धीरे २ घटने लगती है; नया ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन और कभी २ असम्भव हो जाता है, क्योंकि मस्तिष्क में मन की आवश्यकताओं के अनुसार काम करने की शक्ति ही नहीं रहती। इससे यह बात सहज ही स्पष्ट

हो जाती है कि वृद्ध मनुष्यों को प्रायः बचपन की बात, बड़ी आयु की घटनाओं से अधिक शीघ्रता से क्यों याद आती है। बाल्यकाल में जो ज्ञान मस्तिष्क ने प्राप्त किया था, उसका प्रभाव अधिक गहरा होता था, क्योंकि उस समय मस्तिष्क नर्म और ग्रहण करने योग्य था; किन्तु बाद की बातें इतनी गहराई तक इस कारण से न पहुंच सकीं कि उस समय मस्तिष्क बहुत कठोर हो चुका था। अतः यह बात स्पष्ट प्रगट है कि बाल्यकाल के उत्पन्न हुए प्रभाव क्यों इतने सामने आते और बड़ी आयु के प्रभाव उस समय याद ही नहीं आते।

इसी बात से इसका भी कारण पता लग जाता है कि क्या बहुत से वृद्ध अपने अंतिम समय में बहुत देर के छोड़े हुए बाल्यावस्था के छोटे २ विश्वासों के वश हो जाते हैं। जब मस्तिष्क इस प्रकार कठोर हो जाता है, तो परिष्कृत गंभीर और विस्तृत विचार कठिनता से समझ सकता है, और कभी २ बिल्कुल ही नहीं समझ सकता। मन केवल उन्हीं विचारों को समझ सक्ता है जिनका कि बहुत गहरा प्रभाव पड़ा हो, जैसा कि बाल्यकाल में होता है; इससे स्वभावतः उन मनुष्यों के विश्वास और विचार भी बाल्यकाल के प्रभावों पर ही आश्रित होते हैं, जो कि प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करके अपने मस्तिष्क को कठोर बना लेते हैं।

यह बात कि वृद्धावस्था वाले प्रायः अपने आरंभिक विचारों पर फिर आते हैं, उन विचारों के अनुकूल या प्रतिकूल कुछ भी सिद्ध नहीं कर सकता है; क्योंकि इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि कठोर मस्तिष्क इतना सुस्त हो जाता है कि उन विचारों के अतिरिक्त, जो कि बड़े गहरे रूप से मस्तिष्क में खुदे होते हैं, वह और विचारों को समझ ही नहीं सकता। और क्योंकि ऐसे विचार प्रायः बचपन के ही होते हैं, इससे स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि बूढ़ों में बचपन के विचार क्यों।

जब वृद्ध लोगों का स्वभाव भी बच्चों की भांति हो जाता है तब भी इस परिवर्त्तन का यही कारण होता है। उनके मस्तिष्क इतने सुस्त और कठोर हो जाते हैं कि बड़ी उमर के सुबुद्ध,

विचारों का प्रभाव उन पर नहीं पड़ सक्ता। ऐसे मस्तिष्क केवल बाल्यकाल के गहरे विचारों ही को याद कर सक्ते हैं वचपन के विचारों के साथ उसका स्वभाव भी आ जाता है, और परिणाम यह होता है कि उनके विचार और काम दोनों बच्चों की भांति हो जाते हैं।

यह कोई आवश्यक नहीं कि बाल्य आयु में ही मस्तिष्क पर सब से गहरे प्रभाव पडते हैं; यदि मस्तिष्क ६० वर्ष की आयु में भी वैसे ही नर्म हो जैसे कि १० वर्ष की अवस्था में तो दोनों अवस्थाओं में भी एक जैसे विचारों के प्रभाव पडेंगे परन्तु देखने में यह आता है कि साधारण मनुष्य का मस्तिष्क ५० वर्ष की आयु से कठोर होना आरम्भ हो जाता है और कभी २ तो ४० या ३५ वर्ष की आयु से भी। वास्तव में बहुत उन्नत और विकसित मन वालों के मस्तिष्क पर तो ५० वर्ष की आयु के बाद ही बहुत गहरे प्रभाव पड़ते हैं परन्तु हां यदि कठोर होने की क्रिया उनके मस्तिष्क में भी आरंभ न हो गई हो। इस लिए यह बात स्पष्ट है कि जिन मनुष्यों के मन का विकास बराबर होता चला जाता है, वे यदि अपने मस्तिष्क को कठोर न बनने दें, तो वे वृद्धावस्था में ही अपने जीवन के सब से उन्नत कामों को कर सकेंगे। जितना ही वे शताब्दी की आयु के निकट होते जायंगे, उतने ही वे महान होते जायंगे।

इसलिए यदि कोई ऐसा साधन मिल जाव जिससे कि न केवल मस्तिष्क की प्रत्युत सारे शरीर की अस्थि परिवर्त्तन क्रिया बंद हो जाव, तो उन मनुष्यों के लिए, जो कि अपने जीवन का यथार्थ उपयोग करना चाहते हैं, और कुछ महान् कार्य करने की लालसा रखते हैं, इस ऐसे साधन की प्राप्ति स्वर्गीय आनन्द देने वाली होगी।

प्रकृति के प्रतिवर्ष नवीन शरीर देने पर भी मनुष्य के वृद्ध दिखलाई देने का दूसरा कारण वृद्धावस्था की और बातों और दशाओं में पाया जाता है। यह दशायें बिल्कुल ही मानसिक हैं, और उनके उत्पन्न होने का विशेष कारण मन में या अन्तःकरण में वृद्ध होने का विश्वास है।

यह विश्वास करना कि हम हर साल बूढ़े होते चले जाते हैं, और इस बात की सम्भावना करनी कि हमारी शकल भी बूढ़ों जैसी हो रही है, अपने आप में वृद्धावस्थाओं को उत्पन्न करना है। इसका परिणाम यह होता है कि शरीर के नए २ अंश भी वृद्धरूप धारण कर लेते हैं; और इससे नवीन व उन्नतिशील शरीर इतना बूढ़ा हुआ दिखाई देता है जितना वृद्ध कि, वह अपने आप को समझता है। यद्यपि उनके भी नए शरीर की असली आयु एक वर्ष से कम ही होती है।

सच जानिए वृद्धावस्था केवल आप के हृदय के विचारों का ही प्रतिबिम्ब होता है। यदि आप की आयु ५० साल की है और आप विश्वास करते हैं कि आप को ऐसा ही बूढ़ा प्रतीत होना चाहिए जैसा कि ५० वर्ष के लोग प्रायः प्रतीत होते हैं, तो आप अपने में वैसी ही वृद्धावस्था को पैदा कर लेते हैं। बस आप के नए ही शरीर के अंश २ पर ५० वर्ष के बुढ़ेपन की मोहर लग गई।

आप के नए शरीर पर इसका इतना अधिक प्रभाव पड़ेगा कि यह बुड्ढा दिखलाई देगा और स्वयं आप को भी ५० वर्ष की अवस्था की दशाओं का अनुभव होगा; किन्तु स्मरण रहे कि यह भावना बिल्कुल ही ठीक नहीं है। आप के शरीर में एक भी नस या पट्ठा ऐसा नहीं है जो कि १ वर्ष से अधिक दिन का हो बल्कि उनमें से अधिकांश ऐसे भी हैं जोकि ३ मास से भी अधिक के नहीं, सुतरां जब तक कि उनको किसी कृत्रिम मानसिक क्रिया से बदल न दिया जाय, वे ५० वर्ष के नहीं दिखलाई दे सकते।

जब किसी मनुष्य को कोई चिन्ता या मानसिक यंत्रणा हो उस समय इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल सकता है कि हृदय के भावों से शरीर में परिवर्तन हो जाता है। केवल कुछ घण्टों की ही चिन्ता से प्रत्येक मनुष्य अपनी अवस्था से बूढ़ा और क्षीण मालूम होने लगता है। तो भला सोचिए जीवन भर बराबर ऐसे बूढ़े २ विचारों को पैदा करने से कौन सा अनर्थ है, जिस की कि आशा न रक्खें ?

विचारों का स्वभाव सीधा प्रभाव करने वाला है। विचारों

का प्रभाव उनकी प्रकृति के अनुकूल ही होता है, सुतरां ऐसी धारणा रखनी कि मैं वर्ष प्रतिवर्ष, बूढा होता चला जा रहा हूं. आप के रंग रूप वा शरीर के प्रत्येक परमाणु में दिन प्रतिदिन बुढ़ापे का सिक्का जमाती जायगी।

आज जो नए परमाणु आप के शरीर में बने हैं, वे उन्हीं विचारो के प्रभाव से इतने बुड्ढे मालूम होंगे, जितने बुड्ढे कि आप अपने आप को ख्याल करते हैं। अगले वर्ष आप ख्याल करेंगे कि आप की आयु एक वर्ष अधिक हो गई है, और उस विचार प्रवाह के कारण जो लगातार मन से निकल रहे हैं आप अपने आप को एक वर्ष अधिक बूढ़ा अनुभव करेंगे। इस समय जो परमाणु बनेंगे वे वैसा ही रूप धारण करेंगे और सारा शरीर एक साल और बूढ़ा मालूम होगा।

यह ख्याल करना कि आप बुड्ढे होते चले जाते हैं, या भविष्य में कभी बुड्ढा होने की आशा करना, मन में वृद्धावस्था के लक्षण उत्पन्न करता है। अतः किसी दशा में भी वृद्धावस्था अथवा वृद्ध करने वाली अन्य बातों को किसी प्रकार भी ध्यान में नहीं लाना चाहिए।

शरीर की रासायनिक क्रिया, अवयवों की पुष्टि दायिनी प्रक्रियां तथा मस्तिष्क व ज्ञान तन्तुओं की क्रियायें, फलतः एक व्यक्ति की चेतनता के सारे अंश मन की प्रवृत्ति के आधीन हैं मन प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से मानुषी शरीर की समस्त प्राकृतिक क्रियाओं में परिवर्त्तन कर सकता है। प्रकृति की यौवन दायिनी शक्ति और नियति मन के प्रतिकूल होने पर अपना प्रभाव पूर्णरूप से नहीं कर सकती। यही काम है, जो कि हम सब का मन हम में कर रहा है। इसलिए यदि यौवन को स्थिर रखना सीखना है तो पहिले इस अत्यन्त आवश्यक विषय में मन की प्रवृत्तियों को सर्वथा ही बदल देना चाहिए।

आयु के साथ २ बालों का रंग इसलिए बदल जाता है कि सारी मनुष्य जाति का यह स्वभाव ही हो गया है, कि जब मनुष्य बुड्ढा हो ता इसके बाल अवश्य श्वेत हो जाते हैं। यह एक

पैतृक प्रवृत्ति है जो प्रत्येक मनुष्य को दाय भाग में मिलती है, किन्तु भिन्न २ मनुष्यों में भिन्न २ समय पर यह बात होती है, यह विभिन्नता विशेष कर व्यक्तिगत स्वभाव व दशाओं पर अवलम्बित है, और कभी २ शरीर और हृदय की विशेष दशाओं का भी इस पर प्रभाव पड़ता है।

आरम्भ काल में बालों के रंग बदलने की प्रवृत्ति विपरीत मानसिक दशाओं से उत्पन्न हुई थी, किन्तु फिर बार २ होने से इसका परिणाम अधिक भयंकर होता चला गया। मनुष्य की आयु ज्यों २ बढ़ती जाती है वैसे ही वह चिंता ग्रस्त होता जाता है। इससे हृदय विचार और काम की शक्तियों का दुरुपयोग होने लगता है, और चूंकि यह दशायें बालों के रंग को अधिक बदल देती हैं, इसलिए मनुष्य इसी परिवर्त्तन को अधिक आयु का फल समझने लग गया, फलतः यह सब मनुष्यों का पैतृक स्वभाव सा हो गया। अस्तु स्मरण रखिए कि सब आदतों को दूर किया जा सकता है।

अनुचित मानसिक यन्त्रणाओं में अधिक रहने से भी बालों का रंग नियत पैतृक समय से पहिले ही बदलने लग जाता है, है, और एक बार आरम्भ होने के पश्चात् भी अनुचित रूप से रहने सहने से रंग परिवर्तन होने में अधिक सहायता मिलने लगती है। कई मनुष्यों के बालों के छोटी आयु में ही श्वेत हो जाने और कइयों के सफेदी आने के बाद बहुत ही शीघ्र बिल्कुल श्वेत हो जाने का यही कारण है।

इस बात के होते हुए भी कि सारे का सारा शरीर सदैव नवीन होता रहता है, बाज़ लोगों को इस बात के समझने में कठिनाई उपस्थित होती है कि क्यों दाग फोड़े, व सूजन इत्यादि एक ही स्थान पर प्रगट होता रहता है, और प्रायः वर्षों तक उनका वही रूप रहता है। इसका उत्तर सुगमता से दिया जा जा सकता है।

शरीर का प्रत्येक परमाणु व्यक्तिगत रासायनिक प्रक्रिया से ही बनता है, और इस रासायनिक प्रक्रिया की नींव शरीर के सब कांशस जीवन में है। परमाणुओं के रूप या

ढंग को बदल देने के लिए पहिले यह रासायनिक प्रक्रिया बदलनी चाहिए। यह किसी ऐसी ही विधि से किया जा सकता है, जिसका कि प्रभाव सब कांशस हालत या इस क्रिया को तह पर पड़ सके। उन्नति के विधि पूर्वक साधनों द्वारा न केवल किसी रासायनिक क्रिया के उस सब कांशस (sub-concience) कारण ही को बदल दिया जा सकता है, बल्कि कृत्रिम रासायनिक प्रक्रिया भी पैदा की जा सकती है। यह बात शारीरिक बाह्य साधनों तथा आन्तरिक मानसिक साधनों द्वारा भी प्रायः की जा सकती है।

जब शरीर के किसी भाग को काटा जाता है तो शरीर के उस भाग की रासायनिक प्रक्रिया पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वहां अस्वाभाविक प्रक्रिया हो जाती है इन अस्वाभाविक क्रियायों से ऐसे परमाणु पैदा होंगे जो उस घाव से सादृश्य रखेंगे, जिससे कि उनका आरम्भ हुआ था; अर्थात् वे घाव के चिन्ह को पैदा करने और उसे स्थिर रखने की ओर प्रवृत्त होंगे।

किन्तु प्रकृति की प्रेरणा सदैव यह होती है कि अस्वाभाविक व कृत्रिम रासायनिक क्रियायों को दूर किया जावे और जब इस विषय में सफलता प्राप्त होती है तो चिन्ह (दाग) सर्वथा मिट जाता है। कभी २ वह केवल अस्वाभाविक क्रियायों में परिवर्त्तन भी करती है, और कभी २ उसकी चेष्टायें निष्फल भी हो जाती हैं, जिसका कारण यह होता है कि किसी २ अस्वाभाविक रासायनिक प्रक्रिया का प्रभाव इतना पड़ चुका होता है कि, प्रकृति उसे बिना सहायता के नहीं हटा सकती।

शरीर में कृत्रिम बढ़ाव या विकार ऐसी ही अस्वाभाविक क्रियायों से पैदा होते हैं जोकि मनुष्य के स्वभाव में सम्मिलित हो चुकी हों। ऐसे विशेष प्रभाव शरीर के अंदर प्रायः किसी न किसी बीमारी से पैदा होते हैं और वे उस समय तक कृत्रिम प्रभाव करते रहेंगे, जब तक कि प्रकृति उनका मूलच्छेद न करदे।

यदि प्रकृति सफल न हो सके तो दूसरी शक्तियां चाहे वे शारीरिक हो या मानसिक, प्राकृतिक दशा को नवीन रूप से पैदा करने के लिए आवश्यक होंगी।

प्रत्येक रासायनिक प्रक्रिया की नींव चाहे वह प्राकृतिक हो या अप्राकृतिक, सबकांशस (sub concions) जीवन में अवश्य रहती है। इसीलिए उन मानसिक तथा आंतरिक साधनों का जिनसे कि सबकांशस दशाएँ इच्छानुसार बदली और नवीन रूप से बनाई जा सकती हैं, महत्त्व स्पष्ट प्रतीत होता है। यदि इन्हीं सबकांशस दशाओं को बदलने की शक्ति हो, तो शरीर के किसी भी कृत्रिम बढ़ाव या विकार को दूर किया जा सकता है।

जीर्ण परमाणुओं को परिवर्त्तन करने वाला नियम समस्त अंशों को चाहे वे प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक प्रक्रिया से बने हों, अवश्य नवीन कर देगा; परन्तु उन सब उत्पन्न हुए अंशों का रूप वही होगा जो कि प्राकृतिक या अप्राकृतिक कारण भेद से, पहिले था।

शरीर के अस्वाभाविक बढ़ाव व विकार इत्यादि इतने ही शीघ्र नए हो जायंगे, जितनी जल्दी कि शरीर के दूसरे अवयव होते हैं; परन्तु वे नए परमाणु भी उसी बढ़ाव और विकार के ही रूप में होंगे; क्योंकि वे सब इस अप्राकृतिक रासायनिक प्रक्रिया से उत्पन्न हुए हैं। नित्य परिवर्त्तन के होते हुए भी शरीर के रूप में भेद नहीं पड़ता, जब तक कि सबकांशस के द्वारा मूल रासायनिक प्रक्रिया को प्राकृतिक न बना लिया जाय।

रासायनिक प्रक्रिया बदल जाय तब इस परिवर्तन का भार प्रकृति पर होना चाहिए, चाहे वह स्वयं करे, या किसी बाहरी सहायता से करे।

जो लोग मनुष्य के शरीर की रचना को समझते हैं, उन्हें स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि यह जीर्ण परिवर्त्तन का नियम निरन्तर काम करता चला जा रहा है; और प्राकृतिक व कृत्रिम प्रत्येक वस्तुओं को नये सिरे से बना रहा है। मनुष्य के शरीर में प्रत्येक वस्तु सदैव नयी होती है, इसलिए वह कभी वृद्ध प्रतीत नहीं होना चाहिए। यदि मनुष्य के शरीर में अस्थिपरिवर्त्तन (जिसका कि वर्णन हो चुका है) और वृद्धावस्था को पैदा न होने दिया जाय तो वह कभी बूढ़ा मालूम ही न होगा।

किन्तु बूढ़ करने वाली क्रिया के इन दो कारणों को प्रकृति पैदा नहीं करती यह दोनों मनुष्य की भूल से पैदा होते हैं और स्वयं मनुष्य ही उन्हें पूर्णरूप से हटा सकता है। यदि मनुष्य अपने शरीर से अस्थि परिवर्त्तन कारी क्रियाओं और बूढ़े विचारों को दूर कर देता है तो उसकी जवानी स्थिर रखने वाली विद्या में पूर्ण निपुणता हो जाती है। कुछ समय से विद्वानों ने यह स्वीकार कर लिया है कि यदि अस्थि परिवर्त्तन की क्रिया पर अधिकार प्राप्त कर लिया जाय तो यौवन स्थिर रखना संभव हो जायगा। इसी अस्थि परिवर्त्तन रूप रासायनिक प्रक्रिया का रहस्य जानने का बड़ा प्रयत्न किया गया है, उन विद्वानों किन्तु पता चला कि शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंश भी क्यों कठोर होते चले जाते हैं। उनकी असफलता का विशेष कारण यह है कि वे शारीरिक विद्या को मानसिक विद्या से नहीं मिलाते हैं, जिसके बिना कि जीवन के उपयोगी साधनों को समझना कठिन है। अस्थि परिवर्त्तन के कारणों में से कुछ तो शारीरिक हैं कुछ मानसिक और कुछ पैतृक। अगले अध्यायों में इन विषयों पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला जायगा। स्मरण रखिए कि, अस्थि परिवर्त्तन क्रिया को दूर करने की कोशिश में हमें अपने को ऐसी दशा में रखने का ख्याल न भुला देना चाहिए जहां कि वृद्धावस्था के भाव को बिलकुल नष्ट कर दिया गया हो।

जब तक मनुष्य वृद्धता के अस्तित्व और उसकी अनिवार्यता में विश्वास रखेगा तब तक चाहे वह कोई भी साधन क्यों न काम में लावे उसके लिए यौवन को स्थिर रखना असम्भव ही होगा।

ऐसा विश्वास करना कि वार्द्धक्य अवश्य आवेगा, यह बूढ़ा करने वाले साधनों को प्रस्तुत कर देता है, या यों कहिए कि जो वार्धक्य लाने वाली बात हमें पैतृक रूप से दायभाग में मिली हैं, उन्हें सदैव सुरक्षित रखना शरीर को बूढ़ा बनाने वाले विचारों से भरना है, और जितना ही अधिक वयस्क हम अपने आप को ख्याल करेंगे उतना ही बूढ़े हम दिखलाई देंगे, चाहे हमारे वर्ष-

मान शरीर को बने हुए केवल कुछ मास का थोड़ा ही समय हुआ हो। वृद्धावस्था का कोई समय भविष्य में निश्चित करने से वार्धक्य का दृढ़ विचार हृदय पर अंकित करना शरीर के अंश २ में वृद्धावस्था को उत्पन्न करना है। प्रकृति हमें चिरस्थायी यौवन प्रदान कर रही है, यदि आप वर्तमान में उस यौवन को ही अनुभव करें तो वर्तमान में आप वास्तव में युवा हैं। जैसे वर्तमान का कोई अन्त नहीं है, इसी तरह इस विधि से सदा यौवन का अनुभव करते रहने से यौवन का कोई अन्त न होगा।

भविष्य स्वयं अपने आप को संभाल लेगा। हमें तो केवल वर्त्तमान के सत्य को मन में स्थान देना चाहिए। वर्त्तमान का सत्य यही है कि हम युवा हैं, और अतएव हमको युवा ही होना चाहिए। किसी समय भी भविष्य में बुढ़ापे का ख्याल करना मानो बूढ़ापन उत्पन्न करने वाले खयाल को पैदा करना है, या यह समझिए कि भविष्य को वर्त्तमान बनाना है:—अर्थात् वस्तुतः वृद्धता न होते हुए भी वृद्धता को लाना है।

वर्त्तमान शरीर युवावस्था में है, क्योंकि यह हाल ही में पैदा हुआ है; यह नया है और इसे नया दिखलाई देना चाहिए। किन्तु मनुष्य ख्याल करता है कि चूंकि मुझे पृथ्वी पर जीवन व्यतीत करते हुए ६० साल या इससे अधिक हो गए हैं, इसलिए मैं वृद्ध हो गया हूं; सुतरां वह बुढ़ापे को इतना अनुभव करता है जैसा कि ६० वर्ष के लोग प्रायः करते हैं। मन के बूढ़ा होने के साथ ही शरीर भी बूढ़ा हो जाता है।

शरीर सदा युवा है और जब तक मन में यौवन का भाव बना रहेगा तब तक शरीर भी युवा ही रहेगा। यही बड़ा भारी रहस्य है।

चतुर्थ खंड।

बूढा होना एक जातिगत स्वभाव है जो कि दूर हो सकता है।

मनुष्य के मानसिक भावों की परीक्षा करने से यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध होती है कि बूढ़ा होने की प्रवृत्ति केवल एक आदत है; किन्तु यह एक ऐसी आदत है जिसे मनुष्य जाति ने समष्टि रूप से ग्रहण कर लिया है और इसलिए हर एक बच्चे को जो इस दुनियां में आता है, यह आदत दायभाग में मिलती है। इसी आदत के कारण हम सब अज्ञात रूप से यह ख्याल करते हैं कि हम बूढ़े हुए चले जाते हैं, बुढ़ापा अनिवार्य है, और कोई वस्तु भी बूढ़ेपन और मृत्यु को नहीं रोक सकती। हम इन विचारों को तो अपने हृदय में स्थान दे देते हैं, किन्तु यह कभी नहीं सोचते कि हम क्या कर रहे हैं। यह केवल इसलिए कि ये विचार हमारे सबकांशस जीवन का एक भाग बन चुके हैं।

इस विचार शैली से हम हमेशा अपने सब कांशस मन को वृद्धावस्था उत्पन्न करने की ओर प्रवृत्त कर रहे हैं। सबकांशस मन सदा वही काम करने लगेगा, जिसके करने की ओर इसे प्रवृत्त किया जावे।

प्रत्येक आदत का मूल सबकांशस मन में होता है। जब कोई विचार या क्रिया पूर्ण रीति से किसी मनुष्य के स्वभाव के साथ मिल जाते हैं, तो वह आदत बन जाते हैं। आदतें ज़रा सी प्रेरणा से या स्वयं ही मशीन की भांति काम करती रहती हैं।

नोट—सबकांशस शब्द कई स्थान पर आया है, इसके शब्दार्थ तो अर्धजाग्रतावस्था हैं, इसके अभिप्राय को संक्षेप में लिख रहे हैं, किन्तु कई जगह यह शब्द आया है इसलिये ग्रन्थकार का जो अभिप्राय है उसको पाठकों के सन्मुख रख देते हैं, स्मरण रखें, मैं आगे शब्द सबकांशस लिखता जाऊंगा॥

कांशंस कहते हैं किसी चीज़ के विषय में ज्ञान रखने को। अनुमान करो कि आपने मकान बदला है तो आप उस मकान में कई दिन तक सोच कर सावधानी से जावेंगे। आपका मन टांगों को यह आदेश करता है कि अमुक ओर चलो। यदि कभी आप किसी और विचार में मग्न हो जावें तो अज्ञान रूप से आप पहिले मकान पर चले जाते हैं, और वहां जाने पर मुंह से सहसा यह निश्चय पड़ता है कि ओहो! मैं किधर आ गया। यह सबकांशस हालत है अर्थात्-एक चीज़ का इतना अभ्यास हो जाना, इतना याद हो जाना कि बिना मनोयोग के ही वही काम होता जावे। आप संध्या करते हो या नमाज़ पढ़ते हो तो बार २ नित्य उसके पढ़ने से ऐसी आदत ही हो जाती है कि आपका ध्यान किसी ओर भी हो किन्तु मुंह से शब्द स्वयं ही एक २ करके निकलते जाते हैं, जब कि, पहले आपको ख्याल करना पड़ता था कि अमुक २ वाक्यों के बाद अमुक २ वाक्यों को पढ़ना चाहिये। इसी का नाम सबकांशस हालत है। और कई बातें ऐसी हमारे स्वभाव में मिली हुई हैं कि अज्ञान रूप से वही बातें हम से होती चली जाती हैं, और यह ऐसी हैं कि मन हमारा और तरफ़ भी हो तो भी हम सबकांशस रूप से उनको जानते और समझते हैं। संकेत ही पर्याप्त है सबकांशस का अर्थ यह है, इसको ध्यान में रखिये और लेख को पढ़िये॥

किसी सब कांशस का स्वभाव में सम्मिलित हो जाना, किसी आदत का पैदा होना है, और हर एक सबकांशस (सोच कर किया हुआ) काम जो बार २ किया जावे, सब कांशस बन जाता है, (जैसा कि अपने नोट में ऊपर दिया है)

कई ऐसे काम हैं जो ज्ञानपूर्वक किये जाते हैं और उन की प्रवृत्ति बूढ़ापन पैदा करने की ओर होती है। इनमेंसे बहुत से काम ऐसे हैं जो मनुष्यजाति इतने चिरकाल से करती आई है कि, वे स्वभाव में सम्मिलित हो कर सबकांशस के दर्जे को पहुंच गये हैं, अर्थात् वे मनुष्य के स्वभाव बन गये हैं॥

अतः हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि बूढ़ा होने की आदत प्रथम उन जान बूझ कर किये हुये कर्मों से पैदा हुई थी

जिनकी कि प्रवृत्ति करने की ओर थी और इस जवान रहने की आदत उन सबकांशस कामों को बार २ करने से पैदा की जासक्ती है जिनकी कि यौवन स्थिर रखने की ओर प्रवृत्ति हो। आदत से आप उन्मुक्त होना चाहें तो, उससे इसी प्रकार से छुटकारा हो सकता है कि उसकी जगह एक विरुद्ध प्रवृत्ति वाली सबकांशस हालत पैदा की जावे। ऐसा करने से नित्य बढ़ने वाली पुरानी आदत को दूर करने की पूरी संभावना है।

सबकांशस दिल तमाम पहलु में पूर्ण रूप से बदला जा सकता है और चूंकि तमाम आदतें सबकांशस हैं, इसलिये यह स्पष्ट प्रगट है कि हर एक आदत दूर की जा सकती है।

यह बात कि बुढ़ापा होने की प्रवृत्ति एक पैतृक आदत है, प्रमाणित करती है कि कोइ आदमी केवल यह स्वीकार कर लेने से ही हमेशा जवान नहीं रह सकता कि मैं स्वभावतः जवान हूं। यद्यपि प्रकृति प्रतिवर्ष इसे नवीन शरीर प्रदान करती है किन्तु बूढ़ा होने वाली आदत इस नये शरीर को बूढ़ा मालूम कराती है और मनुष्य को अनुभव कराती है कि मैं बूढ़ा हो रहा हूं, अतः यदि नवीन शरीर को जवान दिखलाना और अनुभव करना हो तो वृद्ध करने वाले मानसिक भावों को बिल्कुल उखाड़ फेंकना होगा। केवल इन भावों के ही बदलना नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन में प्रत्येक विचारों को भी बदलना आवश्यक है। मनुष्य मात्र इसलिए वृद्ध होते जाते हैं कि प्रत्येक बालक इस आदत को लेकर जन्म धारण करता है, अतः आयु का विचार बराबर हमारे हृदय में बना रहता है, और ऐसे विचारों से बराबर बूढा करने वाली आदतों में बृद्धि होती जाती है। इस बात को रोकने के लिए हमेशा अपने हृदय पटल पर यह बात अंकित करनी चाहिए कि हमेशा जवान रहने की प्रवृत्ति भी स्वाभाविक है।

गलत बातों के प्रभाव को दूर करने के लिए हमें अपने दिलों को इस सिद्धांत के अनुसार भाव रखना और काम करना सिखलाना चाहिए, जिससे कि चिरस्थायी जवानी प्राप्त होती है।

अपने जीवन के वस्तुतत्व का सत्य २ ज्ञान आप सब को,

रखना चाहिए। सत्य २ ज्ञान हमको यही कहता है कि, मनुष्य कभी बूढा नहीं होता।

मनुष्य प्राकृतिक नियमों का उलंघन करने से अपनी जवानी को बुढ़ापे में ठीक इसी प्रकार परिणत कर लेता है, जैसे शरीर को तन्दुरुस्ती से बीमारी की हालत में ले आता है। इसका कारण यह है कि किसी प्राकृतिक नियम का उलंघन किया गया है, और प्राकृतिक नियमों के उलंघन ही से बुढ़ापा और बीमारी मनुष्य पर अपना अधिकार जमा सकती है। जब मनुष्य उचित प्रकार से आहार विहार करता है तो, वह हमेशा युवा और तन्दुरुस्त रहता है।

किसी ऐसी आदत को जो सारी मनुष्य जाति के स्वभाव में सम्मिलित हो गई हों, हटाने के लिए सब कांशस कारणों की ओर ध्यान देना चाहिए। सबकांशस हालत ही हमें पैतृक दाय भाग में मिली है। कोई बीमारी या कमज़ोरी मनुष्य को दायभाग में नहीं मिल सकती, और ना ही कोई विपरीत गुण, किन्तु सबकांशस स्वभाव अपनी जाति से अवश्य दायभाग में मिल सकता है। इसीलिए ऐसी गलतियों को अपने अन्दर न पैदा होने देना आवश्यक है, और अपने पूर्व पुरुषों से जो गलत बातें हमें दायभाग में मिली हों उन्हें हमें अपने सबकांशस हृदय से बिल्कुल दूर कर देना चाहिए। उन प्रवृत्तियों में से सब से जबरदस्त एक प्रवृत्ति बूढा होने की है। और यह इस प्रकार दूर हो सकती है कि सबकांशस दिल को प्राकृतिक नवीनता देने वाले नियम के रूप से कार्य करना सिखलाया जावे।

किन्तु जब तक बूढ़ा होने का विचार सच समझा जाता है तब तक कांशस मन सबकांशस मन को नित्य नया होने के सिद्धांत-नुसार कार्य करना नहीं सिखला सकता।

जिस चीज़ के विषय में हमारा विश्वास हो कि यह आवश्यक है, वह सबकांशस मन में अंकित हो जाती है, और जो बात सब-कांशस मन में अंकित हो जाय वह समझ लीजिये कि जीवनोद्यान में एक बीज वपन कर दिया गया जो अपना फल अवश्य ही लावेगा॥

सत्तर वर्ष की आयु का विचार मन से निकाल देना चाहिए और इसके स्थान में यह ख्याल कि यौवन उस समय तक स्थिर रह सकता है जब तक कि हम उसे स्थिर रखना चाहें, सब-कांशस दिल पर जमाना चाहिए।

मनुष्य की गलतियों से उसके शरीर के अस्तित्व की सीमा ७० वर्ष तक रह गई है, और फिर यह विचार पैदा हो गए हैं कि ७० वर्ष तक ईश्वरीय सीमा है और इससे अधिक समय तक जीवित रहना आकस्मिक घटना है। किन्तु याद रहे मनुष्य की भूल से पैदा हुई बातें प्राकृतिक नियमों के परिणाम को समर्थन नहीं कर सकती।

प्राकृतिक नियम इस बात की घोषणा करते हैं कि, जीवन की कोई निश्चित सीमा नहीं है और ना ही जीवन कुछ विशेष कर्मों के लिए है। मनुष्य की शक्ति में यौवन को स्थिर रखना भी उतना ही सुगम है जितना कि बुढ़ापे को पैदा करना। एक काम को सम्पन्न करने के लिए दूसरे की अपेक्षा अधिक शक्ति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु यह निर्णय करना स्वयं मनुष्य का काम है कि उन शक्तियों को कैसे उपयोग में लावे।

हजार वर्ष तक जीवित रहने के लिए भी उतनी ही शक्ति की आवश्यकता है जितनी कि एक दिन जीवित रहने के लिए। जीवित रहने से जीवन का ह्रास नहीं होता प्रत्युत उसकी शक्ति में वृद्धि होती है। जीवन शक्ति का ह्रास केवल जीवन के दुरु-पयोग ही से होता है, सुतरां जब मनुष्य को उचित रूप से रहने सहने का ढंग मालूम हो जायगा तो कदापि उसकी वह अवस्था न रहेगी जो कि स्वयं उसकी गलतियों से पैदा हुई है॥

यह विश्वास करते रहना कि वे बातें जो कि इतनी देर से होती चली आई है, सदा के लिए इसी तरह होती जानी चाहियें; मन को बिल्कुल ऐसे विश्वासों के अधिकार में कर देता है, और इन बातों का ध्यान नहीं रहता कि इनसे क्या दुष्परिणाम हैं, और ये किस प्रकार से उन्नति के मार्ग में बाधक हैं। हमें असत्य बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए और हमें कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे कि प्रत्येक मनुष्य का अधिक से

अधिक हित साधन न हो सकता हो। यदि जीवन के वस्तु तत्त्व को समझा जाय तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि हमारे विचार व कर्म क्या होने चाहिए।

केवल इसलिए कि तमाम मनुष्य जाति बूढ़ी होती आ रही है, अवश्य बूढ़े होना चाहिये सत्य विज्ञान के विरुद्ध है। स्वतंत्र मन बूढ़ा होना अस्वीकार करता है, जब तक कि प्रकृति यह आदेश न दे कि, उसे अवश्य ही बूढ़ा होना चाहिए। और जो मन स्वतंत्र है, जिसमें कोई पैतृक विचार स्थान नहीं कर चुके और जिसमें कोरा नंगा सत्य जानने की शक्ति है, उसे प्रकृति कहती है कि अपने साथ न्याय पूर्वक वर्ताव करने से वह हमेशा युवा ही रहेगा।

सर्व साधारण के हृदयों में विपरीत तथा अप्राकृतिक प्रवृत्तियां और आदतें भरी हुई हैं जो कि, मनुष्य जाति को दाय भाग में मिली हैं। शरीर की शक्तियां भी स्वयं ही उनके अनुसार करती चली जाती हैं, क्योंकि यह शक्तियां सब कांशस दिल के आधीन हैं, और वह सदैव वही काम करता है, जिसके करने का उसे स्वभाव पड़ चुका होता है॥

अतः यह स्पष्ट प्रगट है कि सर्व साधारण मनुष्य बहुत से ऐसे काम कर रहे हैं, जो कि इसलिये नहीं किये जा रहे कि वे प्राकृतिक और ठीक हैं, प्रत्युत इसलिये कि वे उसे अपनी पूर्वज जाति से दायभाग में स्वभावतः मिले हैं। चूंकि इन पैतृक आदतों में से बहुत सी आदतें उस समय मनुष्य की गलतियों से पैदा हुई थीं, जिस समय का पता इतिहास से नहीं मिल सकता, सुतरां मनुष्य को अपने साथ न्यायोचित प्राकृतिक वर्त्ताव करने के लिये अपने जीवन की परीक्षा फिर से करनी चाहिये। इसे भविष्य में कामों को केवल इसलिये नहीं करते चले जाना चाहिये कि वे होते चले आये हैं। आज से उसका यह उद्देश्य होना चाहिये कि वह देखे कि जीवन वास्तव में क्या है? और फिर उसके अनुसार कार्य करना चाहिये॥

मनुष्य के छोटे २ विचारों का भी उस पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। विचार ही दृढ़ होने पर विश्वास की शकल में आ जाते हैं

अर्थात् सबकांशस बन जाते हैं । सबकांशस बन जाने पर वे विचार और विश्वास अपना काम करना कभी नहीं छोड़ सकते।

यह ख्याल करना कि अंत में मनुष्य अवश्य बूढ़ा हो जायगा, एक आदत है। हर एक बच्चा जब पैदा होता है तो उसके मन में ऐसा ही विश्वास होता है, किन्तु यह विश्वास सबकांशस दशा में पहुंच कर ऐसा प्रभाव करने लगेगा कि मनुष्य स्वयं ही बूढ़ा होता जायगा।

यदि आप को अपना वर्तमान शरीर युवा प्रतीत होता है, और आप इसे ऐसा अनुभव भी करते हों तो, यह विश्वास करना कि आप युवा हैं और प्रकृति आप को सदा नया शरीर दे रही है, एक साधारण बात है ; किन्तु वर्त्तमान यौवन का अनुभव करते हुए भी लगभग प्रत्येक मनुष्य के हृदय में यह विश्वास जमा हुआ है कि बुढ़ापा कभी न कभी अवश्य आएगा। इस विचार को बिल्कुल दूर कर देना चाहिए और सब कांशस को सिखलाना चाहिए कि वह जीवन के वस्तु तत्त्व को सच्चे रूप में ग्रहण करे। जीवन के वस्तु तत्त्व पर विश्वास करना इस बात पर विश्वास करना है कि आप हमेशा जवान हैं, क्योंकि जिस नियम से जवानी हमेशा स्थिर रहती है वह नियम तब तक अपना काम करता रहेगा, जब तक मनुष्य का अस्तित्व रहेगा है।

यह विश्वास करना कि आप हमेशा जवान हैं, सब कांशस दिल पर यह विचार अंकित करना है कि, जवानी चिरस्थायी है और फल यह होगा कि, सबकांशस दिल जवानी की सामग्री पैदा करना आरम्भ कर देगा। बूढ़ा होने की आदत बंद हो जायगी और उसके स्थान पर जवान रहने की आदत कायम होती जायगी।

वास्तविक बात तो यह है कि आप इस बनावटी रूप में चाहे जितने साल रहें प्रति दशवें या आठवें मास शरीर तो नया हो जाया करेगा ही; इसलिए वास्तव में तो इस शरीर को नया ही मालूम होना चाहिए। यदि सब कांशस दिल में बूढ़ा होने की आदत न पड़ गई होगी तो अवश्य ही नया मालूम

होगा। मनुष्य के शरीर को हर समय चाहे कितनी ही आयु बीत गई हो, जवान मालूम होना चाहिए, और इसे जवानी को अनुभव करना चाहिए।

यह विचार ठीक नहीं है कि आयु के अनुसार बूढ़ापन आता जाता है। आयु की वृद्धि से तो अनुभव की वृद्धि होती है; यदि अनुभव का दुरुपयोग न हो तो इस से शरीर और मन दोनों की उन्नति होगी।

उन्नति के अर्थ वृद्धि के हैं और जो चिज़ निकम्मी और पुरानी होती चली जा रही हो उसके लिये वृद्धि करना असंभव होता है, और जो वस्तु हमेशा वृद्धि कर रही हो वह कभी पुरानी और निकम्मी नहीं हो सकती।

जब यह सत्य है कि मनुष्य के शरीर में एक अणु भी कभी बुड्ढा नहीं होता, तो बुढ़ापे में विश्वास करना निर्मूलक है। यह ख्याल करना कि आंखों को बुड्ढा होने पर चश्मे की आवश्यकता हुआ करती है, एक पैतृक स्वभाव है; और यह वैज्ञानिक ज्ञान के सर्वथा विरुद्ध है। आंखें कभी भी बुड्ढी नहीं होती और इस पृथ्वी पर किसी मनुष्य की आंख ऐसी नहीं है जो कि ३, ४ मास से अधिक समय की हो॥

यही दशा तमाम अन्य इन्द्रियों की भी है। और इस बात से निस्सन्देह यह सिद्ध होता है कि कुछ वर्षों के बाद आंखों के कमज़ोर और धुंधली हो जाने का कारण केवल यही है कि हृदय पटल पर (subconcious में) यह बात अंकित हो चुकी है। यह ख्याल करना कि आप की आंखें कमज़ोर और धुंधली हो जाती हैं, अपने हृदय पटल पर बुढ़ापे और निर्बलता की मोहर लगाना है। देखते ही देखते विश्वास के प्रभाव से आंखों में बुढ़ापे और कमजोरी के चिन्ह पैदा हो जावेंगे; फल यह होगा कि आंखों में कमजोरी और बुढ़ापा ही अनुभव होगा; इसलिए नहीं कि वे वास्तव में कमज़ोर हैं, प्रत्युत इसलिए कि उनमें बुढ़ापे और कमज़ोरी की दशाएं आ गई हैं।

जब आंखों की शकल में कोई दोष हो तो उस दोष को दूर करने के लिये ऐनक बर्तना लाभदायक हो सकता है, किन्तु इसको

केवल कुछ समय के लिए ही वर्तना चाहिए और अपने मन में यह सोच कर ही इसको लगाना आरम्भ करना चाहिए।

किसी मनुष्य को यह विश्वास करके ऐनक लगानी आरम्भ नहीं करनी चाहिए कि इसे आयु पर्यन्त लगाना पड़ेगा और न किसी व्यक्ति को यह विचार ही करना चाहिए कि वृद्धावस्था में उसकी आंखों को ऐनक की आवश्यकता होगी क्योंकि आंखें कभी बूढ़ी नहीं होतीं। परन्तु इस विश्वास में जीवन व्यतीत करना कि आंखें बूढ़ी हो जायेंगी आंखों को बुढ़ापे से भर देना है और ऐसी दशाएं प्राकृतिक कार्य्य में रुकावट डालती हैं इस लिए इनका आवश्यक प्रभाव यह होता है कि वह आंखों को निर्बल कर देती हैं।

अस्सी वर्ष के मनुष्य की आंखें सात वर्ष के बालक की आंखों से बिल्कुल विभिन्न नहीं हैं। दोनों ही की आंखें पिछले ६–८ मास में बनी हैं और इसलिए एक जोड़े को दूसरे जोड़े की अपेक्षा ऐनक की अधिक आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार यह विश्वास कि जब बुढ़ापा आए तो अस्थियां कठोर हो जाती हैं, शारीरिक शक्तियां निर्बल हो जाती हैं, स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है इत्यादि भी सत्य ज्ञान के विरुद्ध हैं। मानव शरीर में एक भी रेशा ऐसा नहीं है जिसे कठोर होकर हड्डी की भांति हो जाना चाहिए चाहे मनुष्य की आयु कितनी भी क्यों न हो जाए। हड्डी बन जाने की ओर झुकाव भी एक जातिगत स्वभाव है परन्तु अन्य सारे स्वभावों की भांति उसे भी पूर्णतया दूर किया जा सकता है।

बुढ़ापे के सब चिन्ह अप्राकृतिक हैं जो सब कार्शास झुकाव या उन स्वभाव से उत्पन्न होते हैं जो कि मानव सन्तति को दाय-भाग में मिलते हैं। अतः यदि सचाई देखी जाए तो कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि बुढ़ापा प्राकृतिक और अनिवार्य है और न कोई व्यक्ति उस समय तक अपने आप से सच्चा है जब तक कि वह बुढ़ापा उत्पन्न करने वाली सारी प्रवृत्तियों को अपने शरीर से नहीं निकाल देता।

यह आवश्यक होगा कि इस बात की विस्तार सहित व्याख्या की जाए कि बूढ़ा होने की प्रवृत्ति केवल एक जातिगत

स्वभाव है क्योंकि जिस समय शारीरिक अवस्थाओं और सब कांशस क्रियाओं का परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान हो जाए यह बात सर्व प्रकार से स्वयम् सिद्ध हो जाती है। परन्तु इस स्वभाव को दूर करने के लिए हमारे सर्वोत्तम और पूर्ण ध्यान देने की आवश्यकता है।

इस स्वभाव को दूर करने के लिए प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि अर्द्धचेतन मन से बुढ़ापा लाने वाली प्रवृत्तियों को हटाया जाए। इसके बाद दूसरी आवश्यक बात यह है कि चेतन मन को इस बात की शिक्षा दी जाए कि वृद्धावस्था की दशाओं की आकृति के सम्बन्ध में वास्तविक सत्य का विचार करे।

जब हमारे इतस्ततः कहीं पर बुढ़ापे की दशायें दिखाई दें तो चेतन मन को अपने ऊपर यह सत्यता जमा देनी चाहिए कि जीवन की वास्तविक दशा में केवल सतत यौवन ही होता है। वृद्धावस्था की सब दशाओं को अप्राकृतिक समझना चाहिये और बुढ़ापे के प्रत्येक विचार को तत्काल काट देना चाहिये।

चेतन मन को बुढ़ापे को प्रकृति के विरुद्ध समझना चाहिये और उसे केवल जातिगत स्वभाव जानना चाहिए जिस के लिए किसी एक व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। बुढ़ापा उत्पन्न करने वाली क्रिया को एक ऐसी बात समझना चाहिए जिसे कोई व्यक्ति अपनी इच्छानुसार दूर कर सकता है।

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जो बात मन में प्रवेश करती है वह मन पर अपना प्रभाव छोड़ जाती है और उसकी प्रवृत्ति उस मनुष्य के जीवन में पुनः प्रगट होने की ओर होती है। इस कारण वृद्धता की कल्पना कभी भी मन में न होनी चाहिए और बुढ़ापे से सम्बन्ध रखने वाली सब कल्पनाओं को असत्य समझ कर उत्पन्न होते ही शीघ्र दूर कर देना चाहिए।

चेतन मन को बुढ़ापे के साधनों को विदेशी, असत्य और मनुष्य के वास्तविक जीवन से भिन्न समझना चाहिए। परन्तु इनका प्रतिकार करने का कोई यत्न नहीं करना चाहिए क्योंकि न तो वह स्वयम् कोई वस्तु हैं और न उनकी कोई अपनी शक्ति है। वह केवल हमारे मन की उत्पत्ति हैं और जब हम इनको

उत्पन्न करना बन्द कर देंगे वह स्वयं भाग जायेंगे। जो सब. कांशस प्रवृत्तियां वृद्धावस्था के साधनों को उत्पन्न करने वाली हैं उनको दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि मन में ऐसे विचार उत्पन्न किए जायें जो कि अपनी प्रकृति और उद्देश्य में सीधे उनके विरुद्ध हों। जब प्रकाश लाया जाता है तो अंधेरा स्वयं दूर हो जाता है। इसी प्रकार जब हम युवा रहना सीख जायेंगे तो बूढ़ा होने का स्वभाव स्वयं गुप्त हो जाएगा और इस स्वभाव (युवा रहने का स्वभाव) के उत्पन्न करने के सम्बन्ध में एक अलग अध्याय रक्खा जायेगा ।

जब यह मान लिया जाये कि बूढ़े होने की प्रवृत्ति एक जातिगत स्वभाव है जो कि इतिहास से पूर्व के समय में मानव भूलों से उत्पन्न हुआ था तो हमारे विचार की प्रवृत्ति इस ओर हो सकती है कि यह स्वभाव इतना जड़ पकड़ चुका है कि हमारे जीवन से दूर नहीं हो सकता और इस विषय में यह युक्ति दी जा सकती है कि जातिगत स्वभाव को दूर करने के लिए विरुद्ध प्रवृत्ति को उत्पन्न करने के लिए शताब्दियों की शिक्षा की आवश्यकता होगी जो कि सारी मानव सन्तति को एक सी दी जानी चाहिए परन्तु ऐसे परिणामों को वैज्ञानिक परिणाम नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार किसी व्यक्ति में ईश्वर प्रदत्त योग्यता उत्पन्न होने के लिए इस बात की आवश्यकता नहीं कि सारी जाति में पहले से योग्यता का विकास होने लगे इसी प्रकार यह आवश्यक नहीं कि व्यक्तियों को युवा रहने की कला प्राप्त होने से पूर्व सारी की सारी जाति युवा रहना सीख जाये। इसके अतिरिक्त मनुष्य को यौवन उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं होगी वह पहले ही युवा, है, उसे केवल बूढ़ा रहने के स्वभाव को दूर करना पड़ेगा और यह बात प्रत्येक व्यक्ति अब कर सकता है।

सारे स्वभाव अर्धचेतन मन में बनते हैं और प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक समय कोई बात अर्धचेतन मन से हटा सकता है।

अर्धचेतन मन से जो कार्य करने को कहा जाए वह कर सकता है और करेगा। आज्ञा पाते ही वह उसी क्षण कार्य करने लगेगा। इसलिए यह प्रत्येक व्यक्ति के वश में है कि अब युवा रहे।

पंचम् अध्याय

आयु के विचार ही को मिटा दो। तुम वर्तमान में हो जो कि अनंत है।

मन की शक्तियां उन सब गुणों और दशाओं को उत्पन्न और प्रकट करती हैं जो कि कांशस में वर्तमान हों। सारे मानसिक नियमों में से यह एक आवश्यक नियम है क्योंकि इसी नियम के अनुसार मनुष्य अपने जीवन के भविष्य का निर्णय करता है।

बुढ़ापे के ज्ञान में जीवन व्यतीत करना मानो मन में बुढ़ापे के साधन उत्पन्न करना है और मन में जो कुछ उत्पन्न किया जायेगा वह अवश्य शरीर में प्रकट होगा। अतः यदि सतत यौवन को बढ़ाने की इच्छा है तो पहले बुढ़ापे के ज्ञान को पूर्णतया निकाल देना चाहिये।

बुढ़ापे का ज्ञान इस विश्वास से उत्पन्न होता है कि समय व्यतीत हो रहा है और ज्यूं २ समय व्यतीत होता जाता है मनुष्य बूढ़ा होता जाता है।

परन्तु यह विश्वास वास्तविक विज्ञान की इन सच्चाइयों के बिल्कुल उल्टा है कि प्रथम तो समय व्यतीत होता ही नहीं, समय रहता है और द्वितीय क्योंकि मनुष्य के भीतर सतत नवीकरण क्रम रहता है और वह उसे बूढ़ा नहीं होने देता चाहे उसकी आयु कितनी ही अधिक क्यों न हो जाये।

मन को मानव शरीर को चलाने वाले नियमों की ओर उचित व्यवहार रखने के लिये समय की सच्ची कल्पना इस अति आवश्यक है और यह सच्ची कल्पना इस नियम पर निर्भर है कि समय वर्तमान है। समय न आता है न जाता है वरन् प्रकृति की गतें ही आती और जाती हैं समय नहीं।

जिसे हम समय कहते हैं वह अनंत "अब" हैं और यह अब सतत रुप से अब में है। अतः समय नहीं व्यतीत हो सकता।

मनुष्य केवल "अब" ही में रह सकता है। वह न तो भूत में रह सकता है न भविष्यत में। वह भूत और भविष्यत के सबन्ध में सोच तो सकता है परन्तु वह रह केवल "अब" में सकता है। और "अब" कभी नहीं जाता इस लिये मनुष्य का जीवन भी व्यतीत नहीं होता।

जब मनुष्य को यह विश्वास हो कि बहुत से वर्षों का नाम बुढ़ापा है और समय व्यतीत होने से बहुत से वर्ष बनते हैं तो वह अनजाने इस विचार मे जियेगा कि ज्यूं २ वर्ष व्यतीत होते जाते हैं मैं बूढ़ा होता जा रहा हूं। वह प्रति वर्ष अपने आप को अधिक बूढ़ा दिखाई देता है जितना मन अनुभव करता है।

परन्तु जब मनुष्य यह अनुभव कर लेगा कि बहुत वर्षों के व्यतीत होने का नाम बुढ़ापा नहीं है और वर्ष कभी व्यतीत नहीं होते तो उस को कभी यह अनुभव न होगा कि मैं बूढ़ा हो रहा हूं और परिणाम यह होगा कि वह बूढ़ा दिखाई न देगा।

मन को अपना पूर्ण ध्यान "अब" पर लगा देने की शिक्षा देना "अब" के अस्तित्व के ज्ञान को बढ़ाना है और चेतन मन में इस बात का अनुभव करना कि मैं वर्तमान समय ही में सदा रहता हूं बुढ़ापे की कल्पना को पूर्ण रूप से मिटा देता है। मन को उस समय तक यह सोचना सम्भव नहीं है कि मैं बूढ़ा हो रहा हूं जब तक कि वह यह अनुभव करता है कि मैं "अब" हूं और "अब" वर्तमान है।

यह "अब" अनंत है अर्थात "अब" ही रहता है। अतः अब में रहने का यह तात्पर्य्य है कि जो कुछ तुम "अब" हो वह "अब" ही रहेगा और हमारी वर्तमान अवस्था युवा है।

सम्भव है कि मनुष्य "अब" में बढ़े और वृद्धि प्राप्त करे परन्तु वह "अब" के पार कभी नहीं जा सकेगा क्योंकि "अब" अनंत है। मनुष्य को अपने मन में यह विचार बिठा देना चाहिये कि मैं समय के साथ नहीं जा रहा हूं क्योंकि समय तो जाता ही नहीं वरन् सदैव स्थिर रहता है और मैं अब में रहता हूं और "अब" सदैव "अब" ही रहेगा। मैं अब जीवित हूं और बढ़ रहा

हूं परन्तु मैं बुढ़ापे की ओर नहीं जा रहा हूं। बुढ़ापे का कोई अस्तित्व नहीं है और मैं पार नहीं उतर रहा हूं। मैं हूं। जब मनुष्य में "मैं हूं" के ज्ञान का विकास होता है तो उसको अपनी वर्तमान अवस्था का अनुभव प्राप्त हो जाएगा उसको इस बात की पहचान हो जाएगी कि उसकी वर्तमान प्रकृति की सम्भावना की कोई सीमा नहीं है और उसकी प्रकृति का भण्डार अधिक वर्षों के व्यतीत होने से नहीं वरन् वर्तमान अनुभव अधिक होने से भरेगा।

उसको इस बात का ज्ञान हो जाएगा कि वह अपनी प्रकृति की छुपी हुई शक्तियों का वर्तमान अनुभव सदैव बढ़ा कर जो कुछ उसके मन में हो उसे पूरा कर सकता है। अधिक उच्चतम आदर्शों की प्राप्ति के लिए वह भविष्य की प्रतीक्षा न करके वर्तमान की वृद्धि का ध्यान रक्खेगा और परिणाम यह होगा कि उसका ध्यान वर्तमान समय पर केन्द्रित रहेगा।

"अब" के अनुभव में रहने से भूत और भविष्यत् का कोई विचार भी मन में न आने पाएगा। समय व्यतीत हो रहा है" इसका विचार भी मन से जाता रहेगा और उसके मिटने से बुढ़ापे का ज्ञान भी जाता रहेगा।

जब मनुष्य में बुढ़ापे का ज्ञान भी न रहेगा तो बुढ़ापे के साधन उत्पन्न होने भी स्वयं रुक जायेंगे और इस लिए उसका शरीर अपनी वास्तविक प्राकृतिक दशा अर्थात् यौवन को रख सकेगा।

जब यौवन को प्रकृति उत्पन्न कर रही है तो उसे स्थिर रखने के लिए अनंत "अब" में रहो और समझ लो कि तुम अब युवा हो। इस बात को भली भांति मन पर अंकित कर लो कि तुम्हारे शरीर में जिस क्रिया से सदैव यौवन उत्पन्न किया जा रहा है वह इसी प्रकार अनंत है जैसा कि वर्तमान समय और इस लिए आप सदैव युवा ही रहेंगे चाहे आप कितनी देर जीवित रहें। बड़े अनंत "वर्तमान समय" में रहने से सारा ध्यान वर्तमान समय के कार्य्य पर ही लगेगा। इस का तात्पर्य यह है कि भूत और भविष्यत को स्वीकार न किया जाये। इसका

आशय यह है कि न उस बात का विचार करें जो व्यतीत हो चुका है न उसका जो आने वाला है। इसका उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार से हम "अब" रह सकते हैं विचार कर सकते हैं और प्राप्त कर सकते हैं उसी प्रकार रहें विचार करें और उस पर कार्य करें। (भूत और भविष्यत हमारा नहीं है)

वर्तमान समय में ही रहने से हम इस नियम पर कार्य्य करते हैं। केवल वर्तमान काल में ही किया हुआ कार्य्य परिणाम उत्पन्न करता है। भूतकाल समाप्त हो चुका है। अब उसके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है और भविष्यत वर्तमान का प्राकृतिक परिणाम हुआ करता है इसलिए जितने ही पूर्णरूप से हम वर्तमान समय में रहेंगे भविष्य उतना ही उत्तम होगा।

वर्तमान समय में रहने से यह तात्पर्य है कि हम "अब" में इतने लीन हो जायें कि हमको भूत और भविष्यत की कोई सुध बुध न रहे, केवल वर्तमान का ही बोध हो।

"अब" में रहने से यह आशय है कि हम इस बात को अनुभव करें कि न कोई भूत है न भविष्यत जो कुछ है वर्तमान ही है क्योंकि "अब" सदैव "अब" ही होता है "अब" ही होता रहा है। और "अब" ही होता रहेगा। "अब" के अतिरिक्त और कोई समय नहीं है और "अब" कभी व्यतीत नहीं होता है। इस लिये समय व्यतीत नहीं हो सकता है। सारा समय है और इस समय में मनुष्य सदैव वर्तमान है।

तारा मण्डल अपनी गति में समय के व्यतीत होने को अंकित नहीं करते न वह समय को मापते ही हैं। वह केवल अपनी गति का हिसाब रखते हैं जब वह महान अनंत "अब" में गति करते हैं। जब वह महान अनंत "अब" में जीवन के महान केन्द्र

के इतस्ततः गति करते हैं तो अपने बदलने वाले स्थानों के बीच के अन्तर को मापते हैं।

ब्राह्मण्ड चल नहीं रहा है। जो कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं वह केवल उस सतत गति का फल स्वरूप है जिस से कुछ तारे दूसरे तारों के चारों ओर घूमते हैं जो स्वयंम किसी दूसरे तारे के इतस्ततः चलते फिरते हैं। इसी प्रकार यह और तारों के गिर्द घूमते हैं। सब कुछ गति में है और गति गोलाई में ही हुई है। ब्राह्मण्ड अपने स्थान पर ही खड़ा है और सदैव इसी स्थान से गोलाई में गति कर रहा है और पूर्ण रूप से जीवत है। यह सब कुछ महान अनंत "अब" ही में हो रहा है।

प्रत्येक बात के लिय "अब" में होने का कारण यह है कि जितना समय है वह केवल "अब" ही है। मनुष्य को केवल वर्तमान समय ही का ज्ञान है और "अब" पर ध्यान दे कर दृष्टि डालने से यह ज्ञात हो जायगा कि सब कुछ अब में ही सम्मिलित है। अपना सारा ध्यान वर्तमान समय में लगा देना ही शीघ्र अपनी वर्तमान आवश्यकताओं की सिद्धि का गुप्त भेद है। जो कार्य्य वर्तमान समय के लिये नहीं किया जाता वह छिन्न भिन्न हो जाता है और या तो पूर्णतया नष्ट हो जाता है या उस से वह परिणाम उत्पन्न होते हैं जो अब मनुष्य की भलाई इस बात से हो सकती है जो "अब" को दृष्टि में रख कर की जाये और जब मनुष्य बिना किसी दूसरे विचार और कार्य्य करता है तो उस का जीवन 'अब" पूर्ण हो जाता है।

अतः चाहे किसी दृष्टि से जीवन को लिया जाये महान अनंत अब में रहना ही जीवित रहने की वैज्ञानिक विधि है और योवन का स्थिर रखने की आवश्यकताओं में से एक प्रारम्भिक नियम है।

महान अनंत अब में रहने के लिये अब आवश्यक है कि किसी आने वाले कार्य्य का कोई विशेष समय नियत किया जाये परन्तु जब वर्तमान कार्य्य को भली भांति करने के लिये भविष्य

विषय में सोचना विचारना आवश्यक हो तो भविष्य के विषय में अवश्य सोच सकते हो, किन्तु ध्यान रखिये 'अब' के ही ज्ञान से जीवन का प्रत्येक कार्य करें।

भविष्य में क्या होगा इसका कदापि कोई ख्याल नहीं करना चाहिये। ऐसे विचारों से समय व्यर्थ ही नष्ट होता है, क्योंकि जो कुछ विद्यमान नहीं है उसका हम कुछ विचार ही नहीं कर सकते। जीवन तथा विचार की समस्त शक्तियों को उन बातों और कामों में व्यय करना चाहिये जो कि वर्त्तमान काल की हों। इस भाव से न केवल वर्त्तमान समय की ही उन्नति होगी, प्रत्युत सारे विचार 'अब' में ही लगा देने से बुढ़ापे के सम्पूर्ण विचारों को भुला देने की भावना मन में दृढ़ हो जायगी।

वर्त्तमान काल में रहना अधिक सीखो। अब ही अपनी शक्तियों की उन्नति करो, अपनी उन्नति को भी अब अधिक करो, फिर भविष्य में जो घटनायें आप के जीवन में घटने वाली हैं, आप उनका सामना कर सकते हैं। आप में भविष्य को वर्त्तमान से कहीं उत्तम बनाने की शक्ति पैदा हो जावेगी और उस शक्ति की दिन प्रतिदिन उन्नति को अनुभव करने पर आपको भविष्य के लिये कोई चिन्ता न रहेगी।

वर्त्तमान काल का सदुपयोग करने से भविष्य स्वयं ही समुज्ज्वल हो जाता है, किन्तु जीवन भर वर्त्तमान के सदुपयोग के लिये आवश्यक है कि सारे विचारों और कामों को हर प्रकार से वर्त्तमान में केन्द्रित कर दिया जाय और भविष्य का कोई ख्याल न किया जाय। वास्तविक बात तो यह है कि हमें अपने वर्त्तमान कार्यों में इतना निमग्न व तत्पर हो जाना चाहिये कि उस के सिवाय हमें किसी दूसरे काम की सुध बुध ही न रहे।

भविष्य का ख्याल करना मानो अपने मन में इस विचार को स्थान देना है कि हम कितने समय तक जीवित रह सकते हैं, और अपने अभीष्ट स्थान पर पहुंचने से पूर्व हमें कितने वर्ष व्यतीत करने होंगे। इस प्रकार के विचारों से मन में यह विश्वास पैदा हो

जायगा कि समय व्यतीत होता चला जा रहा है और इसके साथ हम क्षीण व बूढ़े होते चले जाते हैं, इस प्रकार बुढ़ापे के विचार पैदा हो जावेंगे, और बुढ़ापे के विचार से हमारे शरीर में बुढ़ापे के लक्षण स्वभावतः उत्पन्न होंगे।

मनुष्य के लिये यह प्रश्न कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता कि वह अपने अस्तित्त्व को कितने समय तक स्थिर रख सकता है, प्रत्युत महत्त्व की बात यह है कि अब जिस प्रकार वह जीवन बिता रहा है—उस में कैसी पूर्णता और सुन्दरता है। और जो मनुष्य वर्त्तमान काल में भली प्रकार से रहता है वह वहां बहुत समय तक रह सकेगा, यदि वह चाहे तो और वह संसार में अधिक समय तक जीवित रहेगा और जब तक वह जीवित रहेगा तब तक उसका यौवन बना रहेगा। किन्तु अच्छी तरह से रहने के लिये यह आवश्यक है कि अनन्त 'अब' ही में निवास किया जावे और अब के यौवन में अब ही रह जावे। केवल वर्त्तमान काल का ही ध्यान रखा जावे और यह बात अनुभव की जावे कि 'अब' और जो यौवन 'अब' पैदा हो रहा है, वे दोनों अनन्त हैं॥

यह अनुभव करना कि मनुष्य अनन्त हैं, इस सब कांशस (दबे हुए) विचार को नष्ट कर देता है कि हम उस बुढ़ापे की ओर बढ़े चले जा रहे हैं जो कि आगे चल कर सब मनुष्यों को अवश्य आता है। परन्तु यह अनुभव करना कि 'अब' का यौवन अनन्त है बुढ़ापे के विचारों को नष्ट भ्रष्ट करके वृद्धावस्था के मुख्य कारण का मूलावच्छेद कर देता है॥

यह नियम कि प्रकृति सदा मनुष्य के सारे शरीर को नया कर रही है सिद्ध करती है कि भविष्य में जीवन की कोई ऐसी अवस्था नहीं है जिसके विषय में यह खयाल किया जाता है कि प्रत्येक मनुष्य उस अवस्था में पहुंचेगा। इस प्रकार के विचार भ्रम मात्र ही हैं, क्योंकि मनुष्य के शरीर में जो आयु प्रगट होती है वह मनुष्य जीवन के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने से स्वयं

ही पैदा करता है। जीवन के इन नियमों के उल्लंघन से बचने के लिये यह आवश्यक है; कि मनुष्य अनन्त अब के लिये ही प्रत्येक क्रिया करे और जीए और जीवन का प्रधान उद्देश्य यह होना चाहिये कि "आज" ही उत्तम से उत्तम जीवन प्राप्त हो॥

सारांश यह है कि बुढ़ापे के विचार को बिल्कुल नष्ट कर दिया जाय, क्योंकि मनुष्य को जब यह विचार न रहेगा कि मैं बूढ़ा होता जाता हूं तो उसका बूढ़ा होना बंद हो जायेगा। जब मनुष्य नये शरीर को वृद्ध दिखलाई देने और अनुभव करने से हट जावेगा, तो प्रकृति जिस शरीर को हमेशा नवीन रूप से पैदा कर रही है वह सदा जवान रहने लगेगा। स्वयं भी वह जवानी को अनुभव करेगा। वास्तव में यह स्वाभाविक है, क्योंकि वस्तुतः वह जवान ही है॥

बुढ़ापे के विचार को दूर करने के लिये विशेष आवश्यकता इस बात की है कि समय "है" इस को अनुभव किया जावे, न कि यह कि समय "चला जा रहा है"। जब समय नहीं जा रहा तो मनुष्य भी कहीं आगे नहीं जा रहा है॥

यह विचार कि हम बूढ़े हो रहे हैं इस विश्वास से पैदा होता है कि हर साल मनुष्य की आयु में वृद्धि होती है, किन्तु यथार्थ विज्ञान इस बात को सिद्ध करता है कि सालों का आयु से कोई संबंध नहीं। प्रकृति के नियमोल्लंघन के बिना और किसी वस्तु से बुढ़ापा पैदा नहीं होती॥

सुतरां बुढ़ापे का विचार प्रकृति के विरूद्ध है। केवल मनुष्य की भ्रम मूलक कल्पना है। इसे दूर करने के लिये प्राकृतिक नियमों का ज्ञान और जीवन की सत्यता का अनुभव भी आवश्यक है।

इस प्राकृतिकज्ञान को उन्नत करने के लिये प्रथम यह आवश्यक है कि मनुष्य शरीर के यन्त्र की प्रत्येक क्रिया को समझ लिया जाय। इन क्रियाओं में से एक मुख्य क्रिया शरीर को निरन्तर नया बनाती रहती है और दूसरी प्रकृति के नियम के अनुसार सदा वर्तमान में ही सृजन क्रिया करती रहती है। पहिली क्रिया

शरीर को प्रति ८ वें या १० वें मास नया बना देती है। इसी प्रकार शरीर का यौवन अक्षय बनाती रहती है।

दूसरी क्रिया उन दशाओं और गुणों को पैदा करती है जिनका मन को ज्ञान तो है, किन्तु जिसका कार्य केवल वर्तमान से सम्बन्ध रखता है। इस क्रिया का पूर्ण अनुभव केवल इस ज्ञान के दृढ़ हो जाने पर हो सकता है कि प्रकृति में "अब" अर्थात् वर्त्तमान काल के सिवाय कोई काल नहीं है। इस का पूर्ण अनुभव होने से स्वभावतः ही सम्पूर्ण विचार वर्त्तमानमय हो जाएंगे।

इस वर्त्तमानमय जीवन में जीने से मनुष्य को प्रकृति की केवल यथार्थ सत्ता का ही ज्ञान रह जायगा और प्रकृति की ही यह सत्ता है कि मनुष्य अब युवा है। इस लिये यह स्पष्ट होगया कि जब तक मनुष्य इस अनन्त अब में रहेगा तब तक वह युवा भी रहेगा।

छटवां अध्याय

युवा रहने की शक्ति को अक्षय रूप से उत्पन्न करने के लिये सब कांशंस मन की शिक्षा।

सब कांशंस मन में (सब कांशस का विवेचन हो चुका है उसको पढ़ो) अहा! अनन्त समय तक शरीर को स्वस्थ तथा युवा रखने की शक्ति है। मनुष्य के शरीर में जो परिवर्त्तन प्रवृत्ति इच्छा तथा शक्ति प्रगट होती है उन सब का मूल स्रोत यही अर्ध जागृत मन ही है। यह मूल स्रोत कभी भी समाप्त नहीं हो सकता, अतः जब मनुष्य को इस स्रोत को काम में लाने की विधि मालूम हो जावे तो वह अपनी प्रत्येक शक्ति को बढ़ा सकता है, स्थिर रख सकता है और किसी भी गुण में कमाल प्राप्त कर सकता है।

जो बात सब कांशंस मन पर भलीभांति अंकित की जावे या जिस काम के करने की उसे प्रेरणा की जावे, वह उसे कर सकता है और करता है। अतः यह बात स्पष्ट है कि मनुष्य अपने अर्धजागृत मन को उपर्युक्त शिक्षा देने से अपने शरीर में

अब ही यौवन पैदा कर सकता है और जब तक चाहे उस यौवन को स्थिर रख सकता है। शरीर की वर्त्तमान अवस्था चाहे कैसा ही क्यों न हो, सब कांशस मन शरीर को नया बनाने के समय उसकी वास्तविक अवस्था अर्थात् उस नये बने हुए—यौवन में ही वाह्यरूप स प्रगट करने लगेगा।

अर्ध जागृत मन मन का आन्तरिक भाग है और जागृत मन वाह्य भाग है। जागृत मन जीती जागती दशा को कहते हैं. और सब कांशस मन की भीतरी गहराइयों को। जागृत मन में जो विचार पैदा होते हैं सब कांशस उनको क्रियात्मक रूप देने वाला है। जागृत मन प्रेरणा करता है और सब कांशस मन उन पर कार्य करता है। जागृत मन बीज बोने वाला है सब कांशस मन अन्तः करण की भूमि है जिसकी पैदा करने की शक्ति की कोई सीमा नहीं।

जागृत मन के विचार, विश्वास, इच्छायें इत्यादि बीज हैं। जब वे शनैः शनैः बहुत गहाराई तक पहुंच हृदय में जड़ जमा लें तो वे सब कांशस मन में प्रविष्ट हो कर उन के अनुसार ही फल पैदा करते हैं।

सब कांशस को यौवन को उत्पन्न करने की शिक्षा देने के लिये जागृत मन में केवल उन्हीं विचारों और इच्छाओं को उत्पन्न होने देना चाहिये जिनका झुकाव यौवन उत्पन्न करने और स्थिर रखने की ओर हो।

सब कांशस मन में उसके कारणों का बीज पड़ने के बिना मनुष्य के शरीर में किसी प्रकार की भी अवस्था, शक्ति अथवा परिवर्त्तन का आना सम्भव नहीं हो सकता। सम्पूर्ण कारण सब कांशस मन में ही पहिले जड़ पकड़ते हैं फिर कार्य्य करते हैं। जागृत मन कारण पैदा करता है और सब कांशस मन उन्हें अपने अन्दर प्रविष्ट करके उनसे फल पैदा करता है। सब कारण सब कांशस होते हैं और वे ही सब वाह्य मन और शरीर पर अपने प्रभाव प्रगट करते हैं। इस लिये शरीर में यौवन का विकास होने से पूर्व आवश्यक है कि उस का सब कांशस कारण स्थापित हो जाए।

बच्चे के सब कांशंस मन में यौवन के कारणभूत विचार जागृत अवस्था में होते हैं; और बुढ़ापा उत्पन्न करने वाले कारण दबे हुए होते हैं। पहिला कारण शरीर को सदा नया बनाने वाली क्रिया का परिणाम है। इसी कारण से शरीर में यौवन का विकास रहेगा, जबतक कि इस कारण को जागृत और क्रिया शील रक्खा जाएगा। दूसरा कारण अपनी जाति से मनुष्य मात्र संस्कार रूप में ग्रहण करता है। इसी से मनुष्य में बुढ़ापा आता है।

अपने संस्कार जन्म तथा प्रवृत्ति के अनुसार ३०-४० या ५० वर्ष बाद प्रत्येक मनुष्य बूढ़ा होना आरम्भ कर देता है। इस लिये जवानी को स्थिर रखने के लिये इन सब कांशंस संस्कारों को दूर करना आवश्यक है। इस को दूर करने के लिये सब कांशस मन को सर्वदा यौवन के ही विचार उत्पन्न करने की शिक्षा देनी चाहिये। उस मन में यौवन के कारण रूप विचार प्रवृत्ति और संस्कारों के भर जाने से बुढ़ापे के समस्त कारण नष्ट भ्रष्ट हो जांएगे। यही हमारा उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि जागृत मन उचित क्रम से सब कांशस मन को नया ही बना डाले।

जो कारण यौवन पैदा करने और स्थिर रखने के लिये आवश्यक हैं, सब कांशंस मन को उन के अनुसार प्रत्येक क्रिया करने की प्रेरणा करनी चाहिये और इसके विरुद्ध जितनी मानसिक प्रवृत्तियां हों उन्हें नष्ट कर दें।

सब से पहिले सब कांशस मन पर प्रति दिन यह बात अंकित करनी चाहिये कि "मैं अब युवा हूं क्यों कि सदा नया बन रहा हूं" जब सब कांशस मन अर्ध जागृत मन पर यह बात पूर्ण रूप से अंकित हो जावेगी तो वह आपके शरीर में जवानी के लक्षण प्रगट करने लग जायगा और फल यह होगा कि आप जवानी का अनुभव करने लग जांएगे और जवान दिखलाई देंगे। और आप को युवा ही दिखलाई देना चाहिये क्यों कि आप वास्तव में युवा ही हैं और प्रति क्षण युवा बन रहे हैं, परन्तु आप इसे भूले हुए हैं।

इसी क्रम से मनुष्य जाति के बुढ़ापा लाने वाले संस्कार

दूर हो जांएगे और आपके विचार प्रवृत्तियां शरीर को प्रति क्षण नया करने वाली क्रिया में विघ्नरूप न होकर उस की सहायरूप बन जांएगी।

आप अब युवा हैं, यह कोई ख्याली पुलाव ही नहीं है। आपका सारा शरीर कुछ ही काल पहिले नया बनाया जा चुका है। अतः अपने मन में बार २ इसी विचार को दृढ़ करना चाहिये। वास्तव में यह एक महान् सत्य है। यदि आप सब कांशस मन में कोई ऐसा विचार जमाना चाहेंगे जिस के विषय में आपको सन्देह है कि वह सच नहीं है तो उसमें आपको सफलता प्राप्त नहीं होगी। सब कांशस मन केवल उन्हीं विचारों को ग्रहण करेगा जिस को आप हृदय से बिल्कुल सच्चा समझते हैं। सब कांशस मन संदिग्ध मन की आज्ञा पालन नहीं करेगा। जिसके मन में पूर्ण विश्वास और दृढ़ता है वह अपने सब कांशस मन से प्रत्येक काम करवा सकता है। ऐसी दृढ़ धारणा रखना कि आप अब युवा हैं सब कांशस मन को बराबर प्रेरणा करता है कि वह शरीर में यौवन प्रगट करे, आपको यौवन का अनुभव हो और आपके शरीर में यौवन-बल का सञ्चार हो जाए। सब कांशस मन यह कर सकता है और अवश्य करेगा। उसे तो केवल दृढ़ धारणा और प्रेरणा की ही आवश्यकता है।

जिस काम के करने को सब कांशस मन को उचित शिक्षा दी जाय वह उसे निरन्तर करता रहेगा जब तक कि जागृत मन कोई विरुद्ध करने की प्रेरणा न दे दे। इस लिये जब सब कांशस मन को यौवन अनुभव करने की शिक्षा प्राप्त हो जावेगी, तो वह सदा यौवन पैदा करता रहेगा और इस प्रकार अक्षय यौवन उत्पन्न हो जावेगा। परिणाम यह होगा कि जब तक मनुष्य जीवित रहेग, युवा ही रहेगा।

सब कांशस मन में यौवन के कारणरूप विचार पैदा करने की शक्ति केवल एक ही पीढ़ी में बस नहीं हो जाती प्रत्युत सन्तान में भी वही अक्षय यौवन स्थिर रहेगा।

जब माता पिता अपने सब कांशस मन से बुढ़ापा लाने वाली प्रवृत्ति को निकाल फेंकेंगे तो उसकी जगह स्थायी

रूप से यौवन की कारणरूप क्रिया जड़ पकड़ जायगी, और उन से जो सन्तान पैदा होगी उन में वह पुरानी प्रवृत्ति सर्वथा न होगी, जिससे बुढ़ापा उत्पन्न होता है। ऐसे बच्चे जब तक जीवित रहेंगे तब तक उन में युवा रहने की सब कांशस प्रवृत्ति बनी रहेगी। और वे कभी बूढ़े न होंगे, जब तक कि वे फिर अपनी भूल से पुरानी पैतृक प्रवृत्ति के पंजे में न फंस जायें। अपने बच्चों में इस यौवन कारिणी प्रवृत्ति पैदा करने के लिये माता पिता का कर्त्तव्य है कि वे इस प्रवृत्ति को स्थायीरूप से अपने मन पर अंकित करलें।

यह एक अटल नियम है, कि जो संस्कार माता पिता के सब कांशस पर दृढ़ रूप से अंकित हो जाते हैं, वही बच्चों में आजाते हैं। और वही मनुष्य मात्र के सब कांशस मनों में बुढ़ापा लाने वाली प्रवृत्ति है, चाहे वे ८० वर्ष के बूढ़े हों या १५-१६ वर्ष के नवयुवक। इसी लिये नौजवान माता पिता भी बूढ़े माता पिताओं की भांति इस पैतृक प्रवृत्ति को अपनी सन्तान के स्वभाव में प्रविष्ट करते हैं। उन का भी कर्त्तव्य है कि वे इस पैतृक प्रवृत्ति को अपने अर्द्ध जागृत मन से नष्ट कर दें। तभी वे अपने बच्चों में इस यौवन कारिणी प्रवृत्ति को पैदा कर सकते हैं।

जो माता पिता बूढ़ा करने वाली क्रिया को केवल कुछ अंश में दूर कर सकते हैं, उनके बच्चे भी अपना यौवन अधिक समय तक स्थिर रख सकते हैं। परन्तु वास्तव में सब को इस में पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है; इस लिये उन्हें मन में दृढ़ संकल्प करके इस कार्य को आरंभ करना चाहिये।

जब हम सब कांशस (अर्ध जागृत) मन से कोई काम कराने के लिये यत्न करें तो हमें पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि उसमें वह कार्य करने की शक्ति मौजूद है। पूर्ण विश्वास करने से उसमें अक्षय शक्ति पैदा हो जाती है। एक बार जब यह शक्ति प्राप्त हो जाय तो कोई साधन ऐसा नहीं है जो सिद्ध न किया जा सके। जब हम किसी विचार या इच्छा को सब कांशस (अर्ध-जागृत) मन पर अंकित करना चाहें, तो न केवल जागृत मन को इस विचार के सच्चा होने का पूरा विश्वास होना चाहिये,

बल्कि उसमें उस विचार का और उस के उद्देश्य का पूर्ण अनुभव भी होना आवश्यक है। इन दो आवश्यकताओं को 'विश्वास' से बढ़ कर कोई वस्तु पूरी नहीं कर सकती, इसी लिये अर्द्ध जागृत मन को कोई भी शिक्षा देने के लिये जागृत मन में विश्वास कूट २ कर भर देना चाहिये। क्योंकि मनुष्य शरीर की रचना निरन्तर नवीन रूप से हो रही है। अर्द्ध जागृत मन न केवल यौवन को सदा के लिये स्थिर रख सकता है, प्रत्युत मनुष्य शरीर के प्रत्येक अवयव की सदा उन्नति कर सकता है। इस लिये यौवन उत्पन्न करने वाली शक्तियों के साथ२ सब कांशस मन को इस बात की प्रेरणा भी करनी चाहिये कि, शरीर में सौन्दर्य और उन्नति करने वाली शक्ति को भी पैदा करता चला जावे। सब कांशस मन पर पूर्ण सौन्दर्य का भाव जमा दो और सच्चे हृदय से इस बात की कामना करो कि उस सौन्दर्य के चिन्ह तुम्हारे शरीर के प्रत्येक अवयव में प्रगट हों। और इसी प्रकार अर्द्ध जागृत मन को प्रेरित करो कि आपके शारीरिक सौन्दर्य में वृद्धि करे, और आप का व्यक्तित्व अधिक बलवान् और चरित्रवान् बन जाए। यह विश्वास अवश्य साथ २ रक्खो कि, अर्द्ध जागृत मन में इस काम करने की शक्ति है।

जब कभी आप अपने विषय में सोचें तो आपको आवश्यक है कि अपने को पूर्ण रूप से स्वस्थ बलवान् और युवा समझें। यह भाव नित्य सब कांशस मन पर अंकित करना चाहिये, अर्थात् जब आप अपने मन में इस बात को सोच रहे हों तो आपको ध्यान पूर्वक सब कांशस मन (अर्द्ध जागृत मन) का ध्यान करना चाहिये, और इस बात को अनुभव करने का प्रयत्न करना चाहिये कि अर्द्ध जागृत मन इसकी सामग्री प्रस्तुत कर रहा है। जैसा विचार मन में होगा शरीर पर वैसा ही उसका प्रभाव पड़ेगा क्योंकि अर्द्ध जागृत मन पर जो कुछ अंकित किया जावेगा वही समयांतर में शरीर पर प्रगट होगा।

ऐसे कल्पना संसार में मनोयोग पूर्वक भ्रमण करने से सब कांशस मन पर यह भाव अंकित होने में सहायता मिलेगी।

यह विशेष कर उस समय सच है जब कि मन स्वास्थ्य और जवानी के भाव अपने भीतर अंकित करता है।

मनो योग पूर्वक रहने का यह अर्थ है कि सब बातें सब कांशस मन में अंकित हो जायें। जिस बात को हम अपने जीवन में डाल लेते हैं, वह अवश्य ही हृदय पर अंकित हो जाती है, अतः यदि हम हमेशा जवानी के विचारों को धारण करें तो सब कांशस दिल में हमेशा जवानी के तत्व पैदा होने की उत्तेजना मिलेगी।

ऐसा विश्वास करना कि हम प्रति वर्ष बूढ़े होते चले जाते हैं, सब कांशस मन को यह प्रेरित करना है कि वह हमें बुढ़ापे का अनुभव कराये और हम हर साल बूढ़े दिखाई दें। हर एक आदमी यही बात लाचार होकर कर रहा है क्योंकि इसका विशेष कारण मनुष्य की पैतृक आदत है।

जिस प्रकार वह अपने सब कांशस मन को इस बात की प्रेरणा कर रहा है कि बुढ़ापा पैदा करे इसी प्रकार इसको उचित प्रेरणा दी जावे तो सब कांशस मन चिर स्थायी तरुणता भी इसी प्रकार सुगमता से पैदा कर सकता है।

जब सब कांशस मन को जवानी पैदा करने और सारे शरीर में जवानी प्रगट करने की शिक्षा दी जाय तो वह वृद्धावास्था पैदा करने से रह जावेगा और फल यह होगा कि शरीर की नवीन कारिणी क्रिया में कोई हस्ताक्षेप नहीं करेगा प्रत्युत इस में सहायक होगा।

जिस समय पैतृक आदत के कारण बालों का रंग बदल जाने का भय हो तो उस समय उनको बदल न देने के लिये सब कांशस मन को इस बात की प्रेरणा करनी चाहिये कि बालों के स्वाभाविक रंग को सदैव स्थिर रक्खे। यह बात कि बालों का रंग पहिले ही से बदलना आरम्भ हो गया हुआ है, किसी आदमी को इस साधन के प्रयोग में बाधक नहीं होना चाहिये। मनुष्य के शरीर में सब कांशस मन रासायनिक परिवर्तन कर सकता है। बालों के स्वाभाविक रंग वाले तत्त्व को नवीन रूप से प्राप्त करना प्रकृति के लिये किसी घाव को भर देने की अपेक्षा कठिन कार्य नहीं है। किन्तु

मनुष्य स्वभाव में परिवर्तन केवल सब कांशस मन द्वारा ही पैदा हो सकते हैं, अतः सब कांशस मन को प्रथम वही काम करने की प्रेरणा देनी चाहिये जो कि आप इससे कराना चाहते हैं।

सब कांशस मन को बालों के स्वाभाविक रंग को स्थिर रखने की प्रेरणा करने के लिये आपको यथा शक्ति बहुत ही उत्तम रूप से इस रंग का ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात गहरे विचारों से इस तसवीर की असलियत को दिल पर जमा दो अर्थात् अपने विचार को सब कांशस मन की तह में बैठा दो।

जहां रंग बदलना आरम्भ हुआ हो वहां यह बात पर्याप्त है कि मनुष्य अपने हृदय में पूर्ण रूप से विश्वास करले कि सब कांशस मन सदैव बालों के रंग को स्थिर रखने के लिये काम कर रहा है। जहां परिवर्तन आरम्भ हो गया हो वहां स्वाभाविक रंग को पुनः प्राप्त करने के लिये नित्य इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

बालों के स्वाभाविक रंग को कायम रखने के लिये यह भी आवश्यक है कि अधिक मानसिक कार्य, बहुत सोचना, चिन्ता व अन्य कष्टदायक बातों से दूर रहा जाय। जवानी की अवस्था में भी यही बात सच है। सम्पूर्ण मानसिक दशायें सम अवस्था में होनी चाहियें और सारा शरीर उत्तम व स्वस्थ दशा में होना चाहिये।

समता वाली मस्तिष्कीय अवस्थायें, तथा उत्तम स्वास्थ्य आदि प्राप्त करने के लिये केवल इतनी ही आवश्यकता है कि उनके पैदा करने का यत्न किया जावे। अर्द्ध जागृत मन में पैदा करने की शक्ति प्रचुर है।

सब कांशस मन में मनोवांछित फल प्राप्त करने के दृढ़ विश्वास अंकित करने के लिये २ प्रारम्भिक बातें ऐसी हैं जिन पर ध्यान रखना चाहिये। सब से प्रथम जिस विचार को अंकित करना है उसको स्पष्ट रूप से बिना सन्देह मन में समझना चाहिये। दूसरे जब इस विचार को सब कांशस मन में केन्द्रित किया जावे तो उस समय मन को जहां तक हो सके

अत्यन्त गहरी दृष्टि से काम करना चाहिये, और तीसरे शरीर क प्रत्येक भाग में सब कांशस मन को शरीर की वास्तविक सत्ता का अनुभव होना आवश्यक है।

सब कांशस मन सारे मनुष्य शरीर में विराजमान है और हर एक परमाणु उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानसिक जीवन से भरा हुआ है। वस्तुतः यह एक अपरिमित आन्तरिक मानसिक संसार है। मनुष्य शरीर के प्रत्येक भाग में ओत प्रोत हो रहा है। अतः जब सब कांशस मन पर किसी विचार को अंकित करने की कोशिश करनी हो तो सारा ध्यान उस सूक्ष्म जीवन में लगा देना चाहिये, जो वाह्य जीवन में फैला हुआ है। जब कांशस (जागृत) मन, सब कांशस (अर्द्ध जागृत) मन के सूक्ष्म जीवन का अनुभव करता है, उस समय जागृत मन के विचारों की अर्द्ध जागृत मन की ताकत से मुठभेड़ हो जाती है और इस मिलाप के समय जागृत मन जो कुछ कराना चाहे, अर्द्ध जागृत मन उसको करना आरम्भ कर देगा।

जब जागृत मन गूढ़ चिन्तन में निमग्न हो और जब इच्छा व विश्वास मिल जावें तो इस प्रकार के गूढ़ विचार अवश्य पैदा होते हैं अर्थात अर्द्ध जागृत मन पर अंकित करने की इच्छा और इस बात पर पूर्ण विश्वास कि अर्द्ध जागृत मन पर जिस काम करने का विचार स्थिर किया जाय वह इस काम को कर सकता है।

— —o— —

सप्तम-अध्याय

सतत नवीन कारिणी क्रिया की जागृत मन के साथ अनुकूलता

सारा ब्रह्माण्ड सतत नवीनकारिणी क्रिया के आधीन है। जो कुछ नज़र आता है सब में परिवर्तन हो रहा है। इस परिवर्तन का अर्थ यह है कि सम्पूर्ण पदार्थों को हमेशा नये ढांचे में ढाला जाय।

यही नियम हर समय मनुष्य शरीर में काम करता हुआ हर एक चीज़ को परिवर्त्तित करता और उसे नये सिरे से बनाता रहता है। किन्तु विशेष २ व्यक्तियों के जीवन में इस नियम का प्रभाव क्या होगा, यह इस बात पर निर्भर है कि वह व्यक्ति इस नियम से क्या सम्बंध रखता है और वह कहां तक इस नियम के वास्तविक उद्देश्य से सानुकूलता रखता है।

जब मन इस नवीनकारी नियम के साथ सानुकूलता से काम करता है तो इस नियम के फल उस मनुष्य के जीवन, हृदय और शरीर में प्रगट होंगे, किन्तु जब मन इस नियम के अनुसार काम नहीं करता तो उसका कोई प्रभाव न होगा।

नवीनकारी नियम सारे मनुष्य शरीर को नवीन रूप से बराबर चलाये जा रहा है, किन्तु नये शरीर का नये हालात को प्रगट करना या पुराने ही हालात को प्रगट करते चले जाना इस बात पर निर्भर है कि नवीनकारी नियम के फल को मनुष्य का मन नष्ट करता है या नहीं।

जब मन अपने आपको नवीनकारी नियम के अनुकूल रखता है और हर समय उसके अस्तित्व को ध्यान में रखता है, तब मन का हर एक काम नवकारी नियम का रूप धारण कर लेगा और नियम के अनुसार कार्य भी करेगा और फल इसका यह होगा कि नवीनकारी नियम जिन अवयवों को नवीन रूप से उत्पन्न करेगा, वे अपनी नवीन अवस्था में ही शरीर और मन में प्रगट होंगे और प्रगट

होते समय मन के हस्ताक्षेप से उनमें कोई परिवर्तन परिवर्धन न होगा, प्रत्युत वह ठीक २ वैसे ही दिखलाई देंगे जैसे कि वे वस्तुतः हैं अर्थात बिल्कुल नए।

जब मन नवीनकारी नियम के साथ सानुकूल होकर काम नहीं करता और नवीनकारी नियम को स्वीकार नहीं करता तो उसका हर एक विचार बुढ़ापा पैदा करने की ओर प्रवृत्त होगा। नवीनकारी क्रियानुकूल नई २ चीज़ें निकलेंगी मन उन्हें बिल्कुल पुराने रूप में प्रगट होने देगा और इससे नवीनकारिणी क्रिया का प्रभाव नष्ट हो जायगा। शरीर में सब कुछ नया बनता रहने पर भी कोई चीज़ नई बनी हुई दिखाई न देगी।

जब मन इस नियम के प्रतिकूल काम करता है तो मनुष्य वृद्धकारी स्वभाव का अनुसरण करता है और उसके शरीर में जो चीज़ें नवीन रूप से पैदा होती हैं उसको इस प्रकार बदल देता है कि वह बूढ़ा दिखलाई देता है, वृद्धता को अनुभव करता है और इस प्रकार से काम करता है मानो वह बूढ़ा ही है।

मन शरीर के प्रत्येक भाग में काम करता है और मनुष्य के शरीर में जो कुछ हो रहा है उसमें परिवर्तन परिवर्धन कर सकता है। जो कुछ मन से परिवर्तन किया जाता है वह प्रायः उसी रूप को ग्रहण कर लेता है जो कि मन में सब से अधिक हो। अतः नवीनकारिणी क्रिया जिन चीज़ों को नवीन रूप से बनाती है तब तक पुरानी होती चली जायगी जब तक कि मन में बुढ़ापे का अनुभव होता रहेगा। मन इस प्रकार से काम करे कि मानो यह बुड्ढा है, और यह विश्वास रक्खे कि सब कुछ दिन दिन पुराना होता चला जाता है, तो शरीरोत्पादक शक्तियां शरीर के प्रत्येक भाग को इतना बूढ़ा और पुराना दिखलायेंगी जितना कि मन अनुमान करता है। जिस मन को सतत नवीनकारी नियम का ज्ञान नहीं है उसे प्रति वर्ष अधिकाधिक बुढ़ापा मालूम होगा, क्योंकि उसका विश्वास है कि हर एक चीज़ प्रति वर्ष पुरानी होती चली जाती है।

जो मन सतत नवीनकारी नियम के सर्वथा अनुकूल काम करता है, वह यह अनुभव करेगा कि सम्पूर्ण पदार्थ अब नए हैं और

परिणाम यह होगा कि उत्पादिनी शक्तियां शरीर के प्रत्येक भाग में नवजीवन संचारित करदेंगी। मन को बराबर नवीनकारी नियम के अनुकूल काम करना सिखलाने के लिये शरीर के प्रत्येक भाग में इस नियम को प्रत्येक दशा में अनुभव करना चाहिये। वृद्धता के विचार ही को बिल्कुल भुला देना चाहिये और इस बात पर पूर्ण विश्वास करना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु नई है। मन को चाहिये कि सदैव अपने आपको तरोताज़ा करने के खयाल को दृष्टि में रखे और यह अभिप्राय उस समय सिद्ध हो सकता है जब कि अपने हृदय में नवीन व उच्च भावों को स्थान दिया जाय और मन को ऐसा ही विचार करने की शिक्षा दीजाय। प्रत्येक विषय में आपके विचार नवीन होने चाहियें और पहिले की अपेक्षा आने वाले विचार नवीन होने चाहियें।

किसी विषय में जो मानसिक विचार आज पैदा हो वह पूर्व की अपेक्षा नवीन उत्तम और उच्च होना चाहिये। मन का विशेष उद्देश्य यह होना चाहिये कि अपने ही विचारों को सदैव नवीन करता और उन्नति देता रहे।

जो मन सदैव अपने आपको तरो ताज़ा कर रहा है उस में सदा हर एक विषय पर नवीन व उच्च विचार पैदा होंगे। और आपके मन पर इस परिवर्तनकारी नियम का बड़ा प्रभाव पड़ेगा, जिसका फल यह होगा कि मन को न केवल शरीर ही में जवानी का अनुभव होगा अपितु मन और चाल चलन रूपी सारी सृष्टि के रूप में परिवर्तन करके उसे बढ़ा देगा और सर्वांग पूर्ण बना देगा।

पुराने विचार को मस्तिष्क में स्थान देते रहने से उन पैतृक प्रवृत्तियों को सुदृढ़ होने का अवसर मिल जाता है जो वृद्धकारी प्रभाव को पैदा करती हैं, क्योंकि वही पुराना विचार वह विचार है जिससे मन में कोई परिवर्तन नहीं होता। नये विचार से नया तथा दीर्घ जीवन पैदा होता है, और पुराना विचार सारे शारीरिक अवयवों को निर्बल बनाता है।

जो पदार्थ सदा नया किया जा रहा है वह कभी निर्बल न होगा जबतक कि परिवर्तनकारी नियम के विश्वास को नष्ट न कर दिया जावे, किन्तु यह उन्हीं लोगों में नष्ट होता है जिनके विचार पुराने बने रहते हैं। यह अवस्था उस समय दूर हो जावेगी जब मन सदैव नये विचारों द्वारा अपने आपको तरोताजा करना आरंभ कर देगा अर्थात् ऐसे विचारों में संलग्न होगा जो दिन प्रति दिन उन्नति करके अपने को उत्तम बना रहे हों। जब मन पुराने विचारों में मग्न होगा तो नये पुराने का भेद मालूम न हो सकेगा। किन्तु जब मन हमेशा नवीन विचारों को धारण करके आगे बढ़ता हो तो नव परिवर्तन कारी नियम द्वारा शरीर में केवल नवीनता ही नहीं प्रगट होगी अपितु उसके रूप रङ्ग में भी अपूर्व उत्तम सौन्दर्य आजायगा।

सतत परिवर्तन कारी नियम द्वारा हर एक वस्तु नयी बनतेही उन्नति करना आरंभ कर देगी, परन्तु मन यदि अपने आपको हमेशा तरोताज़ा करता रहे और परिवर्तन कारी नियम के बिल्कुल अनुकूल कार्य करता रहे।

जो परिवर्तन प्रत्येक वस्तु में हो रहा है मनको उसके साथ पूर्ण रूप से मिला हुआ रखने से मन की उक्त क्रिया में बराबर उन्नति हो सकती है। यह बात कि प्रत्येक वस्तु में बराबर नये होने का गुण मौजूद है, मनको प्रकृति के नियमानुकूल भी जीवन व्यतीत करने से पूर्णतया प्राप्त हो जाती है (अर्थात् मन यदि प्रकृति के साथ चले और असली नियम के अनुसार काम करे तो उसको पता लगेगा कि प्रत्येक वस्तु हमेशा नई हो रही है, इस नये होने के अमल के साथ मन अपने आपको भली भांति लगावे, तो मन उसको अनुभव करेगा और उसके साथ वह उन्नति करेगा और सदैव उस में नवीनता आती रहेगी। संपादक) सारी दुनिया हमेशा घूमती रहती है और चूंकि घूमने फिरने से अवश्य ही परिवर्तन होता रहता है, इस लिये प्रकृति में सदैव परिवर्तन हो रहा है, परिवर्तन से नवीनता भी आती है अतः यह बात निस्संदेह

सिद्ध होगई, कि प्रकृति की ओर से बराबर नवीनता आती रहती है। इस नियम द्वारा प्रत्येक वस्तु बराबर नये सिरे से बन रही है, सब चीजें सर्वदा नई हैं और नई हो रही हैं, और अपनी असली व ठीक हालतों में सारी चीजें सदा ही नई देख पड़नी चाहियें। किन्तु यह बात कि मनुष्य के शरीर में नई चीजें हमेशा नई मालूम नहीं देती, साबित करती हैं, कि मनुष्य ठीक प्रकार से रहन सहन नहीं करता। ठीक दशायें पैदा करने के लिये मनुष्य को ठीक रूप से जीवन व्यतीत करना चाहिये, और ठीक जीवन व्यतीत करने के लिये प्रकृत्ति के असली नियम के अनुसार जीवन व्यतीत किया जावे। इन नियमों में से एक अत्यन्त आवश्यक नियम सार्वकालिक नवीन कारिणी क्रिया का है, अतः जो मन सर्वकालिक नवीनकारी नियम को अपना मुख्य उद्देश्य नहीं समझता वह प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत नहीं करता। जो मन प्रकृति के सानुकूल नहीं रहता वह प्रतिकूल दशा उत्पन्न करता है और ऐसी ही दशायें नवीनकारी नियम के प्रभाव को बदल देती हैं या कम कर देती हैं, जिससे नई चीजें ऐसी दशा में दिखलाई देती हैं मानो वे नई नहीं हैं।

जो चीज़ कि अपनी अच्छी हालत में हो वह कभी पुरानी नहीं होती। सदैव तरोताज़ा या जवान देख पड़ना ठीक या दूसरे शब्दो में स्वाभाविक है, क्यों कि प्रकृति का एक विशेष नियम हर एक वस्तु को सदा नया बना रहा है।

जो अवस्थायें पुरानी मालूम होती हैं वे ठीक नहीं हैं। आयु का विचार बिल्कुल कृत्रिम है, और यह नवीनकारी नियम में हस्ताक्षेप करने का कुफल होता है।

प्रकृति अवस्थायें नहीं पैदा करती बल्कि यह अवस्थायें तब पैदा होती हैं कि जब मनुष्य प्रकृति के नवपरिवर्तन कारी नियम के अनुसार आचरण नहीं करता।

बुढ़ापा तथा बुढ़ापे संबंधी अन्य बातें जिन्हें मनुष्य बुढ़ापेके नाम से पुकारता है अस्वाभाविक हैं, और जब मनुष्य प्रकृति के

अनुकूल आचरण करे तो वे दूर होजानी चाहियें। स्वाभाविक बनना क्या है कि प्रकृति के नियमानुकूल आचरण करना और उसी के अनुकूल सोचना विचारना और इसका उद्देश्य यह है कि मनुष्य के शरीर में हर एक अणु को तरोताज़ा रक्खा जाय और हर एक वस्तु को उन्नति दी जाये।

यह बात कि प्रकृति ने परिवर्तन कारी नियम बनाया है, और हर एक वस्तु का अस्तित्व इसी नियम पर रक्खा है, परिवर्तन करने का काम मनुष्य पर नहीं छोड़ता। वह स्वयं ही हो रहा है, मनुष्य को जो कुछ करना चाहिये वह यही है कि वह इस परिवर्तन में बाधक न हो और न उसके परिणाम को उल्टा पल्टा करे। मनुष्य को अपने शरीर में नव जीवन पैदा नहीं करना पड़ता बल्कि जो परिवर्तन पहिले से हो रहा है उसी के अनुकूल जीवन व्यतीत करना, विचार करना और काम करना सीखना होता है। इस नियम द्वारा मनुष्य शरीर में निरन्तर जवानी पैदा होरही है, किन्तु अज्ञानता से इसका इतना दुरुपयोग हो रहा है कि नया शरीर भी नया नहीं मालूम होता और नहीं उसमें नवीनता का अनुभव होता है; बल्कि उसमें इतनी अधिक आयु का अनुभव होता है, और वह इतनी अधिक मालूम होती है जितनी कि मनुष्य के पैत्रिक विश्वासानुसार उसे किसी विशेष समय पर दिखलाई देनी चाहिये।

मनुष्य की इन दुर्भावनाओं को इस प्रकार दूर किया जाय कि मनुष्य का शरीर अपनी असली दशा में दिखलाई दे और मन को भी इसका अनुभव हो। जब यह उद्देश्य सिद्ध हो जायगा तब मनुष्य युवा दिखाई देगा, जवानी को अनुभव करेगा, जब तक इस संसर में जीता रहेगा जवान ही बना रहेगा।

किसी बुराई को दूर करने का तरीका यह है कि उसके विरुद्ध ठीक काम की जड़ उस की जगह पर रक्खी जाय। मन को इस नियम में बाधक होने से रोकने के लिये उसकी सारी शक्तियों को उसके कार्य की उन्नति में लगा देना चाहिये और उन

शक्तियों को उस ओर लगाने के लिये आवश्यक है कि सारा विचार इसकी उन्नति में लगायें।

हमेशा अपने आपको तरोताज़ा करने के लिये सब से आवश्यक बात यह है कि मन को ऐसी शिक्षा दीजाय कि जो कुछ बातें मन में पैदा हों उनके विषय में उच्च भावनायें पैदा करें।

जब मन सोचना आरंभ करे तो उसका उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह प्रति पल उदार व उच्च भावों को पैदा करे और इसको उन्नति देने का विचार इतना दृढ़ होना चाहिये कि मन की सारी शक्तियां इसी विचार में प्रवृत्त हो जाये। इसको बढ़ाने की विधि यह है कि मन की सारी शक्तियों को इसी उद्देश्य की पूर्ति में लगा दिया जाय, और जब यह अभिप्राय सिद्ध हो जायगा तो मन में अपने आपको तरोताज़ा करने और उन्नति करने की प्रवृत्ति दृढ़ होजायगी।

ऐसे मन की यह दशा हो जावेगी कि वह विचार करने का तात्पर्य उत्तम विचार पैदा करना ही समझेगा, क्योंकि मन के प्रत्येक भाव में एक छिपी हुई प्रवृत्ति पैदा होजायगी जिससे कभी वह काम में आये तो अपने आपको ताज़ा करने और उन्नति करने की ओर ही प्रवृत्त होगा।

जब मन में यह भाव स्थिर होजायगा तब वह सदैव अपने आपको तरोताज़ा करता रहेगा और फल यह होगा कि वह परिवर्तनकारी के नियम के अनुकूल काम करता रहेगा। इस नियम के फल को नष्ट करने की जगह इस के परिणाम को पूर्ण रूप से प्रगट करेगा। नया शरीर नया ही मालूम होगा, इसमें तरोताज़गी का अनुभव होकर जवानी व ताकत के सारे लक्षण दृष्टि गोचर होंगे और वह आदमी जवान ही बना रहेगा, क्योंकि प्रकृति मनुष्य को जो नया शरीर प्रतिवर्ष देती है उस पर बुढ़ापे का बोझ पड़ना बंद होजायगा।

जो मन पुराने विचारों में रहन सहन करता है वही नये शरीर को बुढ़ापे से भर देता है और इस प्रकार नये शरीर में

बुढ़ापे का अनुभव होता है और बूढ़ा देख पड़ता है, किन्तु जब मन हमेशा अपने आपको तरोताज़ा करने लग जायगा तो न तो बुढ़ापा रहेगा और न ही पुराने विचार ही रहेंगे बुढ़ापा स्वभवत नष्ट हो जायगा और मनुष्य जब तक इस संसार में रहेगा तब तक युवा अवस्था ही में रहेगा।

आठवां-अध्याय

अनुभव का मुख्य परिणाम तारुण्य स्थैर्य्य होते हुये भी वह बुढ़ापा क्यों पैदा करता है ?

जो आदमी जीता है, वह खयाल करता है, वह काम करता है, और जो काम करता है वह अनुभव प्राप्त करता है।

जीवित रहने से आयु अधिक होती है क्योंकि जीवन से अनुभव प्राप्त होता है, और उससे मन में नवीन व उच्च विचार पैदा होते हैं, अनुभव प्राप्त होने से बुद्धिमत्ता और बल इत्यादि प्राप्त होते हैं। अधिक अनुभवों का प्राप्त होना मन की नवीनता का साधन है । बराबर नवीनता प्राप्त करने के बाद मन में नवीनता अवश्य ही आवेगी।

किन्तु अनुभव की प्राप्ति एक स्थिर रहने वाला कार्य है, क्योंकि जब तक जीवन है तब तक अनुभव प्राप्त होता ही रहता है। मन के सदा तरोताज़ा होते रहने से सारे शरीर की जवानी कायम रहेगी और चूंकि अनुभव की आंतरिक प्रवृत्ति मन को तरोताज़ा करती है इसलिये अनुभव का असली फल यौवन स्थैर्य्य ही होना चाहिये।

जवानी को स्थिर रखने से यह तात्पर्य है कि मनुष्य के शरीर में जितने अवयव हैं उन सब की सदैव वृद्धि की जावे, और उनको उन्नति दीजावे, और अनुभव प्राप्त करने का उद्देश्य इस उन्नति को प्राप्त करना है, अतः अमुभव का संबंध जीवन की उस

अविच्छेद प्रवृत्ति के साथ है जिसका उद्देश्य जीवन की वृद्धि करना, और जवानी को स्थिर रखना है।

जीवित रहने से अनुभव प्राप्त होता है, अनुभव प्राप्त हो जाने से मनुष्य अधिक समय तक जीवित रह सकता है, और अधिक समय तक जीवित रहने से जवानी स्थिर रहती है। जब जीवन वृद्धि हो रही हो तो बूढ़ा होना संभव नहीं है।

जब उन्नति शील मन को कोई विचार पहुंचेगा जिसका कोई मुख्य उद्देश्य हो तो अनुभव जनित तत्त्व इस उद्देश्य की पूर्ति में प्रयुक्त होंगे, और जब यह अभिप्राय सिद्ध होता है तो मन अनुभव करता है कि यह पक्का हो रहा है। परिपक्वता के भाव से भविष्य उन्नति के रुक जाने का भय होता है, क्योंकि भविष्य उन्नति वहां हो ही नहीं सकती जहां कि, पक्वता, या पूर्णता का खयाल हो जावे, अतः जो मन शरीर में पूर्णता के विचार को काम करने की आज्ञा देता है वह सारे शरीर में परिपक्वता के अमल का काम करता है, और ज्यों ज्यों परिपक्वता का भाव जड़ पकड़ता जावेगा त्यों त्यों उन्नति का भाव उखड़ता चला जावेगा, परिणाम यह होता कि प्रत्येक भाग में उन्नति स्थगित होती चली जायगी और जो चीज़ बढ़ने से रुक जायगी वह बूढ़ी होनी शुरू हो जायगी।

जब मन उन्नति को सर्व कालिक समझेगा तो किसी परिणाम का विचार ही पैदा न हो सकेगा जितना ही आगे पैर बढ़ाया जायेगा, उतना ही अधिक उन्नति का खयाल पैदा होगा। इससे परिपक्वता का खयाल बिल्कुल जाता रहेगा।

हर एक अनुभव का मुख्य उद्देश्य चेतनता उत्पन्न करना है और जब तक यह चेतनता रहेगी तब तक मन के नवीन परिवर्तन का भी नियम जारी रहेगा और इस का फल यह होगा कि तुम जीवित रहोगे।

किन्तु परिपक्कता के भाव से अनुभव के इस मुख्य उद्देश्य में हस्ताक्षेप होता है । परिपक्कता का भाव स्वभाविक नहीं है, यह मन की भ्रान्तियों का परिणाम है जो कि स्वाभाविक उन्नति के भाव के सर्वथा विरुद्ध है ।

परिपक्कता या पूर्णता का भाव भी एक विशेष उद्देश्य प्राप्ति का ध्यान रखता है, और जब इस निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जावे तो उसमें काम को बंद कर देने की प्रवृत्ति होती है। उन्नति के लिये कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं है और इस लिये वह कभी भी काम बंद करना नहीं चाहता। उन्नति की क्रिया समाप्त हुए कार्यों का खयाल नहीं करती है प्रत्युत केवल वर्तमान काल में उन्नति करने ही में लगी रहती है और इस लिये हमेशा वर्तमान काल में उन्नति करती चली जाती है ।

यदि पदार्थों पर सूक्ष्म दृष्टि डाली जाय तो कोई काम किसी समय में भी समाप्त नहीं होता, प्रत्युत जो काम समाप्त हुआ दिखाई देता है वह वस्तुतः किसी बाद में आने वाले बड़ काम की सूचना है और उन्नतिं का नियम इन सब अवस्थाओं में लगा तार काम करता चला जाता है ।

अतः यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि परिपक्कता का खयाल करना या उसकी आशा करना मनुष्य के शरीर में एक मिथ्या भ्रम को प्रविष्ट करना है और चूंकि इस परिपक्कता के भाव की वास्तविक प्रवृत्ति प्राकृतिक उन्नति को रोकती है, इससे यह प्राकृतिक नवीनता के नियम को, जो कि मनुष्य शरीर में कार्य कर रहा है, शरीर की जवानी को स्थिर रखने से रोकता है ।

परीक्षा करने पर यह बात स्पष्ट प्रगट होती है कि अनुभव बुढ़ापे पैदा करने की प्रवृत्ति का कारण इसलिये है

कि मनुष्य जाति इस पर विश्वास करती है कि तजरुबे से मन की परिपक्कता प्राप्त होती है,और क्योंकि परिपक्कता से उन्नति स्थगित हो जाती है, इस लिये वृद्धता अवश्य आनी चाहिये। क्योंकि जो चीज़ बढ़ने से रुक जावे वह बूढ़ी होनी शुरू हो जाती है। बुढ़ापा रुकी हुई या स्थगित उन्नति की ही एक अवस्था है। यह एक ऐसी अवस्था है जहां कि उन्नति बंद होकर अवनति प्रारंभ हो गई है या आरंभ होना चाहती है, किन्तु जब तक उन्नति का नियम जारी रहे, तब तक शरीर में अवनति का प्रभाव नहीं पड़ सकता। जहां उन्नति काम कर रही हो वहां अवनति काम नहीं कर सकती और जहां बढ़ाव का काम जारी हो वहां घटाव की दाल नहीं गलती। अतः अबाध्य उन्नति व बढ़ाव से बुढ़ापे की सम्पूर्ण अवस्थाएं मनुष्य के शरीर से नष्ट हो जायेंगी और परिणाम यह होगा कि जवानी सदैव स्थिर रहेगी।

सर्वकालिक परिवर्तनकारी नियम शरीर के प्रत्येक भाग में सतत उन्नति व बढ़ाव का प्रबन्ध कर रहा है और अनुभव दिल को अधिक काम के लिये बढ़ा देता है, जिससे उन्नतिकारी नियम को मनुष्य शरीर की उन्नति व वृद्धि का उत्तम अवसर मिलता है।

इस क्रिया में बुढ़ापे के नियम को कोई स्थान नहीं दिया जाता और इस लिये बुढ़ापा उस समय तक मनुष्य शरीर में प्रविष्ट नहीं हो सकता जब तक कि मनुष्य प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करके स्वयं ही उसे पैदा न कर ले।

इस नियम का पालन करने के लिये मन को उद्देश्यानुकूल काम करने की शिक्षा देना आवश्यक है।

यह अभिप्राय इस प्रकार सिद्ध हो सकता है कि मन प्रत्येक अनुभव को उत्तम कार्यों का सर्वोत्तम साधन समझे, और अर्द्ध जागृत मन को हर एक अनुभव के फैलाने वाली, बढ़ाने वाली

और उन्नति करने वाली प्रवृति का अनुभव कराया जाय। अर्द्ध जागृत मन पर प्रति दिन यह बात अंकित करनी चाहिये कि हर एक अनुभव फैलाने वाली, बढ़ाने वाली और उन्नति करने वाली प्रवृत्ति रखता है। इस प्रकार कुछ ही समय में अनुभव के इस आंतरिक उद्देश्य का भाव सब-कांशस मन में पैदा होना शुरू हो जायगा और इसके बाद सब-कांशस मन अनुभव की प्रवृत्ति के अनुसार काम करने लग जायगा।

कांशस (जागृत) मन की यह आशा होनी चाहिये कि हर एक अनुभव किसी नये काम का रस्ता खोले। फलतः जागृत मन की सारी शक्तियां अनुभव की प्रवृत्ति के साथ २ काम करेंगी सब कांशस व जागृत मन जब हमेशा नई हालत को ग्रहण करता हो और सब कांशस (अर्द्ध जागृत) मन पहले वाली बढ़ने वाली प्रवृत्ति के साथ काम करता रहता है तो सर्वकालिक परिवर्तनकारी नियम सारे शरीर में उन्नति करेगा, जिससे जवानी कायम रहेगी क्योंकि परिपक्वता व स्थगित उन्नति की हालतें बिल्कुल लुप्त हो जायेंगी। जब मन में परिपक्वता का अनुभव होता है तो वे हालतें शरीर के प्रत्येक भाग में और विशेष कर चेहरे में होंगी, क्योंकि इस अवस्था पर मन के प्रभाव बड़े दृढ़ होते हैं और परिपक्वता रूप रंग में अवश्य ही बुढ़ापे के लक्षण पैदा कर देगी।

अतः यह बात स्पष्ट सिद्ध हो गई कि परिपक्व होने की अस्वाभाविक प्रवृत्ति बुढ़ापा पैदा करने का एक विशेष कारण है, तथापि उन्नति शील मस्तिष्क परिपक्वता को नहीं पहुंच जाता। ज्यों १ वह उन्नति करता जाता है, त्यों २ अधिक उसको उन्नति करना शेष मालूम होता है, और नई २ बातें जो प्रगट होती हैं उनको कार्य में लाने की इच्छा उसको अधिक होती जाती है। ऐसा मन कभी अपनी परिपक्वता को अनुभव नहीं करता, और न उसे प्रगट करता है, न कोई वस्तु उसे बेकाम बना सकती है और न उसको उत्तेजित कर सकती है।

साधारण पुरुष बहुत से अनुभव करते २ अपने मन को थका हुआ समझने लगता है, क्योंकि वह अनुभव को ताज़गी ताकत व उन्नति का साधन समझने की बजाय थकावट का कारण समझता रहा है, फलतः वह थका हुआ और बूढ़ा मालूम होता है और धीरे २ वह बिल्कुल बुढ़ापे के चंगुल में फंस जाता है। अनुभव क्रिया को कहते हैं और क्रिया में, जैसा कि साधारणतः ख़याल किया जाता है, शक्ति व्यय होती है, इसलिये विश्वास किया जाता है कि अधिक अनुभव से कमज़ोरी व थकावट पैदा होगी, किन्तु यह असली क्रिया पर विजयी नहीं होती, सुतरां अनुभव को निर्बलता और थकावट का कारण समझना विरुद्ध है।

असली तात्पर्य क्रिया का यह है कि शारीरिक शक्ति को क्रमशः काम में लाया जाय। अनुभव क्रिया के विस्तार को बढ़ाने में सहायता प्रदान करता है, अतः परिणाम यही होता है कि अनुभव जब कि उसमें कोई क्रिया न हो मस्तिष्क और शरीर दोनों को शक्ति प्रदान करेगा।

जब कि मनुष्य शरीर में प्रत्येक क्रिया जमा हुई शक्ति को अधिक प्रयोग में लाये जाने के लिये प्रवृत्त करती है, तो मनुष्य की शक्ति व योग्यता स्वभावतः बढ़ती हो जानी चाहिये। जब दिमाग़ इस बात को सोचने का आदी हो जायगा कि किसी क्रिया से थकावट नहीं आ सकती बल्कि वह उन्नति का कारण होती है, तो प्रत्येक क्रिया से ऐसे ही फल प्राप्त होंगे।

मस्तिष्क को इस योग्य बनाना कि वह अनुभव अर्थात् प्रत्येक नवीन क्रिया के समूह को यथा शक्ति अनुकूल व उपयोगी बनाने में लगा रहे मानो तजरुबे के वास्तविक उद्देश्य को उन्नति देना है, क्योंकि सारे मनुष्य मात्र को स्थायी शक्ति पहुंचाने के लिये आवश्यकता इस बात की है कि जीवन में स्थायी उन्नति होती रहे।

मस्तिष्क में ऐसी योग्यता उत्पन्न करने के लिये प्रत्येक अनुभव को इस विचार से काम में लाना आवश्यक है कि मानो वही अनुभव नए २ उत्तम अनुभवों को प्राप्त करने का साधन है।

मस्तिष्क को इस योग्य बनाना चाहिये कि वह जागृत व अर्द्ध जागृत प्रत्येक अनुभव से एक अभिज्ञता और उस अभिज्ञता से एक नई अभिज्ञता प्राप्त करता हुआ उन में से हर एक अनुभव को एक नई दुनिया में दाखिल करने का खुला हुआ दरवाज़ा ख्याल करे और जब कभी यह दरवाजा खुलता है तो उसमें दाखिल होना मानो आंतरिक दुनिया को ताज़गी और विस्तार देना है। जब कि आंतरिक दुनिया को स्थायी जीवन पहुंचता हो तो बुढ़ापा आना असम्भव है।

जब कि मस्तिष्क प्रत्येक अनुभव को उन्नति और वृद्धि का साधन समझता है तो अनुभव में परिपक्वता व आयु की अधिकता बाधक न होगी प्रत्युत प्रत्येक अनुभव अबाध रूप से अपनी असली हालत में उन्नति देता रहेगा जो कि मस्तिष्क को सदैव नए २ आविष्कारों से लाभ पहुंचाता हुआ एक स्थायी यौवन का अभ्यासी बनावेगा। प्रत्येक अनुभव मस्तिष्क में एक नया ही ढांचा पैदा करता है और यह ढांचा वैसा ही होगा जैसा कि मस्तिष्क में इस ढांचे के स्थिर होते समय इस अनुभव की ओर से मन में कल्पना हुई हो।

मन में ऐसे ढांचों को क़ाम करते समय सावधानी की बड़ी आवश्यकता है, क्यों कि इन्हीं ढांचों के अनुरूप मनुष्य का आगामी जीवन बनता है और मनुष्य वैसा ही हो जाता है जैसा कि वह सोचता है। जो बात स्वभाव में दाखिल हो जाती है उसका मनुष्य के आचार विचार पर बड़ा स्थायी प्रभाव पड़ता है। ऐसे मानसिक विचार जो स्वाभाविक इच्छा के साथ दोबारा बढ़ाने और विस्तार देने के लिये पैदा किये गये हैं, उन्नतिशील विचारों को पैदा करेंगे अर्थात् उन विचारों को पैदा करेंगे जो स्वाभाविक उन्नतिशील अवस्थाओं की सहायता करेंगे और इस प्रकार अधिक शक्ति प्रदान करते रहेंगे।

अनुभवों में से गुज़रते रहना जागृत मन को हानि के विचार से वर्जित करता है। अनुभव प्राप्त करने के समय मस्तिष्क का वास्तविक उद्देश्य यह होना चाहिये कि उस अनुभव से जो और

अनुभव पैदा होता है उसको कार्य में लाये, अर्थात अनुभव से आगे चला जावे। यह अभ्यास जागृत मन को उन्नति की ओर आकर्षित कर लेगा, और उन्नति शील विचार हमेशा नये सिरे से शक्ति उत्पन्न करने वाले होते हैं।

अनुभव करते समय इससे एक नया अनुभव पैदा करना विचार को उन्नत करना है, और ऐसा ख़याल केवल स्थायी शक्ति का ही कारण नहीं होता, बल्कि मानसिक शक्तियों को भी उन्नत करता है। हर एक अनुभव से एक उत्तम अनुभव निकालना मानो उस अनुभव की असलीयत और प्रवृत्ति तथा उद्देश्य के विषय में एक यथार्थ विचार स्थिर करना है। किसी जगह अड़ नहीं जाना चाहिये। किसी विशेष सीमा का ख़याल नहीं करना चाहिये। अन्तिम परिणाम का कोई अस्तित्व नहीं है। यह बात पूर्ण रूप से प्रमाणित होती है, कि प्रत्येक बात पूर्ण रूपेण प्रमाणित होते ही दूसरी बातों से सम्बद्ध प्रतीत होती है।

परिमित विचारों का भी कोई अस्तित्व नहीं है। हर एक विचार जिसको विचार कहना चाहिये उसमें विचार की उन्नति अवश्य होती है। मस्तिष्क, जिस को बहुत अनुभव होते हैं, उसको जानना चाहिये, कि उसने यथार्थ विचार के साथ अभी सम्बंध पैदा किया है, न कि इससे आगे।

जो अनुभव अब तक वह कर चुका है, वे उनके सामने बिल्कुल महत्त्व हीन हैं, जो कि, मनुष्य के विचार को उन्नति पर पहुंचाने के लिये अब तक सुरक्षित हैं।

नवम अध्याय

विचार मन को उत्तेजित करने और शरीर को उन्नति देने वाले होने चाहियें ।

विचार शक्ति में न केवल मनुष्य के रूप रंग ही पर प्रभाव डालने अपितु शरीर के रासायनिक तत्वों को भी प्रभावित करने की शक्ति होती है। अतः यदि मनुष्य जवानी को स्थिर रखना चाहे, तो उसे अपने आपको केवल ऐसी बातों को सोचने का स्वभाव बनाना चाहिये, जिनमें यौवन पैदा करने की प्रवृत्ति हो।

पुराने विचारों को सोचने से शरीर में वृद्धता आती है, और वे समस्त विचार पुराने हैं, जिनमें वृद्धि और उन्नति का तत्व विद्यमान न हो।

भारी विचार सोचना मानो कुल नसों के चक्करों पर दबाव डालना है, और जब नसों के चक्कर पर दबाव पड़ा हुआ हो तो शरीर के प्रत्येक खाने में भारी सर्द अवस्थायें पैदा होती हैं । यह अवस्थायें अपने रासायनिक परिणाम के कारण शरीर के अवयव की रचना को कठोर और अस्थिवत् ठोस बनाने का काम करती हैं, और इस का फल यह होता है, कि बुढ़ापे के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

नया विचार सोचना शरीर को यौवन की शकल देता है, और वो समस्त विचार नये हैं जो कि सहायता और उन्नति की शक्तियों से पैदा होते हैं।

नये विचारों को सोचना मानो विचारों को नवीन परिवर्तनकारी नियम के अनुकूल बनाना है,और इसके विरुद्ध पुराने विचारों को सोचना मानो उस नियम में हस्ताक्षेप करना है । इस प्रकार यह बात स्पष्ट रूप से मालूम हो सकती है, कि, पुराने विचार बुढ़ापा पैदा करने और नये विचार यौवन को स्थायी बनाने में सहायता देते हैं।

नये विचारों को सोचना मानो तमाम विचारों से मन को उकसाने और शरीर को बलवान बनाने का काम लेना है, किन्तु विदित रहे, कि नया विचार विचारों का कोई क्रम नहीं है, प्रत्युत वह उन्नति करने वाली बुद्धि की एक नयी पैदावार है।

जब मनुष्य की बुद्धि विचारों का एक क्रम ग्रहण कर लेती है, तो वह नये विचारों को सोचने में रुक जाती है, और पुराने विचारों को सोचने लगती है, इसका अटल परिणाम बुढ़ापे का लक्षण प्रगट होना है।

हमेशा नये विचारों को सोचने के लिये आवश्यक है, कि बुद्धि सदैव विकसित हो और इसमें वृद्धि होती रहे। इसे न केवल एक बार प्रत्युत हमेशा ऊपर को उठना और हमेशा अपने बंधनों को तोड़ देना चाहिये। केवल उन्नति शील बुद्धि नये विचारों को सोच सकती है और केवल वही मनुष्य जो सर्वदा नये विचारों को सोचता रहे जवान रह सकता है।

नये विचारों को सोचने के लिये आवश्यक है कि तमाम विचार उदार हों और मनुष्य की प्रत्येक प्रगति का उद्देश्य एक विस्तृत मैदान में प्रविष्ट होना हो। इससे यह लाभ होगा कि बुद्धि सदैव विकसित होती रहेगी और परिणाम यह होगा कि जीवन में वृद्धि हो जायगी।

जीवन और शक्ति के प्रवाह को उन्नति देना मानो बुद्धि में नवजीवन डालना व शरीर में नवीन बल लाना है और जिस समय मस्तिष्क उत्तेजना व शरीर बल प्राप्त कर रहा होगा, तो संभव नहीं कि बुढ़ापे का प्रभाव शरीर पर अधिकार प्राप्त कर सके।

सर्वसाधारण के मन में प्रायः पुराने विचार सोचने और तमाम विचारों को परिपक्व व गंभीर बनाने की प्रवृत्ति होती है। पुराने विचारों को सोचने की प्रवृत्ति हर एक सर्व स्वीकृत विचार को मस्तिष्क में अपरिवर्तित रूप से छोड़ रखने के स्वभाव से पैदा होती है। मन पर यह स्वभाव विजयी हो जाता है और वर्ष प्रति-

वर्ष उसकी ही प्रेरणा से बार २ एक ही प्रकार के विचार पैदा होते रहते हैं।

यह एक ही प्रकार के विचार पैदा होने का आरंभ है। इस प्रकार की सोच से पुराने विचार पैदा होते हैं अर्थात् इस प्रकार के विचार जो कभी बदलते नहीं, और यही वे विचार हैं जो बुढ़ापा लाते हैं

पुराने विचारों को सोचने की प्रवृत्ति को दूर करने के लिये आवश्यक है कि सर्व स्वीकृत विचारों को और उन्नत बनाया जाय और उन्हें पूर्ण बनाया जाय, और इस विश्वास से काम करना चाहिये कि हर एक विचार में अपरिमित शक्ति भरी हुई है। कठिन और भारी सोच कम करने के लिये आवश्यक है कि अनुसन्धानादि विचार के साधारण क्रम के अनुसार ऐसे क्रम बर्ते जायें जो स्वाभाविक मास्तिष्क विकास के लिये अनुकूल हों। गूढ़ और गंभीर विचार सोचने का कारण साधारणतः यह होता है कि मनुष्य, जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान, बुद्धि की वर्तमान परिमित, अपूर्ण व अंधकार की अवस्था में करने का प्रयत्न करता है।

मस्तिष्क अपनी वर्तमान परिमित दशा में बड़ी २ समस्याओं के समझने के अयोग्य होता है और ऐसा करने की जो कोशिश की जाय उसका फल गूढ़ व गंभीर विचार होते हैं। ऐसी दशाओं से मन में थकान पैदा होती है।

जब मन अपूर्ण अभिज्ञता की दशा में हो तो उस समय इस प्रकार के जटिल प्रश्नों और बातों को समझने की कोशिश न करनी चाहिये, जो केवल तीव्र बुद्धि के प्रकाश में देखी जा सकती हैं। ऐसे प्रयत्नों का परिणाम केवल यही न होगा कि गूढ़ व जटिल विचार पैदा होंगे बल्कि बुद्धि पूर्वापेक्षा अधिक अज्ञानांधकार से घिर जायगी।

उचित तो यह है कि बुद्धि को उन्नत किया जाय। जब ऐसा हो जावेगा तो बुद्धि बड़ी सुगमता से इन बातों को देख सकेगी जिन्हें देखने की वह इच्छा रखती थी। जिस समय समझने की शक्ति

तीव्र हो तो क्रियात्मक रूप से कोई बात ऐसी नहीं जिसे बुद्धि अपनी वर्तमान दशा में जान न सके, किन्तु जब यह शक्ति इतनी तीक्ष्ण न हो तो वह किसी बात को जिसे यह समझना चाहती हो नहीं समझ सकती, चाहे वह इस विषय में कितना ही अधिक परिश्रम करे।

जो बात हम समझना चाहते हों उसे समझने का रहस्य यह है कि बुद्धि से ज़बर्दस्ती यह कराने की कोशिश न की जाय। वस्तुतः हमें किसी बात के समझने के लिये कभी अधिक कोशिश न करनी चाहिये, केवल थोड़ा अधिक बुद्धि का प्रकाश डालने पर ही संतोष करना चाहिये। इस रोशनी और चमक को बढ़ाना मानो बुद्धि को बिना किसी विशेष परिश्रम के आवश्यक बातों को देखने व समझने के योग्य बनाना है।

जीवन-सिद्धान्त को समझने, जीवन तत्त्व को मालूम करने व जीवन सम्बन्धी अन्य समस्याओं को समाधान करने के योग्य होने का रहस्य यही है कि और अधिक मानसिक प्रकाश डाला जाय।

किसी बात में जटिलता का कारण यह है कि प्रकाश पर्याप्त नहीं। वास्तव में अंधकार व जटिलता दोनों साथ २ चलते हैं, यदि तुम अंधकार दूर कर दो तो जटिलता भी दूर हो जायगी।

ईश्वर ने बुद्धि को ऐसा बनाया है कि वह प्रत्येक बात को समझ सकती है, किन्तु यदि बुद्धि प्रखर व तीव्र हो। इस लिये आवश्यक मानसिक प्रकाश डालने से अज्ञानता दूर होती है। गूढ़ और जटिल विचारों में भी मानसिक प्रकाश को उन्नति देने के लिये आवश्यक है कि संपूर्ण बंधनों को तोड़ कर ब्रह्मांड से संबंध रक्खें। जो बात विचाराधीन हो उसे उस समय तक समझने की कोई कोशिश प्रत्यक्ष रूप से न करनी चाहिये जब तक मस्तिष्क में पर्याप्त प्रकाश न हो। जिस मन में प्रकाश मौजूद हो वह बिना प्रयास ही समझ सकता है। ऐसा मन अधिक देख सकता है, आगे की ओर देख सकता है और स्पष्ट रूप से देख सकता है।

जिस मन में प्रकाश हो वह आसानी और तेज़ी के साथ सीख सकता है, अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती, न अधिक मानसिक परिश्रम ही की आवश्यकता होती है। इस प्रकाश द्वारा मन जो कुछ देखना चाहे सुगमता से देख सकता है।

मन को पूर्ण ज्ञान का प्रकाश दो प्रकार से प्राप्त हो सकता है। पहिले तो इस बात को स्वीकार करने से कि हर एक मन जीवित है और विकाशवान् है और यह समझ लेने से कि, वह पूर्णज्ञान रूपी समुद्र में निवास करता है। दूसरे उसे इस प्रकार की शिक्षा देने से कि वह सोच विचार के प्रत्येक कार्य सावधान होकर पूर्ण ज्ञान की ज्योति से भरसक काम ले। इस संसार में ज्ञान शक्ति की ज्योति, या समुद्र केवल एक ही है। उसी से व्यक्तिगत मेधा या मन अपने विकास के अनुसार काम लेता है। ज्यों ज्यों मेधा विकासित होती जाती है, व्यक्तिगत मन को पूर्ण ज्ञान पर अधिक २ अधिकार प्राप्त होता जाता है।

जब मेधा जान बूझ कर अपना सम्बन्ध केन्द्रीय ज्योति से स्थिर कर लेती है तो मन उसका सामना बड़ी वीरता से करने लगता है जिसमें वह रहता, क्रिया करता और सोचता रहता है और इस लिये वह पूर्ण ज्ञान की ज्योति को इतना अधिक प्रयोग करने लगता है जितना कि मेधा एक समय में समझ सकती है। पूर्णज्ञान का सामना करते समय मस्तिष्क को समझ से जितना काम लेना पड़ता है वह उससे आधिक होता है जिससे मस्तिष्क उस समय काम लेता है। जब वह अपनी ही परिमित बुद्धि से काम लेता है, बुद्धि उन्नति करती है। इसी लिये बुद्धि अपने साधारण कामों से सदैव बढ़ जाती है।

इस बात को स्वीकार करना कि हमारा मन या मस्तिष्क पूर्ण ज्ञान का प्रगट फल है और बुद्धि पूर्ण ज्ञान के साथ सम्मिलित होने से साथ २ बढ़ती जाती है, मानो हमारी बुद्धि का पूर्ण ज्ञान की ज्योति से सहानुभूति उत्पन्न करना है और जब यह सहानुभूति

वस्तु नहीं है। वस्तुतः यह वही समझ है जिसकी उत्तेजना वैयाक्तिक बुद्धि में पाई जाती है। अन्तर केवल इतना ही है कि इस दशा में उसकी मौजूदगी कम दर्जे पर होती है।

जब वैयक्तिक मन पूर्ण ज्ञान का जवाब देने लगता है तो उसे वर्तमान अवस्था से किसी भिन्न प्रकार का ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता है न कोई बाहर की ताक़त भीतर दाखिल होकर उसके बजाय सोचने का काम करने लगती है वरन् वास्तविक बात यह है कि वैयक्तिक मन को अब जिस प्रकार का ज्ञान प्राप्त है उस प्रकार का और भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है और इस प्रकार वह अपनी वैयक्तिक मनन शक्ति को काम का अधिक अवसर दे सकता है। जब मन पूर्ण ज्ञान का पूरे तौर पर जवाब देने लगता है तो वह सोचने के हर एक अमल में पूर्ण ज्ञान का ज्ञात रूप से प्रयोग करता है और इस ज्ञात प्रयोग के कारण मन पूर्ण बोध की जानकारी में स्थायी रूप से उन्नति प्राप्त करता जायगा। इसका परिणाम यह होता है कि वैयक्तिक मन में सतत उन्नति होती जाती है, क्योंकि हम उन गुणों पर अवश्य अधिकार प्राप्त कर लेते हैं जिनसे हम सूचित होजायं॥

पूर्ण ज्ञान की शक्ति अपरिमित है इसलिये जब कोई इस की अधिकता को प्राप्त करने के लिये अपने आप को दिन प्रति दिन फैलाने लगता है तो बुद्धि का बराबर विकास होता रहता है और ख़याल की प्रत्येक क्रिया बुद्धि को अधिक बल प्रदान करती है।

बुद्धिको अधिक शक्ति पहुंचाना मानो उसे जीवित करना है और बुद्धि को जिलाना शरीर को बल पहुंचाना है। इस प्रकार शरीर में जवानी पैदा करने वाली ताक़त स्थायी हो जाती है क्योंकि जबतक मन और शरीर जीवन की शक्ति से उन्नति प्राप्त कर रहे हों बुढ़ापे का प्रभाव अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता॥

जब मन सोचने की हर एक क्रिया में पूर्ण ज्ञान को ज्ञात रूप से काम में लाने लगता है तो जिस बात को मन समझना चाहे

उसके लिये उसे किसी विशेष परिश्रम की आवश्यकता न होगी। उसकी मेधा ऐसी स्वच्छ और ज्योतिर्मयी होगी कि वह मानसिक संसार की सब ज्ञेय बातों का बहुत ही अच्छी तरह देख सकेगा और यद्यपि उन्नतिशील मन का सतत विकास होता रहता है तथापि उसे बड़ी २ बातों को समझने में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होगी; क्योंकि जब तक उसकी बुद्धि सावधानी से पूर्णज्ञान का प्रयोग कर रही है उसे सारा जगत चाहे वह कितना ही बड़ा हो, बुद्धि के तीव्र प्रकाश से प्रकाशित ही दिखाई देगा।

इससे यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि बुद्धि को पूर्ण ज्ञान की ज्योति से सम्बद्ध रखना मानो सम्पूर्ण विचारों को इस प्रकार पूरा आराम देना और सम रखना है । इससे कठिन चिन्ताएं तथा समस्याएं बिलकुल ही दूर हो जायेंगी और उनके दूर होने से बुढ़ापे का एक बहुत बड़ा कारण दूर हो जायगा ।

जब सम्पूर्ण विचार बुद्धि को प्रज्वलित करने और शरीर को बल पहुंचाने लगेंगे तो मानसिक व शारिरिक थकान दूर हो जायेगी और सारा शरीर हमेशा नवजीवन से जो जवानी का जीवन होगा भरा रहेगा। तारुण्य जीवन से ओत प्रोत होना मानो जवानी को अनुभव करना है और जब तक कोई मनुष्य जवानी को अनुभव करता है वह अवश्य जवान रहेगा॥

दशम अध्याय

मानसिक दशायें जो बुढ़ापे के लक्षण प्रगट करती हैं और उन्हें दूर करने की विधि।

शरीर के यौवन को सदैव स्थिर रखने के लिये आवश्यक है कि मन और शरीर की सब अवस्थायें सम हों। जब यह विषम होंगी तो स्वाभाविक परिवर्तन की क्रिया में निरन्तर रुकावट पैदा होगी और इस क्रिया में हस्ताक्षेप करना मानों बुढ़ापा लाने की क्रिया पैदा करना है।

मानसिक और शारीरिक अवस्थाओं को सम रखने के लिये आवश्यक है कि हर एक मानसिक अवस्था प्राकृतिक जीवनोद्देश के अनुकूल हो, क्योंकि प्रत्येक मानसिक अवस्था शरीर में अपने अनुकूल ही अवस्था पैदा करती है। जब प्रकृति-विरुद्ध दशायें शरीर में प्रविष्ट होती हैं तो शरीर की स्वाभाविक प्रक्रिया में रुकावट पैदा होती है और इस प्रकार वह बातें पैदा हो जायेंगी जो अभीष्ट नहीं हैं। इसका फल यह होगा कि शक्तियां प्राकृतिक उद्देश्यों को उन्नति देने के स्थान प्रकृति के विरुद्ध काम करने लगेंगी।

युवा रहना एक स्वाभाविक बात है और हर एक प्राकृतिक नियम यौवन को पैदा करता और उसे स्थिर रखता है इस लिये यह स्पष्ट प्रगट है कि हर एक हालत, जो प्रकृति के नियम के विरुद्ध होगी, बुढ़ापा पैदा करेगी। यह विदित रहे कि जो क्रिया प्रकृति के अनुकूल काम नहीं करती वह उसके विरुद्ध ही काम करती है।

मन को इस प्रकार की शिक्षा देने के लिये कि वह केवल ऐसी मानसिक अवस्थायें पैदा करे जो प्रकृति के साथ २ काम करें और शरीर की सम अवस्थाओं की परिचायक हों, सब से प्रथम आवश्यक बात यह है कि प्रकृति-विरोधी मानसिक दशाओं को

दूर किया जाये और इसके पश्चात् जिस बात की आवश्यकता हो वह मानसिक कष्ट के ३ मुख्य कारणों को दूर करना है।

ये तीन मुख्य कारण क्रोध, भय और ईर्षा हैं और जब इनका सम्बन्ध चार विशेष विपरीत अवस्थाओं से हो जावे तो उनके द्वारा हर एक ऐसी अवस्था पैदा हो सकती है जो मनुष्य शरीर में प्रगट होने की शक्ति रखती है।

ये चार अवस्थायें जिन का ऊपर वर्णन हुआ है अवसन्न अवस्था गम्भीर अवस्था, बाह्य अवस्था और उत्तेजित अवस्था हैं। मन अवसन्न या खिन्न अवस्था में होता है तो उसकी दशा या गति शिथिल हो जाती है, और इस से शरीर में ऐसी अवस्थायें पैदा होती हैं जो रंध्र की बनावटों को हड्डी की भांति कठोर करने की प्रवृत्ति रखती है।

इस का कारण यह है कि शरीर के अंगों की गति शिथिल पड़ जाने से जीवन शक्ति घट जाती है और सजीव पदार्थ सूखने कठोर होने और पुराना होने लगता है।

मन की अवसन्न अवस्थायें भी शरीर पर दबाव डालने की प्रवृत्ति रखती हैं और जब इसका प्रभाव शरीर की रंध्र रचनाओं पर पड़ता है (जैसा कि होना आवश्यक है) तो उससे वह भारी और हड्डी की भांति कठोर हो जाती है।

इस कठोरता को रोकना मानो बुढ़ापे को रोकना है क्योंकि उस समय तक कोई चीज़ पुरानी प्रतीत नहीं होती जब तक कि वह कठोर नहीं होने लगती। किन्तु यह विदित रहे की यह कठोरता प्राकृतिक नियमों द्वारा उत्पन्न नहीं होती वल्कि उन नियमों का उल्लंघन करने से होती है। अतः जब मनुष्य ईश्वरीय नियमों को भंग करना छोड़ देगा तो उसके अवयवों में कठोरता भी नहीं आवेगी और जब तक वह जीवित रहेगा युवा बना रहेगा।

अवसन्न मानसिक अवस्था को दूर करने के लिये मन को सदैव चेतना की उच्च अवस्था की शिक्षा देनी चाहिये और उसे इस योग्य बनाना चाहिये कि वह मनुष्य के उत्कृष्ट स्वभाव की

उन श्रेष्ठ शक्तियों से सम्बन्ध रक्खे जो उसकी इच्छानुसार हर बात कर सकती हों।

मानसिक ग्लानि की दशा में रहना केवल एक स्वभाव है और इसका कारण यह है कि मानव जाति में सदैव से यह विश्वास चला आता है कि मनुष्य की शक्तियां इतनी परिमित हैं कि वह अपनी साधारण इच्छाओं का केवल एक भाग पूर्ण कर सकता है। तथापि जब मनुष्य को अपने विषय में सच्चाई का ज्ञान होगा तो वह जान लेगा कि उसकी शक्ति इतनी परिमित नहीं है बल्कि वह प्रत्येक कार्य्य करने की शक्ति रखता है जिसकी उसे लगन हो। जब यह महान् सत्यता प्रगट हो गई तो वर्तमान उत्तम और बड़ा हो जायेगा और भविष्य सूर्य्य की भांति चमकीला दिखाई देगा। उस समय खिन्नता न रहेगी न किसी बात के लिये कुढ़ने की आवश्यकता पड़ेगी। आगामी कष्टों और दुःखों का भय मन में न रहेगा, क्योंकि सारी बुराइयां गुज़रती जा रही हैं। मनुष्य की वह आंतरिक शक्तियां जो तमाम बातों को भली भांति पूरा कर सकती हैं, कठिनाई और असफलता के सारे कारणों को दूर कर देंगी और मस्तिष्क अपने पूर्ण सुधार को स्वयं ही अनुभव कर सकेगा।

ऐसा मन जो अपनी महान शक्ति को अनुभव करता है वह जानता है कि सब बातों को लाभप्रद बनाया जा सकता है और कि एक द्वार बन्द होने से दूसरा द्वार अवश्य खुल जाया करता है और यह दूसरा द्वार बड़े २ प्रसंगों बड़े २ लाभों बड़ी २ शक्तियों और आनंद का रस्ता दिखाता है।

इस लिये प्रगट है, कि ऐसा मन कभी अवसन्न नहीं होगा प्रत्युत वह सदैव उद्दीप श्रद्धा की ऊंची चूटी पर निवास करेगा, जहां से प्रत्येक वस्तु की समृद्धि दिन के प्रकाश की भांति निर्मल दिखाई देगी।

मन की गम्भीर अवस्था से शारीरिक मण्डल के रासायनिक तत्व में खटाई पैदा होती है और इस लिये रंध्रों पर घुलने और

नष्ट होने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। इस प्रकार शारीरिक मण्डल में निःसार पदार्थ इकट्ठा हो जाता है और जो पदार्थ बाहिर न निकलेगा अस्थि की भांति हो जायेगा।

यही कारण है कि जो लोग प्रत्येक बात पर गम्भीरता से विचार करते हैं, उनकी त्वचा कठोर हो जाती है और उस में झुर्रियां पड़ जाती हैं। उनकी खाल के भीतर जो माद्दा होता है, उस में से बहुत सा निर्जीव होता है जो मुर्झा कर कठोर हो चुका होता है। इन दशाओं में इसके अतिरिक्त और किस बात की आशा हो सकती है कि वे लोग अधिक आयु वाले और बूढ़े मालूम हों।

गम्भीर अवस्था दूर करने का उपाय यही है कि मन को इस प्रकार की शिक्षा दी जाये जिस से उसे यह विश्वास हो जाये कि मनुष्य आनंद भोगने के लिये उत्पन्न हुआ था और जो मनुष्य सब से अधिक सानन्द है वह इस समय सारे संसार में सदाचार की महाप्रमाण शक्ति है।

मुस्कराहट जब मन के भीतर से उत्पन्न होती है तो उसकी शक्ति अजय्य होती है। मानव जाति के कल्याण के लिये हृदयतल से निकली हुई एक मुस्कराहट भी उदासी से भरे हुए हज़ारों उपदेशों की अपेक्षा कहीं अधिक गुणकारी है।

जो मन इस महान् सच्चाई के महत्त्व का अनुभव करना सीख लेता है वह अपनी अवस्था को पूर्णतया बदल लेता है और भविष्य में कभी गंभीरता ग्रहण नहीं करता। मन की बाह्य अवस्था उसके जीवन को बड़ी गहराई के साथ सम्बन्ध रखने में बाधक होती है, जिसका फल यह होता है कि मन जीवन की महान् शक्तियां लाभ नहीं कर सकता और जब शक्ति का परिमित बाह्य कोष समाप्त हो जाता है तो निर्बल व अयोग्य मालूम होने लगता है।

जीवन शक्ति को कम करना मानो शरीर को निर्बलता और बुढ़ापे का आखेट बनने देना है, क्योंकि बिना जीवन के रंध्र मुर्झा

कर कठोर और पुराने हो जाते हैं और जब शरीर जीवन की गहराई से सम्बन्ध न रखता हो, उसका जीवन बहुत जल्द समाप्त हो जायगा ॥

बाह्य जीवन व्यतीत करना मानो जो कुछ तुम्हारे पास है उस में भविष्य के लिये अधिक प्राप्त कर के मिलाने के बिना उसे समाप्त करना है और जब यह परिमित निधि समाप्त हो जायेगा या समाप्त होने के निकट आ जायेगा तो फिर शरीर अपना कार्य करना छोड़ देगा। इसका परिणाम यह होता है कि निर्बलता, रोग और बुढ़ापा आ दबाता है और व्यक्तिगत जीवन का अन्त हो जाता है। बाह्य अवस्था दूर करने की सर्व सुगम विधि यह है, कि प्रतिदिन चेतन मन अचेतन मन को सब कांशस से काम लेने की ओर आकर्षित किया करे। कभी २ बाहरी मन को अचेतन मन से चेतना सहित सम्बन्ध रखन से न केवल सारी मानसिक शक्तियों का कार्य गहरा और विस्तीर्ण होता है प्रत्युत इसके द्वारा अचेतन मन भी अपने न समाप्त होने वाले कोष से जीवन को अधिक विस्तार के साथ प्रगट करने लगता है ॥

उत्तेजित अवस्था से विप्लव और शरीर के प्रत्येक भाग में गड़बड़ हो जाती है। इस प्रकार शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है, जीवन शक्ति कम हो जाती है और बुढ़ापे के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। जब यह विपरीत अवस्थायें मन से बिलकुल दूर कर दी जायेंगी तो बुढ़ापे के बहुत से कारण दूर हो जायेंगे और मन का शरीर को निर्माण करने और यौवन लाने वाली शक्तियों से ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध हो जायेगा कि जवानी को सदैव स्थिर रखने की हर एक कोशिश को बड़ी सुगमता और पूर्णता के साथ उन्नति दी जा सकेगी।

इसके अतिरिक्त विपरीत मानसिक अवस्थायें दूर हो जायेंगी, किन्तु इन सारी दशाओं को कम करने के लिये मन को

आवश्यक है कि वह अपने को शोक चिन्ता और क्रोध आदि से सुरक्षित रक्खे।

जब मन क्रुद्ध होता है तो बहुत से रंध्र विशेष कर वह जो नाड़ि मण्डल में होते हैं, नष्ट हो जाते हैं। निर्माण शक्तियों के लिये यह असम्भव है कि वह उन रंध्रों को शीघ्र फिर से पैदा करदें, किन्तु यदि तत्काल ही उनकी पुनः रचना न हो और निःसार पदार्थ दूर न हो जावे, तो शारीरिक मण्डल के कार्य में रुकावट सी पैदा हो जाती है।

विदित रहे कि केवल निर्मल शरीर ही यौवन स्थिर रख सकता है। यदि निःसार पदार्थ को शरीर से बाहिर न किया जायेगा तो वह निर्जीव पदार्थ बन जायेगा जो थोड़ी देर में और कठोर होकर अस्थि का सा रूप धारण कर लेगा और इस प्रकार बुढ़ापे के चिन्ह उत्पन्न होने लगेंगे।

स्वाभाविक नव परिवर्तन क्रिया में शरीर के जीर्ण परमाणुओं अर्थात् उन रंध्रों (Cells) को जो शरीर में चंद सप्ताह या चंद मास से मौजूद रह चुके हों, दूर करने और उनके स्थान पर नये परमाणु उत्पन्न करने की शक्ति होती है, किन्तु इस क्रिया में यह क्षमता मौजूद नहीं कि वह उन रंध्रों के स्थान में जिन्हें क्रोध ने बहुत बड़ी संख्या में नष्ट कर दिया हो तत्काल नये रंध्र उत्पन्न करदे।

इस से प्रगट है कि क्रोध नवीकरण क्रिया पर अधिक बोझ डालेगा और वास्तव में कई दशाओं में तो यह उसे निकम्मा ही कर देगा। इस का परिणाम यह होगा उसके शरीर को यौवनावस्था में रखने का परिश्रम निष्फल हो जायेगा। जब नवीकरण क्रिया अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर सकती तो बुढ़ापा लाने वाली प्रवृति शरीर पर अपना पांव जमाने लगती है और यदि उसे दूर न किया जाय तो उसके सम्पूर्ण शारीरिक मण्डल को अति शीघ्र बूढ़ा होने की ओर स्वभाव होता है। किन्तु इस स्वभाव को दूर किया जा सकता है, जैसे कि अन्य समस्त स्वभाव दूर किये जा

सकते हैं। परन्तु चिकित्सा से उत्तम तो यही है कि कोई विकार उत्पन्न ही न होने दिया जाये। मन को क्रोध से सुरक्षित रखने के लिये हर एक कल्पना को यह सोचने की शिक्षा देनी चाहिये, कि जो मनुष्य केवल भलाई की खोज में है, सब बातें मिल कर उसकी भलाई के लिये काम कर रही हैं।

जब सब बातें मिल कर हमारी भलाई के लिये काम कर रही हों तो हमारे लिये क्रुद्ध होने का कोई अवसर न मिलेगा। हम उन बातों के साथ क्रुद्ध नहीं हो सकते जो हमारे अनुसार हैं और जब हम मनसा वाचा कर्मणा भलाई को चाहेंगे तो सब बातें हमारे अनुसार होंगी और हमेशा हमारी भलाई के लिये काम करेंगी।

जब क्रोध नष्ट हो जायेगा तो विप्रीत प्रवृतियां भी दूर हो जायेंगी और ऐसा होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि विरुद्ध मानसिक प्रवृत्तीयां शरीर की सारी स्वाभाविक शक्तियों का जिन में उन्नतिकारी शक्ति भी सम्मिलित है प्रतिकार करती हैं।

अतः अक्षय यौवन के लिये सम्पूर्ण शरीर की सतत उन्नति और वृद्धि की बहुत आवश्यकता है। इस लिये मन के कार्य में किसी प्रकार भी रुकावट पैदा होने देना मानो उन शक्तियों में बाधा डालना है जो यौवन उत्पन्न करती हैं और उसका फल यह होता है कि यौवन की स्थिरता या तो रुक जाती है या पूर्णतयः दब जाती है।

युवा रहने के लिये मन को चाहिये कि वह अपने आपको इस प्रकार की शिक्षा दे कि उसे किसी बात का प्रतिकार न करना पड़े, और यह बात इस दशा में बहुत ही सादी हो जाती है जबकि हर एक कल्पना को इस महान् जीवन के साथ जो प्रत्येक वस्तु में वर्तमान हो मिल कर काम करने की इच्छा के साथ उत्पन्न किया जाये।

जब मन भय की अवस्था में हो तो उस समय शरीर शक्ति-शून्य हो जाता है और उसकी निर्माणात्मक शक्तियां अपने काम

को बदल डालती हैं और इस प्रकार वह उस को तोड़ फोड़ डालती हैं जिसे वह पहले निर्माण कर रही थीं। इसी प्रकार वह उस समय भी जब मन चिन्ता या क्लेश की अवस्था में हो जिस में शक्ति का स्मरण नहीं रहता और निर्बलता बहुत बड़ी दिखाई देती है ऐसा परिणाम होता है।

शोक व चिन्ता का प्रभाव मानसिक क्रियाओं पर पड़ता है और उनसे शारीरिक मण्डल की रचनाओं में हानि पहुंचती है। पश्चाताप आत्मधिक्कार, निराशा और इसी प्रकार की अन्य बातों का भी वही प्रभाव पड़ता है, यद्यपि साधारणतः कुछ कम होता है।

विदित हो कि यौवनावस्था को स्थिर रखने के लिये ऐसी बातों को जो हानिकारक हों मन से पूर्णतयः निकाल देना चाहिये।

मन के स्वार्थी कार्य रंध्रों (Cells) को सुकेड़ देंगे और रंध्र चाहे किसी भी असामान्य कारण से सिकुड़ें वह मुर्झा व शुष्क होकर हड्डी की भांति कठोर बन जायेंगे।

स्वार्थी होना मानो असाधारण रूप से मन की सारी प्रवृत्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेना है जिस का तात्पर्य यह है कि आत्मा अपने को अपने अन्दर स्थिर करने का यत्न करता है और इस प्रकार सिकुड़ने की प्रवृति पैदा कर देता है। प्रत्येक प्रवृति जो मन पर अधिक शासन करती है वह मनुष्य शरीर के प्रत्येक रंध्र पर पर्याप्त शासन करेगी।

किन्तु यह विदित रहे कि स्वार्थ की प्रवृत्ति से केवल शरीर के रंध्र (Cells) ही नहीं सिकुड़ते प्रत्युत इससे मन की क्रियायें भी सिकुड़ती हैं, और यही कारण है कि स्वार्थी मनुष्य संकुचित हृदय का होता है, संकुचित मन, संकुचित आचार विचार, और संकुचित आत्मा रखता है।

मन के उत्तिक्त कार्य्य दृढ़ और कठोर विचार उत्पन्न करते हैं। और इन सब विचारों का प्रभाव कोठरियों की रचनाओं को

कठोर बनाने वाला होता है। किन्तु अक्षय यौवन का सब से घोर शत्रु कुढ़ना है।

जब मन कुढ़ता है तो उससे वे विशेष कारण उत्पन्न होते हैं जिन से पीठ कठोर हो जाती है हड्डी भुरभुरी होती है, जाल शुष्क होते हैं, कोठरियां हड्डी की भांति कठोर हो जाती हैं और चेहरों पर झुर्रियां पड़ जाती हैं। इसका कारण यह है कि तमाम विरोधिनी दशाओं में से कुढ़ना बहुत ही बुरा है और इसके प्रभाव शरीर के रासायनिक जीवन तक पहुंचते हैं।

जब कुढ़ने का प्रभाव शरीर की रासायनिक शक्ति पर पड़ता है, तो कोठरियों की रचना में झूटे रासायनिक तत्व उत्पन्न होते हैं। उन कृत्रिम तत्वों के कारण कोठरियां ऐसी कठोर हो जाती हैं, मानो वे वास्तव में चूनेदार माद्दा हों।

शारीरिक मण्डल से चूनायुक्त पदार्थ को दूर करना अक्षय यौवन का एक रहस्य समझा जाता है और इस आशय के लिये कई विधियां उपस्थित की गई हैं। उन में सब से अधिक श्रेयस्कर चुआया हुआ शुद्ध निर्मल जल समझा जाता है। किन्तु जब तक कोई मनुष्य कुढ़ता रहे वह कभी युवा नहीं रह सकता, चाहे वह कितना ही चुआया हुआ पानी क्यों न पिये।

मन के कुढ़ने से शरीर में सचमुच चूनेदार वस्तुयें इस प्रकार पैदा होती हैं, जैसे क्रोध की दशा में विष। इस लिये जब कोई आदमी कुढ़ता रहेगा, उसकी हड्डियां भुरभुरी और त्वचा खुश्क हो जायेगी, कोठरियां सिकुड़ जायेंगी, शरीर के रेशे कठोर होकर हड्डी की भांति बन जायेंगे, चेहरे पर झुर्रियां पड़ जायेंगी और यौवन स्थिर रखने के लिये चाहे वह कितने ही शारीरिक और मानसिक उपाय वर्ते उसके शरीर का प्रत्येक परमाणु वयोवृद्ध प्रतीत व अनुभव होगा।

केवल कुढ़ने को ही दूर करने से यौवन को सदैव स्थिर नहीं रक्खा जा सकता। इसके अतिरिक्त बुढ़ापे के अन्य कारण भी हैं, किन्तु कुढ़ने को दूर करना बहुत ही आवश्यक है।

वह मनुष्य जो परम पिता परमात्मा पर पूर्ण विश्वास रखता है, जिसका पूर्ण विश्वास अपने ऊपर, प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक वस्तु पर है, वह कभी न कुढ़ेगा । वह जान लेगा कि सब चीज़ें मेरे लिये हैं, क्योंकि वास्तव में चीज़ें उसी के लिये हैं जिस में सच्चा विश्वास है ।

सब वस्तुओं में वास्तविक विश्वास रखना मानों उनका सम्बन्ध प्रत्येक पदार्थ के उच्चतम जीवन से जोड़ना है और वह जीवन किसी वस्तु के विरुद्ध नहीं बल्कि प्रत्येक वस्तु की उन्नति के लिये है ।

उस दशा में जब मनुष्य का सम्बन्ध उस उत्तम जीवन से हो जो बहुत ही उच्चतर हो तो कोई चीज़ उसके विरुद्ध नहीं होती बल्कि सब बात उसके अनुकूल होती है और चूंकि सब बातें ठीक तौर पर सम्पन्न होती हैं इस लिये उसे कुढ़ने का अवसर नहीं मिलता । जब सब बातें हमारे अनुकूल हों तो हृदय की इच्छायें अवश्य पूरी हो जायेंगी, और हम उस निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच सकेंगे, जिसे हमने दृष्टि में रक्खा है ।

जब मनुष्य कल्पना और चेतनता की उच्चतम अवस्था में प्रविष्ट हो जाता है जहां वह सारे संसार से सम्बन्ध रखता है तो वह वास्तव में यह बात अनुभव करता है कि तमाम वस्तुयें और तमाम मनुष्य उसके पक्ष में हैं, और थोड़ा भी कुढ़ना उसके लिये असंभव हो जाता है ।

इसी अनुभव अर्थात् मनुष्य के अस्तित्व की वास्तविक दशा के सच्चे अनुभव द्वारा भय दूर हो जाता है ।

स्वार्थपरता दूर करने के लिये आवश्यक है कि मन अपने लिये जीवित रहने का विचार छोड़ कर केवल उच्चतर जीवन प्राप्त करने के लिये जीवित रहे । मनुष्य में कोई उत्तम वस्तु वर्तमान है और यही वस्तु वास्तविक मनुष्य है । इस वस्तु के लिये जीवित रहना मानो मनुष्य जीवन से वह सब बातें दूर कर देना है जो वास्तविक जीवन से सानुकूलता नहीं रखतीं ।

एकादश अध्याय

मनसिक अवस्थायें जो यौवन को सदैव स्थिर रखती हैं

अक्षय यौवन प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि मन की अवस्थायें नवीकरण नियम के अनुकूल हों और सारी मानसिक अवस्थाओं को उस नियम के अनुकूल रखने के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक विचार का उद्देश नवीकरण अर्थात् नया परिवर्तन करना हो।

केवल ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न करने के लिये जो यौवन को स्थायी बना सकें आवश्यक है कि मन अपनी सारी शक्ति और ध्यान को प्रकृति के प्रारम्भिक नवीकरण नियम की ओर लगायें और प्रत्येक विचार को नवीकरण तथा वृद्धिकरण क्रिया बनाया जाये।

इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये सब से प्रथम इस बात की आवश्यकता है कि मन को युवा अनुभव होने की शिक्षा दी जाय क्योंकि शरीर उतनी ही आयु प्रगट करेगा जितनी कि मन अनुवभ करता है। मनुष्य वैसा ही होता है जैसा कि वह अपने मन में विचार करता है। किन्तु जो कुछ वह अनुभव करता है, वही अपने मन में सोचता है, इस लिये यदि वह मन में यह बात अनुभव करे कि मैं दिन प्रति दिन बूढ़ा होता जा रहा हूं तो वह स्थायी रूप से दिन प्रति दिन बूढ़ा दिखाई देने लगेगा। परन्तु जब तक वह अपने आपको युवा अनुभव करता है वह अवश्य ही युवा दिखाई देता रहेगा।

सामान्य व्यक्ति दृढ़ता के साथ विश्वास करता है कि मैं बूढ़ा होता जा रहा हूं और यह विश्वास उसके हृदय पटल पर ऐसा अंकित होता है कि वह मानसिक रूप से अनुभव करता है कि मैं बूढ़ा होता जा रहा हूं। अतः उस के मन में जो विचार भी

आता है बुढ़ापा पैदा करने वाला ख़याल होता है। परन्तु यह प्रकृति के नियमों के अनुकूल नहीं होता।

मनुष्य इस लिये अपने आपको बूढ़ा होता हुआ अनुभव नहीं करता कि प्रकृति उसे बूढ़ा बना रही है। वास्तव में प्रकृति उसे बूढ़ा नहीं बनाती, बल्कि यह केवल उसकी अपनी कल्पना है, और यह बिल्कुल नियम विरुद्ध और जीवन के प्रत्येक नियम के विरुद्ध है।

सामान्य व्यक्ति कृत्रिम रूप से अपने मन में यह भावना उत्पन्न करके कि मैं बूढ़ा होता जा रहा हूं, शरीर को वर्ष प्रति वर्ष अधिक वयोवृद्ध दिखाई देने योग्य बनाता जाता है और इस बात की नितान्त चिन्ता नहीं करता कि प्रकृति का नवीकरण नियम प्रति वर्ष उसे नया शरीर प्रदान करता है।

बुढ़ापे के इस कृत्रिम अनुभव को दूर करने के लिये मन को युवा अनुभव होने की शिक्षा देनी चाहिये और मानसिक अनुभव को केवल उन हालतों में विद्यमान रहने देना चाहिये जिनमें यौवन को स्थायी बनाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति मौजूद है।

मन को युवा प्रतीत होने की शिक्षा देने के लिये यौवन का चित्र सदैव हृदय पटल पर अंकित करते रहना चाहिये। जिस बात का चित्र सदैव हम अपने हृदय पटल पर अंकित करते रहेंगे वैसी ही भावना अति शीघ्र मन में पैदा हो जायेगी और विदित रहे कि जो बात मानसिक रूप से हम अनुभव करते हैं, वही हमारी मानसिक दशाओं को स्थिर रखती है।

बुढ़ापे या आयु का विचार करना मानो बुढ़ापे का चित्र मन पर अंकित करना है। इसलिये इसका किसी समय भी विचार नहीं करना चाहिये यहां तक कि दिल्लगी में भी इस पर वाद या विचार न करना चाहिये॥

दिल्लगी के समय भी जो बात हम सोचते हैं, वह मन पर वैसी ही जल्दी अपना प्रभाव डालती है जिस प्रकार गंभीर अवस्था में सोचने से होता है, इस लिये आयु और बुढ़ापे का प्रत्येक विचार बाहर निकाल देना चाहिये॥

आयु का विचार और आयु का मानसिक चित्र जो पहिले से मन पर अंकित हो चुका है उन्हें तत्काल बाहर निकाल देना चाहिये और उन के स्थान में यौवन के उज्वल मानसिक चित्र अंकित कर देने चाहियें।

जब तुम अपने विषय में विचार करो तो अपने यौवन ही का विचार किया करो और यह जान लिया करो कि तुम सच्ची ही बात सोच रहे हो। वस्तुतः तुम युवा हो। प्रकृति के नियम बराबर तुम्हारे यौवन को स्थयी बनाने का कार्य्य कर रहे हैं, इस लिये अपने विषय में सच्ची बात सोचने के लिये आवश्यक है कि तुम विचार करो कि मैं युवा हूं और यह बात मननपूर्वक सोचो॥

अपने विषय में इस विचार को स्थिर करने के लिये निर्णय शक्ति से बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है, किन्तु किसी बात के निर्णय के लिये आवश्यक है कि उस बात को पूर्णरूप से अनुभव किया जाये कि वह बात सच्ची है॥

दिन को यह बात कह कर आरंभ करना कि मैं युवा हूँ क्योंकि मेरा सारा शरीर हमेशा नया होता रहता है, प्रातः काल के दृढ़ और स्वच्छ विचार को सतत नवीकरण की प्राकृतिक क्रिया के सानुकूल बनाता है, और दिन के समय मन की प्रत्येक अवस्था यौवनोत्पादक होगी॥

अतः इस बात को दिन के समय बार २ दोहराना लाभदायक है किन्तु आपका दोहराना ऐसा न हो कि केवल शब्द ऊपर के मन से निकल जाया करें। जो कहो वह मन से कहो॥

जब तुम अपने मन में यह बात कहो कि "मैं युवा हूं" तो तुम्हारा विचार ऐसा दृढ़ और उत्तम हो कि तुम्हें अपने शरीर के प्रत्येक परमाणु में यौवन और शक्ति की लहरें बहती हुई अनुभव हों और उनका प्रभाव तुम्हारे मन की गहराइयों में प्रविष्ट हो जायें॥

मनको इस बात का अभ्यासी बनाने के लिये कि वह उस नवीकरण क्रिया की सत्यता का विचार करे जो शरीर को सदा युवा रखती है, इस बात का निर्णय अत्यन्त आवश्यक है कि मेरा

सारा शरीर सर्वदा युवा और नया है, क्योंकि प्रकृति मेरे शरीर में किसी कोठरी को चन्द मास से अधिक नहीं रहने देती, उसकी जगह नई कोठरी बना देती है ॥

इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि "प्रकृति हर हर साल मुझे एक नया शरीर देती है, मेरा मन हर रोज़ प्रातः काल नया होता और ईश्वर की ओर से मेरे शरीर में नव-जीवन प्रतिक्षण इस प्रकार आता है जैसे वसंत ऋतु के फूल" ॥

यह बातें सत्य हैं, और इन पर पूर्ण रूप से विश्वास रखना चाहिये कि ये बातें सत्य हैं ॥

हृदय से यह बातें अनुभव करना कि ये बातें सत्य हैं मानों मनको तमाम मिथ्याचारों और बुढ़ापे के विचारों से साफ़ कर देना है। इस प्रकार नवकारी नियम में दृढ़ता आती है। मन की कोई विरोधिनी दशायें ऐसी न होंगी जिनके कारण नया शरीर पुराना मालूम हो, इस लिये नया शरीर सदा वैसा ही मालूम होता रहेगा जैसा कि वस्तुतः वह है। वह युवा मालूम होगा और हमेशा युवा ही रहेगा ॥

जब मन इसका अधिकाधिक अनुभव करने लगता है तो संभव है भावों के आवेग की प्रकृति मन में पैदा हो जाये, किन्तु उसे पैदा न होने देना चाहिये ॥

मन में इस धारणा को दृढ़ करनेके लिये परिमित आवेग आवश्यक है किन्तु इसको अधिक उत्तेजित करना या सीमा से अधिक बढ़ाना नहीं चाहिये, प्रत्युत उसे सम अवस्था में रखना चाहिये ॥

मन की अधिक बलवान शक्तियां वह हैं जो गहरे भावों से परिपूर्ण हैं, किन्तु वे ऐसे अज्ञान रूपसे काम करती हैं कि वे नितान्त शांत अवस्था में दिखलाई देती हैं। जब यह शक्तियां यौवन को स्थायी रखने की प्रबल इच्छा के साथ व्याप्त हो तो वह जिस बात की इच्छा हो उसे अवश्य कर सकेंगी।

ऐसी धारणाओं के लिये एक और आवश्यक बात यह है, कि सूचना (Suggestion) और सचाई के कथन को एक ही न समझ लिया जाये। बिना इस बात के विचारे कि यह सच्ची है या नहीं मन को किसी भांति की सूचना देना नियम को तोड़ना है और यद्यपि देखने में और अस्थायी रूप से यह उपयोगी सिद्ध हो सकता है, तथापि गहरे मानसिक जीवन को इससे स्थायी रूप से हानि पहुंचती है॥

जब मन को कोई मति सुझाई जाये तो चेतन मन पर इस बात का गहरा प्रभाव डालना चाहिये कि यह सच्ची है। यदि इसकी सचाई में किसी प्रकार का सन्देह हो तो उसे मन को उस समय तक न सुझाना चाहिये जब तक कि यह बात पूर्ण रूप से ज्ञात न हो जाये कि यह मति सची है।

प्रतिपादन की विद्या केवल उन्हीं विचारों की सूचना देती है जिनके विषय में मन यह बात अनुभव करता हो कि वे नितान्त सत्य हैं, और इसके पीछे सनिश्चय कथन के समय बड़े गहरे विचार से यह सोचना है कि वे सत्य हैं।

यह कहना कि "मैं युवा हूं" नितान्त सत्य है। यह मानो प्रकृति के नियमों को प्रकाशित करना है, इस लिये मन इस की सत्यता पर पूर्ण विश्वास रखते हुये यह कह सकता है कि मैं युवा हूं। और जितनी अधिक बार मन इसकी सचाई पर विश्वास करता हुआ इसका सनिश्चय कथन करेगा, उतना ही अधिक शरीर द्वारा यह बात प्रगट की जायेगी जो कि वास्तव में उसके अन्दर विद्यमान है अर्थात् अक्षय यौवन।

ऐसी मानसिक दशायें उत्पन्न करने वाली दृढ़ वचन की शक्ति जो यौवन को स्थायी बनाती है, बहुत ही प्रबल है, और बिना इस विचार के कि हमें और दूसरे कितने उत्तम साधन मिल सकते हैं इस से प्रति दिन काम लेना चाहिये। परन्तु स्पष्ट मानसिक संकल्प के सामने दृढ़ वचन की शक्ति भी तुच्छ है।

मन के भीतर सदैव इन गुणों का चित्र देखना जो यौवन के गुण हैं मानों स्थायी रूप से ऐसी मानसिक अवस्थायें स्थिर करनी हैं जो यौवन को स्थायी बनाती हैं और जब यह दशायें स्थिर हो जायें तो प्रत्येक व्यापार जिसकी उत्पत्ति मन से हो उसमें यौवन उत्पादन करने की शक्ति होगी ॥

जब प्रत्येक मानसिक दशा यौवनावस्था के सादृश होगी तो मन वस्तुतः युवावस्था में होगा और जब तक मन इस अवस्था में रहा बुढ़ापा आ ही नहीं सकता। इसका कारण यह है कि शारीरिक दशायें बिल्कुल ऐसी ही हो जाती हैं जैसी कि मानसिक दशायें होती हैं ॥

मन को मानसिक युवावस्था में रखने के लिये आवश्यक है कि यौवन का सर्वोत्तम आदर्श जो ध्यान में आ सकता है सदैव अपनी मानसिक दृष्टि के सामने रक्खा जाय। इस चित्र को ऐसी बात नहीं समझना चाहिये जो भविष्य काल में पूरी हो सकती है बल्कि इसे एक वास्तविक बात समझना चाहिये जो अभी प्राप्त हो सकती है और हमको अनुभव करनी चाहिये ॥

इस बात की सदा कल्पना करने से कि सारा शरीर यौवनावस्था में है, मन के भीतर पूर्ण यौवन का चित्र खींचने में सहायता मिलती है किन्तु व्यक्तिगत यौवन का यह चित्र खींचते समय शरीर की इन अवस्थाओं की ओर नितान्त ध्यान न देना चाहिये जो बुढ़ापे को प्रगट करती हैं ॥

बुढ़ापे को दूर करने के लिये मन के लिये आवश्यक है कि वह आयु को बिल्कुल भुला दे और अपना सम्पूर्ण ध्यान केवल ऐसी अवस्था में लाने की ओर दे जो पूर्णतया यौवन से संबंध रखती है ॥

हमारी कल्पना शक्ति जिस प्रकार सत्य सुन्दर और आदर्श बातों का चित्र खींच सकती है उसी प्रकार विरुद्ध बातों की भी सुगमता से कल्पना कर सकती है और चूंकि प्रत्येक कल्पना जो मन में पैदा की जाय वह न्यूनाधिक शरीर द्वारा प्रगट होती है,

इस लिये कोई ध्यान ऐसी बातों की ओर न देना चाहिये जिनकी इच्छा न हो ॥

कल्पना शक्ति को केवल सौन्दर्य-पूर्ण संसार के बहुत से भवनों में से मन को गुज़ारने के काम में लाना चाहिये किन्तु मनोरम संसार में बुढ़ापा एक अकल्पनीय वस्तु है। एक आदर्श संसार में आयु का कुछ अस्तित्व नहीं हो सकता। इसलिये आदर्श मानसिक अवस्था में आयु का कोई विचार नहीं आ सकता ॥

जब कल्पना शक्ति से उचित रूप से काम लिया जाये तो उसके द्वारा मन केवल मनुष्य के अक्षय यौवन को देखेगा क्योंकि यौवन वास्तविक है और बुढ़ापा कृत्रिम, अस्वाभाविक और असत्य है, और जब मन मनुष्य शरीर में केवल यौवन को देखेगा तो उससे केवल वही मानसिक अवस्थायें उत्पन्न होंगी जो यौवन को स्थायी बनाती हैं ॥

मन केवल उसी बात का विचार कर सकता है, जिसे वह मानसिक दृष्टि से देख सकता है और मनुष्य का व्यक्तित्व वैसा ही होता है, जैसे मन सोचता है। इस लिये जब तक मन शरीर को युवा समझता रहता है उस समय तक मनुष्य युवा रहता है ॥

अभीष्ट यह है कि मन को हर प्रकार से युवा रक्खा जाये और यह अभीष्ट प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि मन को यह विश्वास दिलाया जाये कि वह सदैव युवा रहता है, और इस बात को सदैव मानस पटल पर अंकित करता रहे ॥

जब मन अक्षय यौवन को अनुभव करने लगता है तो यह बात कि बुढ़ापा अस्वाभाविक है स्पष्ट ज्ञात होने लगती है। इस दशा में प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यतीत करना स्वभाव बन जाता है और शरीर की प्रत्येक उत्पादनकारिणी शक्ति सतत नवीकण क्रिया का अनुसरण करने लगती है। इसका परिणाम यह होता है कि हर समय मनकी प्रवृत्ति अक्षय यौवन की ओर होती है ॥

यह आवश्यक है कि मनुष्य शरीर की शक्तियां प्रकृति के प्रारंभिक नियमों का अनुसरण करें और प्रकृति प्रत्येक समय प्रत्येक

वस्तु को अक्षय यौवन दान करती है किन्तु मनुष्य शरीर की सारी शक्तियां सदा मन के बड़े २ विचारों का अनुसरण करती हैं और बड़े २ विचार सदैव वह होते हैं जिनका चित्र मन पर स्पष्टतया अंकित हो॥

अतः यह बात प्रगट है कि यदि मनुष्य शरीर के अवयव का अनुकरण करता है और अक्षय यौवन प्राप्त करता है तो आवश्यक है कि कल्पना शक्ति अक्षय यौवन के पूर्ण चित्र को उपस्थित करे॥

जब तक कल्पना शक्ति मन में बुढ़ापे का चित्र खींचने में समर्थ है तब तक अक्षय यौवन की प्राप्ति की चेष्टा करना व्यर्थ है। मनुष्य की कल्पना शक्ति उस समय तक बुढ़ापे का चित्र खींचती रहेगी जब तक कि मनुष्य बुढ़ापे की वास्तविकता पर विश्वास करता रहेगा। अतः यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि मन को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय जिससे वह प्रत्येक बिचार या कल्पना में यौवन की लहर दौड़ादे।

मन को ऐसी शिक्षा देने के लिये बुद्धि का नवीकरण क्रिया में इस प्रकार का समावेश होना चाहिये कि शरीर में वस्तुतः यह क्रिया अनुभव हो सके। यह अनुभव स्वभाव सा बन जाना चाहिये और यदि हर सयम इस की ओर अधिक से अधिक ध्यान दिया गया तो वह अवश्य ऐसा बन जायेगा।

जब मनुष्य वास्तव में यह बात अनुभव कर सके कि मेरे सारे शरीर में बराबर नवीकरण हो रहा है तो बुढ़ापे का विचार बिल्कुल दूर हो जाता है। यदि उसका हृदय बुढ़ापे के विचारों से परिपूर्ण न हो अर्थात कृत्रिम बुढ़ापे से, क्योंकि वास्तविक बुढ़ापा तो वर्तमान ही नहीं। तब जब वह सतत नवीकरण की क्रिया को अनुभव करने लगेगा, उसके बाद एक ही वर्ष में उसके शरीर में यौवन का पूरा बल आ जायेगा।

हो सकता है कि कोई मनुष्य ८० वर्ष की आयु व्यतीत कर चुका हो और वह इतना बुड्ढा दिखाई देता हो जितना कि जाति

के विचार से उसे दिखाई देना चाहिये। तथापि जब उस मनुष्य का मन नवीकरण क्रिया को अनुभव करने और यौवन की मानसिक अवस्था में रहने लगता है तो शरीर भी युवा दिखाई देने और अनुभव होने लग जाता है, और एक वर्ष से कम समय में उसमें एक युवा और बलवान मनुष्य की सी शक्ति संचारित हो जाती है, और ऐसा क्यों न हो जब प्रकृति प्रति वर्ष मनुष्य को नया शरीर देती है। यह नया शरीर युवा होता है। फिर क्या कारण है कि यह शरीर युवा न दिखाई देने लगे?

द्वादश अध्याय

उन्नति लाभ और पराक्रम के लिये जीवित रहो

बराबर उन्नति का जीवन व्यतीत करना मानो जीवन को उन्नत और उच्च बनाना है और जीवन की सतत वृद्धि अक्षय यौवन की प्राप्ति के आरंभिक साधनों में से एक है।

जब तक जीवन की वृद्धि होती रहे बुढ़ापा उत्पन्न करने वाली क्रिया के लिये संभव नहीं कि वह मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हो सके, क्योंकि शरीर उसी समय बूढ़ा होने लगता है जब वह जीवन नष्ट करना आरंभ करता है।

जीवन नष्ट होने के कई कारण हैं। सारांश यह है कि मन या शरीर के नियमों का उलंघन मनुष्य के जीवन के बल को कम करता है किन्तु जीवन की चिरस्थायी उन्नति के लिये विशेष आवश्यकता इस बात की है कि अटूट उन्नति के लिये जीवित रहा जाये।

किसी व्यक्ति में जीवन की बराबर उन्नति होते रहने से न केवल अक्षय यौवन लाभ होता है प्रत्युत वैयक्तिक जीवन का प्रमाण भी बढ़ जाता है। इसका कारण यह है कि जीवन-वृद्धि का निर्भर उस जीवन तत्त्व (Energy) के ढेर पर होता है जो शरीर की प्रत्येक कोठरी को पहुंचाया जाता है।

मनुष्य के शरीर की प्रत्येक कोठरी में नये रूप से जीवन तत्व (Energy) भरते रहना मानो शरीर को एक संघठित अवस्था में रखना है, क्योंकि जब जीवन की अधिकता हो तो मृत्यु का होना असंभव है और शरीर में जीवन की यह अधिकता उस समय तक रहेगी जब तक कि मनुष्य अधिकाधिक उन्नति करता चला जायेगा।

जीवन में अधिकाधिक उन्नति करने के लिये पहली आवश्यक बात यह है कि हम प्रत्यक्ष रूप से उन्नति करने के लिये जीवित रहें। हमारा धेय प्रत्येक बात की अपेक्षा जो वर्तमान काल में अनुभव हुई हो बड़ा और विस्तृत होना चाहिये और मनुष्य की प्रत्येक प्रवृति विस्तृत और उन्नतोन्मुख होनी चाहिये।

उन्नति को प्राप्त करने के लिये किसी विशेष उद्देश्य को सन्मुख रख कर जीवन व्यतीत करना आवश्यक है। केवल उत्तम व अधिक लाभ और पराक्रम द्वारा ही अखंड उन्नति के नियम को सहायता मिल सकती है, अतः यह आवश्यक है कि जिस मनुष्य ने अक्षय यौवन लाभ करने का निश्चय कर लिया हो उस की नस २ में बड़े होने और बड़ी २ बातें प्राप्त करने की इच्छा भरी होनी चाहिये। बड़ा होने और बड़ी २ बातें प्राप्त करने की इच्छा इतनी प्रबल होनी चाहिये कि वह शरीर के प्रत्येक भाग में अनुभव होती रहे। मन को अपना ऐसा चित्र खींचना चाहिये कि वह उद्योग वृद्धि, लाभ और पराक्रम का जीवन बराबर व्यतीत कर रहा है और ऐसे सोद्योग जीवन से भविष्य में रिटायर होने का विचार तक नहीं उत्पन्न होने देना चाहिये।

यह आवश्यक है कि भविष्य को हाथों में छोड़ दिया जाये और हमारा पूरा ध्यान केवल उसी बात की ओर लगा रहे कि हम तत्परता का जीवन व्यतीत करें और इस जीवन को नियमानुसार जारी रक्खें। तत्परता के जीवन से रिटायर होने का विचार मन में लाना मानो सुस्ती और काहिली की ओर प्रवृत्त होना है और जब मन की काहिली की ओर प्रवृति होती है तो उन्नति और वृद्धि के जीवन का अंत हो जाता है।

जब मनुष्य की अभिवृद्धि रुक जाती है तो वह बूढ़ा होने लगता है, किन्तु जब तक वह अभिवृद्धि प्राप्त करता जाय उसका बूढ़ा होना संभव नहीं। किन्तु अभिवृद्धि सारे शरीर पर की होनी चाहिये और उसका उद्देश्य शरीर और मन को पूर्ण बनाना और उन्नति देना हो।

इस अभिवृद्धि को उन्नति देने के लिये आवश्यक है कि मन अभिवृद्धि प्राप्त करने वाले सारे जीवन से अनुराग रक्खे और सर्व उन्नति अभिवृद्धि के साथ सचेत भाव से काम करे। जब सहयोग व्यक्तिगत जीवन का अंग बन जाये तो उन्नति का संचार शरीर के प्रत्येक भाग में अनुभव हो सकता है और जब प्रत्येक परमाणु में उन्नति अनुभव हो तो वह अवश्य ही उन्नति करेगा।

शरीर के प्रत्येक परमाणु की उन्नति व्यक्तिगत जीवन की शक्ति और गुण प्रत्येक क्रिया के सुधार को उन्नति देती है परन्तु इसके लिये यह आवश्यकीय है कि मन सुधार के लिये यथासाध्य प्रयत्न कर रहा हो। और जब तक शरीर मन और आत्मा की प्रत्येक बात का सुधार होता रहे, बुढ़ापा प्रगट नहीं होगा।

बुढ़ापे की अवस्थायें निश्चय रूप से अनुद्योग और विपरीत गति से सम्बन्ध रखती है। इस लिये जब तक मनुष्य संलग्न तथा उन्नति करता रहेगा, बुढ़ापा उसमें आ नहीं सकता और वह जवान ही बना रहेगा।

संपूरण मनुष्य के सतत उन्नति लाभ करते रहने से संपूर्ण मनुष्य को अक्षय यौवन प्राप्त हो सकता है।

जहां तक मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन का संबन्ध है सतत उन्नति का वास्तविक अर्थ वह अवस्था है जिसमें प्रत्येक परमाणु प्रत्येक कार्यकारिणी शक्ति प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक प्रभाव प्रत्येक बल, तथा शरीर की प्रत्येक जीवित वस्तु बराबर अपने जीवन कार्य तथा उद्देश्य उन्नति कर रहे हैं॥

सतत उन्नति के नियम का अनुसरण करने के लिये मनुष्य शरीर की प्रत्येक वस्तु को उत्तम काम करने के लिये कार्य करना चाहिये, और यह बात प्रगट है कि जो वस्तु बराबर अपने जीवन और शक्ति आदि को सुधारती रहे वह कभी बिगड़ नहीं सकती और न जीर्ण व नष्ट हो सकती है ॥

उत्तम काम करने के लिये कार्य्य करना मानो उत्तम बनना है । इससे उन्नति के प्रत्येक प्रारम्भिक नियम को सहायता मिलती है, और जब उन्नति का क्रम बराबर जारी रहे तो बुढ़ापा आना असंभव सा है ॥

मन की बढ़वार से तात्पर्य यह है कि बुद्धि का विकास हो और चेतनता की उन्नति हो तथा मानसिक गुणों की वृद्धि और मन की क्रिया विशिष्ट हो शरीर की वृद्धि से यह आशय है कि मनुष्य की देह पूर्ण हो, शारीरिक इन्द्रियों तथा व्यक्तित्व के प्रकाश की शक्ति बढ़े, शरीर की कल भली भांति अपना कार्य्य करे और कोठरियों को निर्माण की उत्तमता में सुधार हो तथा मन के साधन की भांति व्यक्ति का सुधार हो ॥

मन और शरीर की उन्नति की यह दशायें व्यक्तिगत जीवन को इस प्रकार की शिक्षा देने से प्राप्त हो सकती है कि वह प्रत्यक्ष और चेतनभाव से उन्नति करने के लिये जीवित रहे । मनुष्य शरीर के भिन्न २ तत्वों और शक्तियों का निर्भार चेतनता पर है, इसलिये जब चेतनता पूर्ण जीवन अपने पूरे जीवन को सतत उन्नति के कार्य्य के अर्पण कर देता है तो शरीर के अन्य भाग भी ऐसा ही करते हैं । सारा शरीर साधारणता और उसका प्रत्येक भाग विशेष रूप से उन्नति करता है । और सदैव उन्नति करते रहना मानो सदा युवा बने रहना है ॥

व्यक्तिगत जीवन को सतत उन्नति के लिये जीवित रहने की शिक्षा देने के लिये, सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि पुनः निर्माण और उन्नति की क्रिया के लिये शरीर की सारी

शक्ति को काम में लाने की चेतनता सहित इच्छा की जाये। शरीर रचना को केवल नया करना ही पर्याप्त नहीं। इसके नवीकरण के हर एक अवसर पर उसे अधिक पूर्ण अवस्था की ओर उन्नति देना चाहिये।

जब वृद्धि और नवीकरण क्रम पूर्ण रूप से एक दूसरे से मिल जायँ तो शरीर में यौवन स्थिर रहेगा। इसका परिणाम एक प्रकार का ऐसा जीवन होगा जो हर प्रकार से भोगने के योग्य होगा। इस प्रकार का जीवन हर प्रकार से मालामाल होता रहेगा और सतत तरुणाई द्वारा उसमें उन वास्तविक पदार्थों को भोगने की शक्ति सदा बढ़ती रहेगी।

शरीर की सारी शक्ति की अभिवृद्धि और नवीकरण क्रम को बढ़ाने में लगाने की इच्छा इस प्रकार की जा सकती है कि बराबर उन क्रमों के अस्तित्व को तथा इस बात को कि उन दोनों क्रमों की उन्नति द्वारा मनुष्य किसी निर्दिष्ट स्थान पर जो उसे अभिप्रेत हो पहुंच सकता है चेतनता के साथ स्वीकार किया जाता रहे। मन की रचना इस प्रकार हुई है कि उसमें स्वाभाविक रीति पर वही कुछ करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है, जिसे उद्देश्य का वास्तविक रहस्य स्वीकार किया जाता है, और जब इस वास्तविक रहस्य के विषय में ज्ञान हो जाय कि यह वही नियम है जिस पर जीवन का उद्देश्य निर्भर है, तो इस से इच्छा-शक्ति बहुत ही थोड़े समय में अधिक बलवती हो जाती है।

बराबर उन्नति करते रहना ही जीवन का उद्देश्य है इस लिये इस उद्देश्य को प्रत्येक उचित अभीष्ट का रहस्य समझना मानो मन को जीवन के उन नियमों के सानुकूल बनाना है जो किसी निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचने की शक्ति रखते हैं, और जब मन का सम्बन्ध उस शक्ति से हो जाता है, तो उसे शीघ्र वह काम करने की इच्छा प्रकट हो जाती है जो यह शक्ति कर सकती है।

अतः यह बात प्रगट है कि जब मन का पूर्ण संबन्ध उन्नति के नियम अर्थात् उस नियम के साथ हो जाता है जिस पर यह

सारा ब्रह्मांड निर्भर है, तो उस कार्य्य को जो इस निमय का उद्देश्य है करने की इच्छा बढ़ जाती है और मन की प्रबल इच्छा यही होती है कि हर प्रकार से जो कल्पना में आ सके सतत उन्नति की जाये।

इस प्रकार शरीर के समस्त अवयवों को उन्नति में सहायता देने के लिये संलग्न रखना स्वभाव बन जाता है और मनुष्य अधिक समय तक जीवित रहता है, और अधिक समय तक जीवित रहने की इच्छा करता हैं जिस से उच्चतम लाभ और बहुत बड़े पराक्रम की प्राप्ति हो सके। जब मन की यह इच्छा प्राप्त हो जाये तो केवल इस बात की प्राप्ति से शांति नहीं होती जो पहिले से अभष्टि थी। ऐसे मन को अभीष्ट प्राप्ति द्वारा तुष्टि प्राप्त नहीं होती वरन जीवन की बड़ी २ चीज़ों की ओर बराबर उन्नति करने से होती है। मन सारे आनन्दों से बड़ा आनन्द प्राप्त करता है अर्थात् "आगे बढ़े चले जाने का आनन्द"

वर्तमान अवस्था पर संतोष करना मानो मन की एक या तमाम दशाओं में आलस्य उत्पन्न करना है और जब उन्नति पतनोन्मुख हो तो वृद्धता के लक्षण अवश्य ही दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

अक्षय यौवन लाभ करने के लिये मन को अधिकता, उच्चता और महानता की ओर बराबर उन्नति करते रहने से कम संतोष नहीं करना चाहिये। मन को इस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिये कि वह उसी समय संतुष्ट हो जब आगे की ओर उन्नति करता हो। और प्रत्येक मन जिसे जीवन के प्रारंभिक सिद्धान्त के साथ एकीकरण किया जायेगा, कभी आगे की ओर उन्नति करने से न रुकेगा।

इस समय जो कुछ अधिकार में है उससे उत्कटानन्द प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि अब उन्नति की जाय। वह मन जो उत्साह व उतेजना विहीन है वह किसी बात से आनन्द प्राप्त नहीं करता, न कुछ प्राप्त ही करता है चाहे वह इस उत्तम पदार्थ से घिरा हुआ ही क्यों न हो, जिसे दुनिया पैदा कर सकती है।

केवल उन्नतिशील मन जीवन धन प्राप्त करता है और मन को आनन्द केवल उसी से प्राप्त होता है जिस पर उसने अधिकार प्राप्त किया हो।

बढ़ने वाला मन ही उन्नति करने वाला मन है, इस लिये इस समय संतुष्ट और प्रसन्न होने के लिये अब उन्नति करना आवश्यक है और उन्नति करते जाना मानो अक्षय यौवन लाभ करना है।

त्रयोदश अध्याय

अपने काम से प्रेम करो और जान लो कि तुम उसी समय तक काम कर सकते हो जब तक कि तुम प्यार कर सकते हो।

अक्षय यौवन प्राप्त करने के लिये जो बातें बहुत आवश्यक हैं उनमें एक बहुत बड़ी बात यह भी है कि शरीर में जीवन प्रचुरता से मौजूद हो और कोई वस्तु जीवन को इतना अधिक पैदा करने वाली नहीं, जितना हर बात से जो कोई आदमी कर सके प्यार करना। प्यार जीवन के उन सूक्ष्म तत्वों को भी जागृत करता है जो शरीर में सदैव नवजीवन, स्फूर्ति बल और यौवन उत्पन्न करते हैं। कोई काम करना मानो आन्तरिक स्फूर्ति को प्रगट करना है, और उस काम से प्यार करना मानों उस स्फूर्त्ति में जान डाल देना है। जब इस स्फूर्ति में जान डाली जाती है तो वह कृत्रिम नहीं रहती और यह बात बहुत आवश्यक है कि शारीरिक अथवा मानासिक स्फूर्ति को कृत्रिम बनने से रोका जाये॥

जब वह स्फूर्ति जिसे शरीर में उत्तेजित किया जाये कृत्रिम प्रभाव रखती हो तो वह अति शीघ्र थक जाती है और इस से शरीर भी थक जाता है। परन्तु जब इस स्फूर्ति में जान डाली जाती है तो यह उत्तेजित अवस्था में अपनी शक्ति कई गुनी बढ़ा लेती है

और इसी लिये शरीर के जीवन, बल और शक्ति को अधिक करती है।

शरीर को थका देना मानो उसके जीवन के परिमाण को कम करना है, और यदि यह कमी बार २ होती रहे तो जीवन की मात्रा इतनी भी शेष नहीं रह जाती कि स्वाभाविक क्रियाओं को जारी रखने के लिये पर्याप्त हो। नवीकरण क्रम में भी इतनी शक्ति रह जाती है कि वह उसके कार्य्य में सहायता दे सके। इसका फल यह होता है कि बुढ़ापा प्रगट होना आरंभ हो जाता है क्योंकि यह क्रम सदा उस समय आरंभ होता है जब कि जीवन शक्ति अवनतोन्मुख हो।

वह लोग जो सदा युवा बने रहना चाहते हैं, उन्हें कभी अपने आपको थकने न देना चाहिये और यदि वे कभी थकने का विचार न करें, कभी थकान का वर्णन न करें और कभी अपने काम से प्यार करने से जी न चुरायें तो उन्हें कभी थकन अनुभव न हो।

थकना कोई स्वाभाविक बात नहीं है। यह एक असाधारण अवस्था है, जो मनुष्य शरीर को स्फूर्ति के कृत्रिम प्रभाव से उत्पन्न होती है। किन्तु यह कृत्रिम प्रभाव उस दशा में पूर्णता दूर हो जाता है, जब मनुष्य उस कार्य्य से जिसमें वह संलग्न हो पूर्ण प्रेम रखता हो।

साधारण मनुष्य खेल से नहीं थकता परन्तु कार्य से सदा थक जाता है इसका कारण यही है कि जैसे खेल प्यारा होता है कार्य्य नहीं। कार्य्य कृत्रिम है, खेल कृत्रिम नहीं, इसलिये इनमें से एक तो मनुष्य को थकाता और दूसरा खुश करता है। किन्तु कार्य्य इस दशा में बिल्कुल कृत्रिम नहीं रहता, जब उससे प्रेम किया जाये, और कार्य्य से वैसे ही प्रेम करना संभव है जैसे खेल से। शरीर की कृत्रिम गति—चक्की की भांति पीसने का कार्य्य—कोठरियों में से जीवन की शक्ति निकालने की भी प्रवृत्ति रखती है और जब कोठारियां उस जीवन शक्ति से वंचित रह जायें, वह शुष्क होने लगती हैं, मुर्झा जाती हैं और कठोर होकर हड्डी की भांति बन

जाती हैं। किन्तु यौवन को स्थिर रखने के लिये आवश्यक है कि कठोर बनने के क्रम को रोका जाय, इसलिये प्रत्येक बात जो कठोरता उत्पन्न करने वाली हो उसे शरीर से पूर्णतया दूर कर देना चाहिये।

कृत्रिम रूप से जी लगाये विना निर्जीव सा होकर कार्य्य करने से ऐसी अवस्थायें पैदा होती हैं जो शरीर की कोठरियों को हड्डी की भांति कठोर कर देती हैं और इस प्रकार तुम पर बुढ़ापा लाती हैं। अतः किसी मनुष्य के लिये यह संभव नहीं कि वह इन दशाओं में काम करे तथापि बहुत लोग इन दशाओं में भी अपना काम करते हैं, और ऐसी दशा में इसके अतिरिक्त और किस बात की आशा हो सकती है कि बुढ़ापा का शरीर पर आक्रमण हो।

कोई मनुष्य जिस बात को अपना कर्तव्य समझता हो अपने मन पर दबाव डाल कर उस काम को करना भी वैसे ही कठोर कृत्रिम प्रभाव पैदा करता है, और ऐसी अवस्थायें अवश्य ही कोठरियों में से जीवन शक्ति को निकाल देती हैं, जिस से वह कोठरियां शुष्क होकर हड्डी की भांति कठोर और पुरानी बनने लगती हैं।

इसका उपाय यही है कि प्रत्येक कार्य्य जो किया जाये उससे प्यार किया जाय। जब कोई मनुष्य अपने कार्य्य से प्यार करे तो उस कार्य्य को करने के लिये अपने ऊपर दबाव डालना न होगा बल्कि उसे उसके करने की आवश्यकता प्रतीत होगी। अतः उसे कार्य्य करने की आवश्यक शक्ति सुगमता से प्राप्त होगी क्योंकि जिसमें प्यार द्वारा जीवन पैदा किया जाये उसमें सदा अधिक जीवन और शक्ति आ जायेगी।

वह मनुष्य जो अपने काम से प्यार करता है वह जब तक प्यार कर सकता है उस समय तक उसे काम करने की शक्ति प्राप्त रहेगी क्योंकि काम से प्यार करना मानो कार्य करने की शक्ति को अधिक उन्नति देते रहना है।

ऐसा मनुष्य न तो जीर्ण शीर्ण होगा न उसे रिटायर्ड आदमियों की सूची में दर्ज किया जायगा । वह इतना उपयोगी होगा कि संसार उसे रिटायर होने की आज्ञा न देगा, न उसे रिटायर होने की इच्छा पैदा होगी। वह आदमी जो कार्य्य से प्यार करता है कार्य्य उसके लिये बहुत ही सुखदायक होगा ।

आजकल उद्योगी संसार में हर जगह नवयुवकों की जो मांग है उसका आयु से कोई संबन्ध नहीं। आवश्यकता ऐसे लोगों की है जो बुद्धिमान बलवान और सजीव हों । इस बात की कुछ परवा नहीं कि इस संसार में रहते हुए उन्हें कितना समय हो गया। किन्तु जो लोग अर्द्ध शताब्दी से अधिक आयु व्यतीत कर चुके हों उनमें से बहुतों ने अपने मस्तिष्क की कोठरियों को हड्डी की भांति कठोर हो जाने दिया है इसलिये वे कार्य्य के योग नहीं रहे, और नवयुवकों की मांग है । किन्तु जो मनुष्य अपने शरीर से हड्डी बनने के क्रम को निकाल दे वह जितने अधिक समय तक जियेगा उतना ही अधिक प्रखर बुद्धि का, हृष्ट पुष्ट और बलवान होता जायगा और उद्योग धन्धे के लिये उसकी आवश्यकता बराबर बनी रहेगी ।

युवा बने रहना सीखो। फिर भविष्य के अवसर वर्तमान की अपेक्षा कई गुना अधिक बढ़ जायेंगे । जितने अधिक समय तक जीवित रहो उतना ही तुम्हारा ज्ञान भण्डार बढ़ता जायेगा और जब तक शरीर युवा और बलवान रहेगा उसमें उत्तरोत्तर ज्ञान और शक्ति की वृद्धि होती जायेगी ।

उस मनुष्य के लिये जिसने युवा बना रहना सीख लिया है, आयु बढ़ने का अर्थ यह होता है कि उत्तरोतर बुद्धि, योग्यता बल, शक्ति उपयोगता और वास्तविक जीवन आनंद तथा प्रत्येक वस्तु की जो संसार में सुन्दर और अच्छी है वृद्धि होती जाती है। वह अधिक आयु होने से नहीं डरता क्योंकि उसके अर्थ उसके समीप निर्बलता, बुढ़ापा और सुस्ती के नहीं हैं बल्कि इनके स्थान पर उस के लिये इस के अर्थ अनुभव सहित यौवन, साधन सहित

शक्ति, इच्छा और उस की पूर्ति, सुन्दर और अच्छी वस्तुओं का प्रेम तथा उन पर अधिकार और आनन्द प्राप्त करने की योग्यता तथा उस के साधनों पर अधिकार है।

साधारण मनुष्य को कार्य्य इस लिये कड़ा अनुभव होता है कि अपने कार्य्य में वह जिस उत्तेजना से सहायता लेता है वह स्फूर्ति को उन्नत करने की जगह उसे नष्ट कर डालती है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक कार्य्य में जिस उत्तेजना से काम लिया जाये उस में स्फूर्ति को उत्तरोत्तर जागृत करने की प्रवृत्ति हो जो शरीर में छिपी हुई है। यह बात प्रगट है कि जिस काम में यह प्रवृति मौजूद हो वह शारीरिक शक्ति को कम करने के स्थान में उसे उन्नत करेगा।

काम में ऐसी प्रवृति उत्पन्न करने का रहस्य कि वह शरीर में छिपी हुई स्फूर्ति को प्रगट करे यह है कि उस काम से प्यार किया जाय। प्यार का प्रभाव कार्य्य पर बहुत गहरा पड़ता है। इस प्रकार कार्य्य के प्रभाव का अनंत जीवन की गहराइयों से सबंन्ध हो जाता है। प्यार से कार्य शैली में एक निर्माणकर्त्ता प्रवृति भी हो सकती है। प्यार की शक्ति सदैव निर्माणकर्त्ता होती है, और जिस वस्तु से उसका सम्बन्ध हो उस मे निर्माण करने, फैलने, बढ़ने और उन्नति करने आदि की इच्छा पैदा करती है।

कार्य्य का प्रारम्भिक उद्देश्य वस्तुओं का निर्माण करना है, किन्तु कार्य्य के प्रभाव से निर्माणकर्त्ता के निर्माण का काम भी लिया जा सकता है। वस्तुतः जिस कार्य्य का प्रभाव नितान्त निर्माण हो तो वह निर्माणकर्त्ता को उसी समय बनाता जाता है जब कि वह दूसरी चीज़ों के निर्माण में व्यस्त हो और कार्य्य का प्रभाव अवश्य निर्माणत्मक सिद्ध होगा, जब कि निर्माणकर्त्ता अपने काम से प्यार करता है।

अतः इससे प्रगट है कि जब कोई आदमी अपने काम से प्यार करे तो यह काम उन्नति की शक्ति बन जायगा और कि हानि पहुंचाने के स्थान यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा।

जब कोई आदमी वैज्ञानिक रीति से काम करे तो उसका कार्य्य उसे अधिक क्षमता शाली अधिक योग्य और समर्थ बनायेगा और वैज्ञानिक रीति से काम करने के लिये प्रथम निमय यह है कि मन और आत्मा की सारी शक्ति से उस काम से प्यार किया जाय और दूसरा नियम यह सोचना कि सारा काम कर्ता को बनाते और उन्नति और पुष्टि देते हैं। प्रत्येक कार्य्य यह सोच कर आरम्भ करना कि यह उन्नतिकारिणी शक्ति की भांति काम देगा मानो मनुष्य शरीर के समस्त अवयवों को वस्तुओं के निर्माण में संलग्न होते हुये शरीर निर्माण की ओर आकर्षित करना है।

मनुष्य कार्य्य संपादन शक्तियों को जिस ओर आकर्षित किया जाये वही काम करेंगी और जब हम अपने काम से प्यार करते और उद्देश्य को दृष्टि में रख कर काम करते हैं कि अपने वास्तविक प्रभाव के विचार से ये शक्तियां पूर्णतया निर्माणात्मक हैं तो हम वे जाने हुये उन्हें अपने मन और शरीर को उन्नति करने की ओर आकर्षित करते हैं।

जब कोई शक्ति निर्माणात्मक हो तो उस शरीर पर जिसमें यह उत्पन्न हुई हो और उस मनुष्य पर जो इससे काम ले इसका प्रभाव निर्माणात्मक ही होता है। इसका अर्थ दूसरे शब्दों में यह है कि जो मनुष्य इस शक्ति से काम ले वह इसकी निर्माणात्मक प्रवृति के कारण स्वयं ही अटूट उन्नति प्राप्त करता रहेगा। कार्य्य संपादन में जिस शक्ति से काम लिया जावे वह सब की सब निर्मातृ बन जाती है, यदि कर्त्ता अपने काम से प्यार करता और कार्य्य कि निर्मातृ प्रभाव को अपने मन में रखता हो।

जो मनुष्य अपने काम से प्यार करे वह यों भी अपना काम उत्तम कर सकता है जिसका कारण यह है कि प्यार से तमाम कार्य्य संपादन शक्तियों में अधिक निमातृ शक्ति पैदा होती है। जब हम उस काम से जो कि हम कर रहे हैं प्यार करें तो हम अपनी उत्तम अवस्था में होते हैं और स्वाभाविक रीति से बहुत अच्छा करते हैं। हम जीवन के सूक्ष्मतर तत्त्व, सूक्ष्मतर उत्पादक

शक्तियों और सूक्ष्मतर विचार शक्तियों को बुलाते हैं। इसका फल यह होता है कि किया हुआ काम इतना ही सर्वोत्तम होता है जितना हमारी उन्नति की वर्तमान अवस्था में किया जा सकता है।

अतः जो काम हमारे हाथ में हो उस से पूर्ण रूप से प्यार करना व्यक्तिगत उन्नति का एक साधन बन जायेगा और यतः वर्तमान काम से प्यार करने से अक्षय यौवन भी प्राप्त होगा इस लिये इस प्रकार एक पंथ दो काज होंगे अर्थात हम यौवन और उन्नति दोनों ही प्राप्त कर लेंगे, जो कि बड़े सौभाग्य की बात है।

महान लाभ और पराक्रम का मार्ग केवल उन्हीं लोगों के लिये खुला है जिन्होंने अपने काम से प्यार करना सीख लिया है और जो लोग इस कला को सीख चुके हैं उनके लिये भविष्य काल बहुत कुछ धन लिये हुये है। वास्तव में जब कोई आदमी अपने काम से प्यार करना सीख लेता है तो उसे पूर्ण उन्नति और वृद्धि का रहस्य ज्ञात हो जाता है और इसके अतिरिक्त उसे अक्षय यौवन भी मिलता है।

यह बात कि उस काम से जो कोई मनुष्य कर रहा हो, प्यार करने से उसका तमाम कृत्रिम तत्व लुप्त होजाता है मनुष्य जीवन संबन्धी तमाम बातों में बहुत महत्त्व रखता है, क्योंकि काम जब तक कृत्रिम हो वह निकृष्ट कोटि का रहेगा। इसके अतिरिक्त कृत्रिम काम कोठरियों के अन्दर से जीवन को पीस कर निकाल लेता है, जिस से वे कोठरियां मुरझा कर सूख जाती, हड्डी की भांति कठोर बन जाती और पुरानी हो जाती हैं। अतः जब तक काम कृत्रिम हो उस समय तक न यौवन ही संभव है न उन्नति ही और हर एक काम, चाहे वह शारीरिक हो चाहे मानसिक हो, जिससे प्यार न किया जावे कृत्रिम होता है। शरीर की प्रत्येक शक्ति की प्रेर्णा कृत्रिम रहेगी यदि उसमें उस कार्य्य से प्रबल प्रेम से जो इस प्रेर्णना का कारण हुआ है जान न डाल दी जाये। शरीर की प्रत्येक गति से कृत्रिम प्रभाव पूर्णतः दूर करने के लिये हम हर

उस कार्य से जो हम करते हैं प्यार करना सीखें, या केवल वही काम करने का निश्चय कर लें, जिस से हम मन और आत्मा की पूरी शक्ति से प्यार कर सकते हैं।

अपने काम से प्यार करना सीखने के लिये सब से पहिली आवश्यक बात उस काम को चुनना है जो हमको सब से अधिक रुचिकर प्रतीत हो, और यदि ऐसा काम न मिले तो हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि हम हर ऐसे काम से प्यार करना सीख सकते हैं जो हमें करना पड़े, और जो काम हमें करना हो उसे आरंभ करने से पहिले हमें मन और आत्मा की पूरी शक्ति से इस बात की प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि मैं इस से प्यार करूंगा।

बराबर इस बात को दुहराते रहने से कि "मैं अपने काम से प्यार करता हूं" इस कार्य से प्यार बढ़ने लगता है परन्तु आवश्यक यह है कि यह बात अर्द्धचेतन मन (Sub-conscious Mind की गहराई में की जाय। किन्तु विदित रहे, कि किसी प्रतिज्ञा का प्रभाव उस समय तक नहीं पड़ सकता जब तक कि उसे अर्द्ध चेतन मन पर अंकित न कर दिया जाय। और यही बात साधारण कल्पना के विषय में ठीक है।

अपने काम को एक ऐसी वस्तु समझना आवश्यक है जिससे तुम गहरा प्यार करते हो और यदि इस में तीव्रता आ जाये तो लाभ और भी अधिक होगा। किसी मनुष्य को कभी यह कहना या विचार करना न चाहिये प्रत्युत मैं अपने काम से प्यार नहीं करता क्योंकि ऐसा करने से वह निस्संदेह असफल और बूढ़ा हो जावेगा। जब हमें कोई काम ऐसा करना पड़े जो आरंभ में प्रतिकूल व शुष्क मालूम हो तो हमें उससे अधिक प्यार करके अपने अनुकूल बना लेना चाहिये। विदित रहे कि यह केवल कल्पना ही नहीं है प्रत्युत वैज्ञानिक आधार पर अवलंबित है, और जो आदमी इससे काम लेगा वह देख सकता है कि इससे कितना लाभ होता है।

जो काम हम कर रहे हों उससे पूरा प्यार करना मानो उस चीज़ के रास्ते पर क़दम रखना है जिससे हम अधिक प्यार कर

सकेंगे। जो मनुष्य हर चीज़ से अपने आपको यथा शक्ति अधिक अनुकूल बना लेता है, उसमें सानुकुलता की इतनी तीव्र शक्ति पैदा हो जाती है कि हर चीज़ जो उसके अनुकूल हो स्वयं ही उसकी ओर खिंची चली आती है। प्रत्येक बात को अपना समझ कर कार्य्य करने से उसे अनुभव होने लगेगा कि वस्तुतः वह उसी की हैं। दूसरे शब्दों में जो मनुष्य अपने काम से पूरी शक्ति भर प्यार करता है, उसके अंदर काम से इतना अधिक प्यार पैदा हो जाता है कि स्वभावतः वह काम उसकी ओर खिंचा चला आता है जो उसके अनुकूल हो।

उस काम को तलाश करने का जो हमारी योग्यता के अनुकूल और हमारी इच्छा के अनुकूल हो यही रहस्य है।जो मनुष्य सदैव अपने काम से प्यार करे उसे हमेशा वही काम मिलेगा, जिससे वह प्यार करता है। इसके अतिरिक्त वह उन्नति करता रहेगा और अनंत यौवन प्राप्त करता जायेगा।

चतुर्दश अध्याय

अक्षय आनंद और अक्षय यौवन का सम्बन्ध

वह मन जो प्रसन्न रहता है, वही ठीक है और यौवन को स्थिर रखने के लिये आवश्यक है कि मन ठीक प्रकृति के साथ हो।

प्रसन्न रहने के लिये मनोरंजन आवश्यक है। मन उसी समय प्रसन्न रहता है जब उसे किसी बात से आनंद मिल रहा हो, चाहे वह बात ठीक हो या न हो। अतः यदि आप मन को ठीक रखना और युवा बने रहना चाहते हैं तो सुखास्वाद भी होना चाहिये। अक्षय यौवन प्राप्त करने के लिये पहले यह बात आवश्यक है कि बराबर मनोरंजन होता रहे, अर्थात् जीवन के प्रत्येक क्षण में आनंद प्राप्त किया जाये, और प्रत्येक बात से जिस का जीवन से सम्बन्ध हो आनंद प्राप्त किया जाय।

जीवन के प्रत्येक क्षण में आनंद उठाने के लिये मन को ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि उसे जीवन से आनंद प्राप्त हो, और यह बात देखी जायेगी कि जब मनुष्य जीवन का पूर्ण अनुभव प्राप्त कर ले तो केवल अस्तित्व ही एक स्थायी अनंत आनन्द प्रतीत होगा।

आनंद प्राप्ति के लिये भिन्न २ बातों, घटनाओं, दशाओं पर निर्भर रहना मानो वास्तविक बात की छाया को प्राप्त करना है। वास्तविक आनंद केवल उसी समय प्राप्त होता है जब उन घटनाओं या दशाओं में सच्चे जीवन व्यतीत करने का उद्गार मौजूद हो जो वास्तव में सुस्पष्ट जीवन की जान है।

चीज़ों की आत्मा ही आनंद प्रदान करती है और वस्तुओं द्वारा उचित रूप से प्रगट हुये बिना आनंद दे सकती है, किन्तु अधिक से अधिक आनंद उस समय प्राप्त होता है जब यह आत्मा वस्तुओं की सब से उत्तम दशा में विराट रूप से प्रगट होती है।

अतः इस अनंत आनंद के प्रकाश को जो आत्मा के जीवन से निकलता है पूर्णता, सम्पन्नता और बाहुल्यता देने के लिये आवश्यक है कि वस्तुओं के संसार में लाभदायक मनोरंजन ढूंढा जाये।

प्रत्येक मन का यह एक विशेष उद्देश्य होना चाहिये कि प्रत्येक क्षण प्रसन्न रहा जाये, किन्तु विदित रहे कि आनंद केवल व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति के लिये न ढूंढना चाहिये। आनंद को आनंद के लिये तथा जीवन को अधिक मूल्यवान बनाने के लिय जिसकी प्राप्ति बराबर आनंद की दशा में रहने से होती है ढूंढा जाये।

मन बहलाव और चित्तरंजन के लिये अधिक और निश्चित सावकाश की आवश्यता है और उसे व्यक्तिगत जीवन के प्रारम्भिक समय तक ही परिमित न करना चाहिये। अपने अस्तित्व को स्थिर रखने के लिये प्रत्येक मनुष्य को जब तक वह जीवित है प्रसन्न रहना चाहिये, किन्तु यदि वह उस समय तक कि जब

तक उसको जीना है प्रसन्न न रहे तो मानो वह अपने कर्त्तव्य को पालन नहीं करता।

झूठे विचार के लोग कहते हैं,

"नवयुवकों को आनंद प्राप्त कर लेना चाहिये, क्योंकि यही अवसर ऐसा करने का है; वे अति शीघ्र बूढ़े हो जायेंगे"। फिर यह भी कहा जाता है "हमको केवल एक ही बार युवा होना है। आओ युवावस्था में तो जीवन का आनंद उठालें। जब बुढ़ापा आयेगा तो न आनंद उठाने की क्षमता और योग्यता रहेगी न इच्छा ही रहेगी॥

किन्तु यह हतोत्साह करने वाले शब्द हैं। यह उन व्यक्तियों के मुख से निकलते हैं जो झूठे विचारों के बन्धनों में बंधे हुये हैं और यह नहीं जानते कि वह उन मनुष्यों में से नहीं हैं जो स्वतंत्रता से अपने वास्तविक विचारों पर मनन करते हैं।

इस झूठे विश्वास के कारण कि नवयुवकों को उस समय तक जीवन का आनन्द उठा लेना चाहिये जब तक कि वह उठाने के योग्य हैं अधिकांश नवयुवक चंद साल के भीतर २ इससे कई गुना आनंद प्राप्त करने के लिये हाथ पांव मारते हैं, जितना कि संभव हो सकता है। इसका फल यह होता है कि मनोरंजन का बहुत बड़ा भाग जिसे प्राप्त करने की कोशिश की जाती है, आनंद प्राप्त करने में असफल रहता है, बल्कि विरुद्ध इसके मन को थका देता है और निष्पन्न जीवन के दिन को जल्द लाता है॥

जब निष्पन्न जीवन आरंभ होता है तो बुढ़ापे का क्रम मनुष्य पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेता है और बहुत ही शीघ्र अपने आप को प्रकट करना आरंभ कर देता है।

यदि बालकों को यह सिखलाया जावे कि वह जितने समय तक जीवित रहें युवा रह सकते हैं, और जब तक युवा रहें जीवन का आनंद प्राप्त कर सकते हैं तो वह इन सब को चंद ही साल में प्राप्त करने की कोशिश न करेंगे क्योंकि उन्हें मालूम होगा कि प्रत्येक वस्तु से भली प्रकार और बहुत सा लाभदायक आनंद प्राप्त करने के लिये बहुत समय है।

यदि बच्चों को यह बड़ी बातें समझा दी जायँ तो वे न केवल गुणों के सम्पादन में ही आनंद प्राप्त करने में व्यस्त रहेंगे प्रत्युत वह आनंद प्राप्त करने की योग्यता को भी बढ़ायेंगे। आनंद प्राप्त करने की क्षमता की उन्नति करना इस दृष्टि से लाभदायक सिद्ध होगा कि आनंद प्राप्ति का क्रम सारी आयु जारी रहता है और कि व्यक्ति गत जीवन से अधिक आनंद प्राप्त किया जा सकता है।

यह धारणा कि हम केवल एक ही बार युवा होते हैं सत्य है किन्तु वह एक बार उस समय तक रहता है जब तक कि हम नियमानुसार जीवन व्यतीत करते रहें। हम केवल प्रकृति के नियमों को भंग करने के कारण बूढ़े होते हैं किन्तु प्रकृति को यह अधिकार प्राप्त है कि जो आदमी सच्चे अर्थ में दोबारा अपना नियमित जीवन आरंभ कर दे वह उसके यौवन को पुनः लौटा देती है।

इस विश्वास के साथ जीवन व्यतीत करना कि यौवन अस्थायी है मानों बुढ़ापे की राह देखना है और बुढ़ापे की राह देखना मानो बूढ़ा होना है। इस विश्वास के साथ जीवन व्यतीत करना कि हम केवल उसी समय आनंद प्राप्त करते हैं जब तक युवक हैं न केवल सुख के जीवन को आवश्यकता से अधिक व्यय करना है बल्कि उस अवस्था में आनंद केवल विषय वासनाओं की इच्छा की पूर्ति के लिये तलाश किया जाने लगता है। वह सुख जो सामान्य जीवन को तुष्टि देने वाला हो निर्बल करने वाला है, और इसके अतिरिक्त उसे उस आनन्द में कभी कोई विशेषता नहीं होती और विशेषता युक्त आनन्द की खोज बहुत ही महत्त्व पूर्ण है।

हमें सदैव उस बात का अनुराग हो जाता है जिस से हम आनन्द प्राप्त करते हैं। इस लिये विषय भोग आदि से आनंद प्राप्त करना मानो स्वयं विषयी और भोगी बन जाना है। इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन की परिमित शक्ति नष्ट हो जाती है और आन्तरिक महान ढेर की अपरिमित शक्ति को काम में लाने की ओर ध्यान ही नहीं देसकती। यौवन को स्थायी बनाने के लिये आनंद के विषय में जो पैतृक विचार है उसे पूर्णतया उलट देना चाहिये क्योंकि खुशी जीवन का एक न पृथक होने योग्य अंग है। किन्तु जो लोग इस विषय में साधारण पैतृक विश्वास को स्वीकार करते

हैं, वे इस भाग से पूर्ण रूप से लाभ उठाते हैं। मनुष्य जाति का विश्वास यह है कि आनंद एक आकस्मिक वस्तु है और सुख एक ऐसी वस्तु है जिसके कारण किसी को ज्ञात नहीं, इसलिये यह मनुष्य के विचारों की परवा न करते हुये आती जाती रहती है। किन्तु वास्तव में यह बात नहीं। मनुष्य जब चाहे आनंद पैदा कर सकता है और अपने कर्तव्य पालन करने के लिये आप उसे अपने जीवन के भी प्रत्येक क्षण में आनंद प्रस्तुत करना चाहिये। आनंद की खोज वैसे ही महत्त्व पूर्ण है जैसे नेकी व बुद्धिमानी और नैतिक संसार में लाभदायक आनंद भी इतना ही मूल्यवान हैं जितने कि भलाई के विचार। जब आनंद वर्तमान न हो तो समझ लेना चाहिये कि मनुष्य रुच्चे मार्ग से भटक गया है और जब आनंद की खोज न रहे तो इसके अर्थ यह हैं कि जीवन के लक्षन और उद्देश्य पर मनुष्य के मानसिक जीनव की पकड़ ढीली हो गई है।

जो मन जीवित हो उसे आनंद प्राप्त करने की वैसी ही आवश्यकता है जैसे जीवित शरीर को भोजन की और शरीर को सदैव युवा रखने के लिये आवश्यकता है कि मन और शरीर दोनो पूर्ण रूप से जीवित हों। जब मन को इसके आनंद से वंचित कर दिया जाता है तो वह युवा जीवन व्यतीत नहीं करता वह बूढ़ा होने लग जाता है और बूढ़ा मन बहुत शीघ्र शरीर को भी उतना बूढ़ा प्रकट करने लग जाता है जितना कि मन स्वयं अनुभव करता है।

अतः यदि शरीर को युवा रखने की आवश्यकता हो तो मन को सदैव प्रसन्न रखना चाहियें।

मन के लिये बराबर आनंद की सामग्री प्रस्तुत करते रहने की समस्या सुगमता से हल हो जाती है जब हम इस बात को अंगीकार करलें कि जीवन बनाया ही आनंद के लिये गया है और केवल प्रसन्न रहने वाला मन ही यथाक्रम हो तो प्रसन्नता उसी का स्वाभाविक फल होती है। अतः हर समय मन प्रसन्न रखने के लिये इस बात की आवश्यकता है कि मन को हर समय यथाक्रम रक्खा जाये। यथाक्रम मन वह है जो प्राकृतिक नियमों के अनुकूल

हो और यतः मनुष्य जीवनमें विशेष प्राकृतिक नियम वृद्धि व नवीकरण हैं इसलिये जो मन अपने नवीकरण और सतत उन्नति में सदैव संलग्न रहता है वह बहुत ही शीघ्र नियमित मानसिक दशा ग्रहण करेगा। किन्तु नियामित दशा को भी पूर्ण करके उसे वास्तविक जीवन के उच्चतम स्थान तक पहुंचाया जा सकता है, और आनन्दोपभोग करने की क्षमता को उन्नत देने के लिये इस साधक नियम को बढ़ाने के लिये मन को इस बात की शिक्षा देनी चाहिये कि वह जीवन के शारीरिक मानसिक और अध्यतिमक सारे दर्जों में जीवन का आनंद ले सकें।

साधारण मनुष्य के जीवन में प्रसन्नता स्थायी क्यों नहीं होती इस का कारण यह है कि तीनों क्षेत्रों के स्थान में केवल एक या दो में ही उसकी खोज की जाती है। मन को अक्षय आनन्द देने के लिये इस बात की आवश्यकता है कि हर एक क्षेत्र अपनी शक्ति से काम लेकर प्रसन्नता प्राप्त का यत्न करे। नित्य जितना ही अधिक काम इन तीनों शक्तियों से लिया जावेगा, उतनी ही अधिक प्रसन्नता प्राप्त होगी॥

केवल शरीर द्वारा आनन्द प्राप्त करने का यत्न करना मानों बहुत ही सस्ती प्रसन्नता प्राप्त करना है। केवल मन द्वारा प्रसन्नता की खोज करने से किसी सीमा तक तुष्टि प्राप्त हो सकती है तथापि वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। आत्मा द्वारा आनन्द खोज करना मानो उन आनंदों को प्राप्त करना है जो केवल पुरस्कार में प्राप्त हो सकते हैं। यदि नित्य जीवन को आत्मा से सम्बन्ध रखने वाला बनाया जाये तो वह प्रतिदिन के व्यक्तिगत जीवन पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सकेंगे।

जब चेतन बोध शरीर मन और आत्मा को सारे आनंदों का एक पूर्ण उद्यम बनाने का कार्य्य ग्रहण करे तो शारीरिक आनन्द परिष्कृत हो जावेंगे और इस लिये उनके द्वारा बहुत अधिक सुख मिल सकेगा। मन के आनंदों को शरीर से ताप और आत्मा से प्रहर्ष मिलेगा और इस प्रकार बराबर विपुल सम्पत्ति प्राप्त हो

सकेगी। आत्मिक आनंद मन और शरीर द्वारा पूर्ण रूप से प्रगट होंगे और इस पर व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक क्षण को बराबर आनंद प्राप्त हो सकेगा।

जहां तक शीघ्र संभव हो सके मन को इस बात की शिक्षा देनी चाहिये कि वह जीवन के तीनों क्षेत्रों में आनंद की खोज करे और इन तीनों को ऐसी उत्तम रीति पर मिला सके कि वह सर्वोत्तम व सर्वांग पूर्ण रूप धारण कर लें। इसका फल यह होगा कि अक्षय आनंद, आवेदन का अविरोध तथा पूर्ण वैयक्तिक समता प्राप्त होगी।

खुशी के तीनों विभागों को मिला कर एक करने के लिये पहली आवश्यकता इस बात को स्वीकार करना है कि आनंद मानव शरीर की एक अखंड शक्ति है और यदि चेतनता सदैव स्वतंत्रता पूर्वक इसे प्रगट करे और आगे पहुंचाती रहे तो, इस का प्रकाश अखंड होगा किन्तु चेतनता सदैव स्वतंत्र नहीं होती क्योंकि स्वतंत्र चेतनता केवल वह है जो सारे जीवन अर्थात शरीर मन और आत्मा इन तीनों से एक ही समय सचेत हो। जब चेतना केवल त्वचा ही से आनंद प्राप्त करना चाहती है तो यह केवल शारीरिक वस्तुओं तक परिमित रह जाती है और कोई परिमित चेतना स्वतंत्र चेतना नहीं हो सकती। यही बात इस विषय में घटित होती है जब केवल मन या केवल आत्मा से केवल आनंद प्राप्त करने का यत्न किया जाये। स्वतंत्र होने के लिये आवश्यक है कि चेतना किसी एक क्षेत्र तक परिमित न हो वरन् सारे क्षेत्रों पर विजयी हो सके। इस दशा में चेतना हर उद्गम से प्राप्त होने वाले आनंद की शक्ति से संबन्ध रखती है, जिसका परिणाम् यह होता है कि उक्त मनुष्य सदैव आनंद से सुचित रहता है और उसे सदैव जीवन का वास्तविक और अपरिमेय आनंद प्राप्त होता है।

जीवन व्यतीत करना मानो प्रसन्नता उत्पन्न करना है। जीवन व्यतीत करने से जीवन का आनंद प्राप्त होता है। इसलिये जब तक जीवन का क्रम जारी रहे मनुष्य के आनंद की एक अखंड शक्ति

स्थिर रहती है और यह शक्ति प्रत्येक काल में अनुभव हो सकती है, परन्तु इसके लिये चेतनता स्वतंत्र होनी चाहिये और तमाम वास्तविक जीवन में जो कुछ घटित हो उसे मालूम कर सके और कांशस की यह स्वतंत्रता उस समय प्राप्त होती है जब कांसस शरीर मन आत्मा इन तीनों से एक ही समय में भिन्न हो।

जब चेतन मन को इस प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त होगी और वह सब समयों में प्रत्येक स्रोत से आनंद की शक्ति अनुभव कर सके तो इससे मन को इस प्रकार का पोषक द्रव्य प्राप्त होगा, जो मन के सदैव सजीव रहने के लिये आवश्यक है। वह मन जो सदैव अखंड आनंद से भरा रहे, वह सदैव सजीव रहता है और जो मन सदैव सजीव रहे उसका सदैव युवा रहना आवश्यक है।

यदि मन को इन सर्व साधनों में से केवल एक से ही आनंद प्राप्त होता हो तो बहुत शीघ्र यह उस आनन्द से थक जावेगा, क्योंकि वह आनंद अपूर्ण है और इसलिये सारे शरीर को सजीवता प्रदान नहीं करता। यदि मन शरीर मन और आत्मा तीनों साधनों से प्रसन्नता प्राप्त करे तो वह कभी न थकेगा क्योंकि इस प्रकार की प्रसन्नता मनुष्य के सारे शरीर में स्थायी स्फूर्ति पैदा करती और वह जिसका प्रत्येक भाग सजीव हो कभी किसी भाग में थक ही नहीं सकता।

शरीर के यौवन को स्थायी बनाने के लिये आवश्यक है कि शरीर का प्रत्येक भाग सब समय पूर्णतया सजीव हो। जीवन को नष्ट करना मानो बूढ़ा होना और मर जाना है और यह सतत सजीवता उस समय तक स्थिर रहेगी जब तक कि मन को हर्ष के तीनों वृहद साधनों से सच्ची प्रसन्नता प्राप्त होती है। अतः सिद्ध होता है कि अक्षय आनंद और अक्षय यौवन दोनों एक हैं और उन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता।

पंचदश अध्याय

ऊपरी कोठे पर और धूप की ओर रहो।

जब हम किसी मकान के ऊपरी भाग में रहते हों तो अपेक्षाकृत युवा और यदि निचले में रहते हों तो अपेक्षाकृत अधिक आयु के दिखाई देते हैं। ऐसे ही यदि हम अपनी आयु छाया की ओर व्यतीत करें तो अपेक्षाकृत अधिक आयु के और यदि धूप वाले भाग की ओर गुज़ारें तो अपेक्षाकृत युवा दिखाई देते हैं। यह ऐसी बातें हैं कि जिनका सर्व संसार में अनुभव हो चुका है और इस लिये जो लोग युवा रहने का निश्चय कर चुके हैं उन्हें इन पर ध्यान देना चाहिये।

आयु के विषय में शरीर के वाह्य रूप पर मन की उन विभिन्न दशाओं का प्रभाव क्यों पड़ता है इस का कारण इस प्रकार ज्ञात हो सकता है कि हम ध्यान पूर्वक जीवन की रासायनिक क्रिया का अध्ययन करें। वृद्धावस्था या यौवन की दशायें रासायनिक दशायें हैं, और शरीर की रासायनिक दशाओं में मन के भीतर तबदीली कर के सुगमता से परिवर्तन किया जा सकता है।

मन के उच्चतम भाग में रहना मानो अधिक जीवन का बोध होना है और जीवन की अधिकता सदैव यौवन उत्पन्न करती है। इस दशा में मन के भीतर एक विस्तृतकारिणी अवस्था भी पैदा होती है अर्थात् जब हम ऊपरी भाग में रहें तो मन बड़ा अनुभव होता है और जो कुछ हमारे मन में अनुभव हो वही शरीर द्वारा प्रगट होता है। इस का परिणाम यह होगा कि मन की प्रसारिणी वृत्तियों का प्रभाव शरीर की रासाययनिक प्रगतियों पर होगा और इस प्रकार से कोठरियां, जहां तक अधिक से अधिक संभव है फैल सकेंगी। फैली हुई कोठरियां यौवन और बल से भरी हुई अनुभव होती हैं, लेकिन विरुद्ध इसके मुर्झाई हुई कोठरियां बूढ़ी और निर्जीव दिखाई देती हैं।

यदि शरीर की कोठरियों में फैलाने वाली प्रवृत्ति पैदा की जाये तो इससे वह हमेशा बढ़ती और उन्नति करती रहेंगी और जिस दशा में शरीर की कोठरियां बढ़ रही हों बुढ़ापे की अवस्थायें अपना क़दम नहीं जमा सकती।

विरुद्ध इसके मन जिस दशा में निचले भाग में रहता हो तो उसकी सारी क्रियायें संकुचित और परिमित हो जाती हैं और उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार शरीर की कोठरियां सिकुड़ने, मुर्झाने निर्बल और अधिक आयु की अनुभव होने लग जाती हैं। ऐसी कोठरियां बहुत शीघ्र हड्डी की भांति कठोर होने लगती हैं और जब यह क्रिया आरंभ हो जावे तो मनुष्य की सारी इन्द्रियां जीर्ण होने लगती हैं। मानसिक विकास में भी बाधा पड़ने लगती है और जब शरीर की उन्नति रुक जावे वह सदा बूढ़ा होने लग जाता है।

जीवन की अंधकारमय दिशा में रहने से तात्पर्य यह है कि मन को निराशाजनक स्थान में बिठा दिया जाये। ऐसी दशा में रहने वाले मन को सदैव केवल असफलता और हार ही दिखाई देती है। सांसारिक बातें तुच्छ और निरर्थक ज्ञात होती हैं। ऐसे विचार और मानसिक अवस्थायें रुकावट पैदा करने वाली प्रवृत्ति पैदा करती हैं और जब ऐसी प्रवृत्तियों का प्रभाव शरीर पर होने लगे तो उन्नति में बाधा हो जावेगी, शारीरिक कोठरियां निर्बल और नष्टप्राय व जीर्ण होकर मृत्यु के समीप पहुंची हुई दिखाई देंगी। जहां अंधकार का साम्राज्य हो वहां कोई वस्तु उन्नति कर या बढ़ नहीं सकती। यदि अक्षय यौवन की प्राप्ति की इच्छा है तो शरीर के प्रत्येक भाग में स्थायी उन्नति आवश्यक है॥

जीवन के प्रकाशमय भागों में रहने का आशय यह है कि मन को उन्नति व बढ़ोतरी की दशा में रक्खा जाये। यह एक निश्चित नियम है कि मन सदैव उसी चीज़ की ओर बढ़ता है जिस पर उसका ध्यान जम चुका हो, इसलिये जब मन का ध्यान जीवन के प्रकाशमय भागों की ओर होगा तो उसमें प्रकाश के

बढ़ने की प्रकृति उत्पन्न हो जावेगी और प्रकाश की ओर बढ़ना मानो उत्तरोत्तर प्रकाश में प्रविष्ट होते जाना है। मन के प्रकाश को उन्नति देना मानो मनुष्य के सारे अस्तित्व की उन्नति में सहायता देना है और सतत उन्नति के अर्थ वास्तव में अक्षय यौवन के होते हैं। मानसिक प्रकाश की दशा में रहने से सारा शरीर स्वच्छ और परिष्कृत होता है, और इसके भीतर अध्यात्मिक तत्त्व पाया जाता है और जब यह क्रम जारी हो तो कोठरियों के हड्डी की भांति कठोर बनने की क्रिया और क्षीणता बुढ़ापे का प्रगट होना असंभव है।

जब मन प्रकाशमय भाग में रहता हो तो उसकी प्रत्येक प्रगति निर्माणात्मक होती है। जिस प्रकार प्रकाश चाहे शारीरिक हो चाहे मानसिक हर जगह शुद्धता फैलाता है, वैसे ही इसके प्रभाव से शरीर की प्रत्येक वस्तु शुद्ध व पवित्र हो जाती है और शरीर के तमाम तत्व और दशायें लाभदायक बन जाती हैं। आनंद व आल्हाद और मानसिक चमक की प्रकृति उस ओर है कि वह मनुष्य शरीर की प्रत्येक बात को शुद्ध व मनोहारिणी बनावे और जब कि मन बराबर प्रकाश की हालत में हो केवल वही वस्तु जो मनोहारिणी हो मनुष्य में शेष रहती है। किन्तु बुढ़ापे की अवस्था उत्तम नहीं इस लिये वह एक ऐसे शरीर में मौजूद नहीं रह सकती जहां हर एक वस्तु मनोहारिणी हो अर्थात् जब कि मनुष्य प्रकाशमय भाग में जीवन व्यतीत कर रहा हो।

मन को प्रकाशमय भाग पर जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देने के लिये इस बात की आवश्यकता है कि बड़े अनुराग से छान बीन की जाये कि जीवन में क्या २ सम्भावयतायें हैं। जिस मन को मालूम है कि मनुष्य की बुद्धि में कौन सी बात संभव है वह कभी हतोत्साह नहीं होता। ऐसे मन के लिये जीवन बहुत ही मूल्यवान है और प्रतिक्षण न केवल बड़ी २ बातों की आशा दिलाता है बरन् उसकी बदौलत उन बातों की प्राप्ति का विश्वास होता है जो वर्तमान जीवन से कहीं उत्तम हैं। जो

मन जीवन की बड़ी सम्भाव्यताओं को देखता है और उन की पूर्ण प्राप्ति के लिये बराबर प्रगति जारी रखता है उस के लिये भण्डार में प्रकाश ही प्रकाश है।

मन के सन्मुख जीवन के उच्च आदर्शों को हमेशा उपस्थित रखना इसलिये आवश्यक है कि तमाम मूल्यवान और आशा दिलाने वाली बातों पर मानसिक आंख जमी रहे। जब मन को इस प्रकार की शिक्षा दी जायेगी कि वह केवल उन्हीं बातों को देखे जिनके अन्दर चमक प्रकाश और आशा हो तो यह हमेशा चमक की अवस्था में जीवन व्यतीत करता रहेगा और चमक में प्रकाश और आशा होना यह हमेशा चमक की अवस्था में जीवन व्यतीत करना मानो हर उस सम्भव बात को प्राप्त करना है जो इस चमक में सुरक्षित हो॥

जब बाह्य जगत में कोई प्रकाश न हो तो मन को अपना ध्यान पूर्ण रूप से उस प्रकाश की ओर आकृष्ट कर लेना चाहिये जो सदैव आन्तरिक जगत में वर्तमाम रहता है। गहरे जीवन पर विचार किया जाये तो वह अपूर्व व अपरिमित शक्तियां दिखाई देती हैं जो केवल इस बात की प्रतीक्षा करती हैं कि मनुष्य उन्हें उन्नति दे और जब वास्तविक जीवन के उस कोष पर दृष्टि डाली जाये तो मन को चमक और प्रसन्नता प्राप्त होगी। इस बात को जानने से कि मनुष्य कौन सी बात प्राप्त और पूर्ण कर सकता है मन के भीतर दीप्ति उत्पन्न होती हैं, और यह बात हर एक मन अपनी आन्तरिक महानता पर ध्यान देकर प्राप्त कर सकता है। विस्मृत संसार में रहना और उसके पूर्ण अनुभव के लिये सदैव आगे की ओर बढ़ते जाना, मानों महान जीवन के प्रकाश में जीवन व्यतीत करना है और इस प्रकाश में रहना मानों सच्ची दीप्तिमें रहना है।

मन को विचार और चेतनता के उच्चतम भाग में रहने की शिक्षा देने के लिये पहली आवश्यकता इस बात को स्वीकार करना है कि मानसिक जीवन का कोई उच्चतम भाग भी मौजूद है। और दूसरी आवश्यक बात केवल उन्हीं विचारों अनुभवों और

मानसिक दशाओं की ओर ध्यान देना है जिनमें ऊपर उठने की प्रकृति पाई जाती है और संकुचित मानसिक अवस्था में रहना और ऐसी मानसिक दशाओं के साथ गहरा अनुराग रखना मानों मन के अन्दर नीचे की ओर लेजाने की प्रवृति पैदा करना है। इसका फल यह होता है कि मन चेतना की निचली तह में जा गिरता है जहां कि प्रत्येक बात अशुद्ध, अप्रकट अनवहित होती है। जब मनकी यह अवस्था हो तो सारा काम मुश्किल दिखाई देता है और कोई योग्यता या मानसिक शक्ति अपनी उत्तम-दशा में प्रगट नहीं होती। किन्तु विरुद्ध इसके जब मन ऊपरी तह में हो हर काम जो किया जाता है वह बहुत ही उत्तम रूप से सम्पन्न होता है और इसमें परिश्रम भी कम पड़ता है।

जब मन ऊपरी भाग में हो तो उसमें अधिक जीवन और शक्ति वर्तमान होती है और उसकी बुद्धि भी अधिक तीक्ष्ण होती है जिसका कारण यह है कि मन की तमाम ऊपर की ओर उठने वाली शक्तियां उत्पादक होती हैं अर्थात उनके द्वारा एक मानसिक वैद्युतशक्ति उत्पन्न होती है जो शक्ति और प्रकाश उत्पन्न करती है। ऊपरी तह में रहना मानो मन की प्रत्येक प्रगति को ऊपर उठने वाली हरकत बनाना है। विरुद्ध इसके निचली तह में रहना मानों मन की हर एक प्रगति को नीचे गिराना है और इस प्रकार स्वयं निर्बलता व अंधकार में प्रविष्ट होना है। इससे प्रगट है कि निचली तह में रहते हुये कोई काम की बात नहीं की जा सकती है।

मन को ऊपरी भाग में रहने की शिक्षा देने के लिये आवश्यक है कि हर बात से प्रसन्नता प्राप्त की जावे। प्रसन्न मन की प्रत्येक प्रगति सदैव ऊपर की ओर उठने वाली होती है जब कि वह कार्य्य जो प्रसन्नता से न हो विपरीत ओर जाता है, और इस प्रकार हमको निचली तह में ले जाता है। हर वस्तु को प्रसन्नता समझना इस दशा में विल्कुल सुगम हो जाता है, जब जीवन के उद्देश्य को समझ लिया जा सके, क्योंकि जीवन को जानना मानो महान जीवन व्यतीत करने के लिये जीवित रहना है और

जो मनुष्य महान जीवन के लिये जीता है उसको जीवन में तमाम बातें मिलकर महान जीवन बनाने में लगी रहेंगी।

यह बात कि जो आदमी भलाई और केवल भलाई को अपने मन और आत्मा की सारी शक्ति से चाहता है उसकी दशा में तमाम बातें मिलकर भलाई ही के लिये काम करती हैं। यह एक ऐसी बात है जो प्रायः सिद्ध हो चुकी है, इसलिये जो मन केवल भलाई की इच्छा रखता है वह सुगमता के साथ हर बात को प्रसन्नता समझ सकता है। ऐसे मन के लिये हर बात हर्ष उत्पन्न करती है और जितना अधिक वह हर वस्तु से प्रसन्नता की आशा करेगा उतना ही अधिक प्रसन्नता उसे हर बात से प्राप्त होगी। यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि जो आदमी हर बात को प्रसन्नता गिनता है वह अपनी मानसिक अवस्था द्वारा हर बात से प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है।

अपने जीवन में जिस वस्तु से हमारा सम्बन्ध होता है वह हमेशा हमारी मानसिक दशाओं की क्रियाओं के अनुसार चलती है। मनुष्य अपनी परिस्थितियों, दशाओं और अवस्थाओं का मालिक है किन्तु वह उनको अधिक पा लेने की कोशिश करके नहीं ऐसा बनता बल्कि अपने आप पर अधिकार प्राप्त करके जिसका तात्पर्य यह है कि वह उसी दशा में सफलीभूत हो सकता है कि अपने आपको उन मानसिक दशाओं में रक्खे जिनके द्वारा उसकी इन्द्रियां जिसकी इच्छा के फल पैदा करने के काम में संलग्न हों। उसकी अपनी इन्द्रियां जिस ओर को चलेंगी उसी ओर उसकी परिस्थित भी चलने लगेगी। यह जीवन के अटल नियमों में से एक है और जो मनुष्य अपनी हरकत में इस नियम से काम लेगा वह अपने जीवन को स्वयम् अपने हाथों में रख सकेगा।

जब व्यक्तिगत मन हर बात को प्रसन्नता गिनने लगेगा और इस विचार में मग्न रहेगा कि सब बातें मिल कर भलाई के लिये काम कर रही हैं तो उसका मन केवल भलाई के काम करने में संलग्न होगा और प्रत्येक वस्तु में खुशी पैदा कर सकेगा। इसका

फल यह होगा कि उसकी इन्द्रियां तथा अन्य निकटस्थ वस्तुयें भी उक्त मनुष्य की भलाई के लिये मिल कर काम करेंगी और जगत की हर बात से उस मनुष्य के लिये प्रसन्नता उतपन्न करायेंगी। ऐसे जीवन की प्रत्येक प्रगति ऊपर उठने वाली होगी और मन बराबर ऊपरी भाग में रह सकेगा॥

मन को ऊपरी भाग में रहने की शिक्षा देने के लिये यह भी आवश्यक है कि मनुष्य इस विचार में मग्न रहे कि सब बातों को वह अच्छाई और भलाई में परणित कर सकता है और वास्तविक बात यह है कि जब आप अनुभव करें कि मैं अपने भीतर की प्रत्येक बात को अच्छाई की ओर ला रहा हूं तो आप सब बातों को अच्छाई की ओर ले आरहे होते हैं। आपकी परिस्थित उस ओर को घूमेगी, जिधर को आप घूमते है, इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि आपके अस्तित्व की हर बात उस महान उद्देश्य की ओर जो ध्येय है पलटी जावे, किन्तु यह भी आवश्यक है कि इस पलट का भाव दृढ़ हो। जो बात करने का आप फ़ैसला करलें उसे अपने मन और आत्मा की पूरी शक्ति से सम्पन्न करें और जिस बात की आप इच्छा करें उसकी भी इतने बल से इच्छा करें जिसका प्रतिरोध हो ही न सके। परन्तु यह शक्ति गर्वयुक्त और उत्तेजना पूर्ण न होनी चाहिये, क्योंकि ऐसी शक्ति सब से निर्बल होती है। वास्तव में दृढ़ शक्ति गहरी और अमोघ होती है, यद्यपि साथ ही वह ऐसी मृदु और शान्त होती है कि प्रकट रुप से कोई यत्न न करते हुये भी विजयी होती है। सब बातों को अच्छा समझना और उन्हें अधिकाधिक उत्तम कामों में लाते हुये रहना मानों जीवन को बढ़ाना और उसके आदर्श को उच्च करना है। इसका फल यह होता है कि मन उच्च स्थान पर स्थित होगा। मन की हर एक क्रिया आगे को और ऊपर की ओर बढ़ेगी जिससे न केवल उन्नति में सहायता मिलेगी प्रत्युत सारे जीवन को ऊपरी वर्ग मे रखने की प्रवृत्ति पैदा होगी। विचार के ऊपरी वर्ग में रहना मानो स्थायी प्रसन्नता और स्थायी प्रकाश में रहने के बराबर है और इस दशा

में इन नियमों के अनुसार जिनका इससे पूर्ण वर्णन किया जा चुका है अक्षय यौवन स्वभावतः लाभ होगा॥

मन को सदैव ऊपरी कोठे और प्रकाशमय भाग में रहने का अभ्यासी बनाने के लिये आवश्यक है कि विभिन्न बातों पर निर्भर रहने का स्वभाव दूर किया जाये इसका तात्पर्य्य यह है कि बातों को मन के ऊपर कुछ अधिकार न होना चाहिये। मन के सोचने और अनुभव करने का कार्य्य परिस्थितियों पर निर्भर होनी चाहिये। चीज़ें मन पर निर्भर रहने के लिये बनी हैं और जब मन स्वयम् अपने ऊपर निर्भर रहने लगेगा तो ये अपने आपको मन की आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुसार बनालेंगी। जो मन उन की अवस्था से उपेक्षा करके स्वयं अपनी स्थिति निर्णय करे तो वह भी उसकी इच्छानुसार बदलती रहेंगी॥

जब मन परिस्थितियों की चिन्ता न करता हुआ इस बात का निर्णय कर ले कि उस को क्या विचार करना है तो परिस्थितियां स्वयं बदल जायेंगी और मन के उस ख़याल के अनुसार चलने लगेंगी, जिसका अनुसरण करने के लिये वह (अर्थात मन) निश्चय कर चुका है। जब मन बातों से प्रभावित होना बन्द कर देगा तो वह उस के अधीन हो जायेंगी और इस दशा में मन उन्हें जिधर चाहे चला सकता है। इसका फल यह होगा कि मन बिना किसी कोशिश के किसी भी दशा में जो उस के आशय की पूर्त्ति के लिये आवश्यक हो रह सकेगा चाहे वर्तमान परिस्थिति उस के अनुकूल हो या न हो। न केवल यही वरन् परिस्थितियां भी शीघ्र उस दशा के अनुकूल बन जायेंगी और मन को उसके काम में सहायता देने लग जायेंगी, यदि मन बिना प्रभावित हुये अपनी उस दशा में स्थिर रहे॥

जब मन इस प्रकार अपनी हालत पर अधिकार प्राप्त कर लेगा तो वह बराबर ऊपरी और प्रकाशमय भाग में रह सकेगा चाहे बाह्य संसार की बातें विचार और चेतनता को अंधकार ही

में खींचने की क्यों न कोशिश करें। ऊपरी और प्रकाशमय भाग में अप्रभावित रह कर विरुद्ध परिस्थितियों को बदल सकेगा और ज्यों ही वह उसकी ऊपर को उठने वाली क्रिया बल से मिलेगी उसी समय वह मित्र भाव को ग्रहण कर लेगी।

इससे स्पष्ट प्रकट है कि मन को ऊपरी ओर प्रकाश में जीवन व्यतीत करने की ऐसी पूर्ण शिक्षा दी जा सकती है कि दशायें स्वभाव सी बन जायेंगी। इनका फल यह होगा कि बुढ़ापे के बहुत से कारण दूर हो जायेंगे और यौवन को स्थिर रखने वाले कारणों में से अधिकांश को बहुत बड़ी सीमा तक सहायता मिल सकेगी। इन में विशेष उल्लेखनीय उन्नति, बढ़ोतरी इत्यादि हैं और मन को इस बात का दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि बुढ़ापे का उस समय तक शरीर में प्रविष्ट होना असम्भव है जब तक कि उन्नति की शक्ति पूर्णतः प्रगति की अवस्था में रहे।

षोडश अध्याय

उत्तम, सुन्दर, योग तथा महान आत्मा के सदैव साथी होने चाहियें।

जब उत्तमता, रमणीयता इत्यादि को अपना चिर साथी चुना जाये तो आत्मा निस्संदेह एक उत्तम मानसिक अंतरीक्ष में प्रविष्ट होजाती है और अक्षय यौवन प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है। इसका कारण यह है मानसिक अंतरीक्ष पर ही जिस में आत्मा रहती है बहुत बड़ी सीमा तक उन दशाओं का स्वरूप निर्भर है जो शरीर में प्रगट होते हैं। यह उत्तम अंतरीक्ष मन को ऊपर फैलाता और बढ़ाता है और इस प्रकार उन्नति देता है जिसे यौवन से पृथक नहीं किया जा सकता। विरुद्ध इसके जो मानसिक अंतरीक्ष उत्तम न हों और वह इसके विपरीत प्रभाव उत्पन्न करते हैं और बुढ़ापे की अवस्था निस्सन्देह प्रगट होती है।

वह मन जो ध्येय को दृष्टि में रखता हो, बुढ़ापे को भूल जाता है, क्योंकि उस ध्येय के बोध में प्रत्येक चीज़ तरुणाई की नवीनता लिये होती है। हर चीज़ तरुणाई की अवस्था में होती है क्योंकि वह उस के समान बनती है जो नित्य है और जो नित्य है उस में बुढ़ापे की दशायें नहीं रह सकतीं। बुढ़ापे की अवस्थायें अपूर्ण और अस्वाभाविक हैं, इस लिये ध्येय को दृष्टि में रखने की दशा में ऐसी अवस्थायें नहीं रह सकतीं और ध्येय की हालत में रहना मानो चेतना से बुढ़ापे की कल्पना को निकाल देना है।

चेतना से आयु विषयक प्रत्येक विचार को दूर कर देना या बुढ़ापे को बिल्कुल भूल जाना यौवन को स्थायी बनाने का एक आवश्यक सिद्धान्त है, क्योंकि जब मन बुढ़ापे को बिल्कुल भूल जाये तो स्वाभाविक रूप से उसे यौवन और केवल यौवन ही का ध्यान रहेगा। यौवनावस्था का निरन्तर ध्यान रखना मानो अर्द्ध चेतन मन पर यौवन का चित्र अंकित करना है। इससे यह होता है कि अर्द्धचेतन मन उन्नति करता और यौवन की दशायें प्रकट करने लगता है, और हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो हम युवा हैं। जब मन सदैव एक मानसिक ध्येय को दृष्टि में रक्खें और उन्हीं वस्तुओं से उसका सम्बन्ध हो जिन में गुण और योग्यता वर्तमान हो तो मन के सारे तत्व उत्तम कोठरियों को प्रकट करने की प्रवृत्ति दिखलाते हैं और यौवन को स्थायी बनाने के लिये यह दूसरी आवश्यक बात है। यौवन को स्थिर रखने के लिये आवश्यक है कि शरीर के सारे गुणों को स्थायी उन्नति दी जाये किन्तु यह उन्नति उस समय तक सम्भव नहीं जब तक हर चीज़ जिसका वृद्धि के क्रम से सम्बन्ध हो अपने उत्तम गुणों को प्रकट न करती रहे।

वृद्धि के क्रम से तात्पर्य वर्तमान दशा से ऊपर उठना है, मानो यह सब से बड़ी और उत्तम चीज़ को उस से भी बड़ी और उत्तम अवस्था में लाना है, और उत्तम वस्तुओं की वृद्धि के लिये

हमें उत्तम कार्य्य करना चाहिये। हमें अपनी उत्तम अवस्था में रहना और उत्तम गुणों का प्रकाश करना चाहिये।

यौवन को स्थायी बनाने के लिये सारे शरीर का विकास के एक अटूट क्रम में से गुज़रना आवश्यक है और इस विकास को उत्पन्न करने के लिये शरीर का प्रत्येक भाग अपनी उत्तम अवस्था में होना चाहिये, किन्तु कोई वस्तु उस समय तक अपनी उत्तम अवस्था में नहीं हो सकती जब तक कि वह ध्येय को दृष्टि में न रक्खे और अपने मानसिक साथियों के तौर पर उन्हीं चीज़ों को न चुने जो उच्च कोटि की योग्यता रखती हैं। इससे यह बात प्रकट है कि यदि शरीर को तरुण रखना है तो आत्मा को उस आदर्श दशा में रहना चाहिये जहां हर चीज़ सदैव तरुण रहती है, जहां हर चीज़ अस्तित्व की ऐसी उच्च दशा में काम करती रहती है कि अपूर्णता की दशायें बराबर उत्तम होती रहती हैं, और चूंकि बुढ़ापा अपूर्ण होने की एक हालत है इस लिये किसी ऐसे जीवन में इसका रहना असंभव है।

अत्युत्तम अंतरीक्ष में रहना मानो मन को अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा ऊंचा और उत्तम रखना और उस पर बाह्य जगत के प्रभाव न पड़ने देना है। इस लिये मन की वृत्तियां बाह्य परिस्थितयों से नहीं वरन् मन की आन्तारिक अवस्थाओं के उत्तम उद्देश्यों पर निर्भर होंगी और यह बात अक्षय यौवन प्राप्त करने के लिये अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जिस मन ने युवा रहने का निश्चय कर लिया है उसे बुढ़ापे के प्रकट लक्षणों से प्रभावित नहीं होना चाहिये बल्कि अपनी सारी वृत्तियों को उस निश्चय के अनुसार जो वह जवान रहने के विषय में कर चुका है चलाना चाहिये।

जब मन की क्रियाओं पर वाह्य बातों का प्रभाव पड़े और उनके द्वारा उनमें सुधार हो तो न्यूनाधिक उन दशाओं के अनुसार ही मानसिक दशायें पैदा हो जायेंगी जिसका फल यह होगा कि मन अपने ध्येय के अनुकूल न बन सकेगा और इस प्रकार वह

बात जो उसे अभीष्ट थी इसकी प्राप्ति में असफल रहेगा। वाह्य दशाओं का प्रभाव मन पर न पड़ने देने के लिये आवश्यक है कि मन अपने आदर्श से जो बहुत ही उत्तम उच्च और सुन्दर हो बहुत ही निकटस्थ समबंध रखता हो। जब मानसिक दृष्टि ध्येय पर ही जमी रहेगी तो उस पर किसी ऐसी वस्तु का जो इस नियम के अनुसार न हो, प्रभाव न हो सकेगा।

मन पर केवल उन्हीं बातों का प्रभाव हो सकता है जो उसके अन्तरीक्ष में प्रविष्ट हों, इस लिये यदि मन उन प्रभावों से जिनकी उसे आवश्यकता नहीं बिलकुल बचना चाहे तो अपने चारों ओर एक आदर्श आन्तरीक्ष बना लेना चाहिये, जिसमें क्षुद्रता प्रविष्ट होने से इसी प्रकार वञ्चित रहे जैसे प्रकाश में अंधकार विवश रहता है। इस प्रकार का अन्तरीक्ष उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है कि मन उत्तम बातों से सम्बन्ध रक्खे क्योंकि मन के विचार उन्हीं बातों के सदृश होते हैं जिन्हें यह अपने साथी बनावें और मन का अन्तरीक्ष इसके अपने विचार से निर्मित होता है।

मन इस बात में स्वाधीन है कि अपना एक विशेष अन्तरीक्ष उत्पन्न करे और अपने गिर्द एक ऐसे मानसिक जगत की रचना करे जो नितान्त उसके ध्येय के अनुकूल हो और अपनी इस शक्ति से वह इस प्रकार काम लेता है कि अपने विचार के विषय में स्वयम् सोच लेता है। किन्तु साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मन अपने अन्तरीक्ष के अनुसार बनता है। इस लिये यौवन को स्थायी बनाने के क्रम को उन्नति देने के लिये आवश्यक है कि मन एक ऐसे मानसिक अन्तरीक्ष में रहे जिसके भीतर उन्नति की एक तीव्र प्रवृत्ति वर्तमान हो अर्थात् एक ऐसी प्रवृत्ति जो बराबर मनुष्य की सारे शारीरिक व अध्यात्मिक उन्नति के लिये यत्न शील रहे।

जब मन लगातार उत्कर्ष के तत्वों के साथ में रहे तो मनुष्य शरीर के प्रत्येक अंग प्रत्यंग उन्नति करने के लिये अपनी शक्ति को जागृत कर लेते हैं। इस प्रकार मानसिक विकाश पैदा होगा

और शरीर की कोठरियों में उनकी भी जागृति और नव जीवन का संचार होगा। इन कोठरियों की मुर्झाई हुई अवस्था बदल जायेगी और वह अपनी निहित शक्ति को पूर्ण रूप से प्रगट करने लगेंगी। इसका फल यह होगा कि सारे शरीर में से बुढ़ापे के तत्व दूर हो जायेंगे, क्योंकि वे तो केवल उन्हीं कोठरीयों में रह सकते हैं जो मुर्झाई हुई हड्डी की भांति शुष्क और संकुचित दशा में हों।

उत्कर्ष की शक्ति की साथ मन का सम्बन्ध जोड़ना मानो मनुष्य शरीर के प्रत्येक परमाणु में नवजीवन और नवस्फूर्ति का सञ्चार करना है। मनुष्य शरीर का प्रत्येक भाग यत्न करेगा कि उन्नति प्राप्त करे और अपनी परिमित अवस्थाओं से उच्चतर हो सके। इस प्रकार सारे शरीर में नितान्त परिवर्त्तन हो जायेगा बुढ़ापा दूर हो जायेगा और सारी बातें नई बन जायेंगी। जब सारा मनुष्य शरीर ऐसे क्रम में से गुज़र रहा हो तो उसका प्रत्येक भाग लगातार नया होता रहेगा और यदि मन का उत्कर्ष की शक्ति से पूर्ण सम्बन्ध स्थिर रहे तो सारा शरीर बराबर ऐसे क्रम से गुजरता रहेगा।

जब शरीर नया और बड़ा होता जा रहा हो, तो बुढ़ापे की अवस्था पैदा ही नहीं होगी इस लिये जो मनुष्य महत्त्व की दृष्टि से उन्नति कर रहा हो, वह कभी बूढ़ा नहीं होता। महानता में प्रविष्ट होना मानो नवीनता में प्रविष्ट होना है, नवीनता में प्रविष्ट होना मानो नई बातों को प्रकट करना और नई बातों का लगातार प्रकट होना सदैव युवा रहने का अर्थ रखता है।

सौन्दर्य जगत में रहना मन पर सौन्दर्य का अधिकाधिक प्रभाव डालना होता है। इस विचार से शरीर में वह शक्ति पैदा हो सकती है जो शरीर को सुन्दर बनाती है, क्योंकि प्रत्येक विचार जो मन के भीतर बैठा हो, उसके भीतर उन शक्तियों को जागृत करने की प्रवृत्ति होगी जो कि उसके तुल्य हों।

सुन्दर करने वाली शक्ति को जागृत करना मानो शरीर के तमाम तत्वों गुणों और चिन्हों को अधिक सुन्दर बनाना है और जो बात अधिक सुन्दर बने वह अधिक तरुण बनती प्रकट होती है और स्वयम् अपने आप को तरुण अनुभव करती है। शरीर को सुन्दर प्रकट होने के योग्य बनाना मानो उसे युवा प्रकट होने के योग्य बनाना है, जिसका कारण यह है कि मन के भीतर जो सुन्दर बनाने वाला क्रम चलता है उस की रासायनिक क्रियायें यौवनावस्था उत्पन्न करने की प्रवृत्ति रखती हैं।

किन्तु आवश्यक है कि सुन्दर बनाने वाला क्रम अर्द्ध चेतन मन द्वारा उत्पन्न हो और इस क्रम को अर्द्ध चेतन मन में स्थिर करने को लिये आत्मा को सदैव सौन्दर्य जगत के उच्चतम वर्ग में रहना चाहिये।

मनोहर विचारों को सोचना मानो उस शक्ति को जागृत करना है जो हमारे मनों और शरीर में सुंदरता को उन्नति दे सकती हैं, परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि उन विचारों में जान वर्तमान हो और जो शक्ति सौन्दर्य्य को उन्नति देती है वही यौवनावस्था भी उत्पन्न कर देगी। प्रत्येक सौन्दर्यकारी क्रम को जो भीतर से पैदा हो काम में लाना मानों शरीर की तरुणाई को स्थायी बनाना है और जो शरीर रूप रंग और जीवन में अधिक मनोहर बनता जाये वह बूढ़ा नहीं हो सकता। किन्तु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि ईश्वर ने जो सौन्दर्य्य प्रदान किया है उसे ही स्थिर रक्खा जाये। यौवन के गुणों को स्थायी बनाने के लिये सौन्दर्य्य साधन को अधिकाधिक मनोरम बनाना चाहिये, और यह उस दशा में संभव है, जब आत्मा स्थायी रूप से मनोहरता के उत्तम २ वर्गों में उन्नति करती जाये।

जब आत्मा को सौन्दर्य्य का अधिकाधिक बोध होता जाता है तो जीवन की मनोहारिणी दशा अधिकाधिक प्रकट होने लगती है और आन्तरिक भाषा शारीरिक दशा आन्तरिक दशा के

अनुसार होती है। इसलिये शरीर अधिकाधिक सुंदर होता जावेगा जिसका फल यह होगा कि यौवन के गुण स्थिर रह सकेंगे। किन्तु स्मरण रहे कि आत्मा के लिये सौन्दर्य्य की चेतना में उन्नति प्राप्त करना उस समय तक संभव नहीं जब तक कि उक्त मनुष्य का जीवन मनोहर न बन जाये और प्रत्येक मनोहरता की उस अवस्था के अनुसार पैदा हो जिसे हम अपना उच्चतम मानसिक आदर्श समझते हैं॥

सप्तदश अध्याय

सदैव प्यार करना मानो सदैव युवा रहना है।

यौवन को स्थायी बनाने के लिये जीवन का पूर्ण प्रकाशन आवश्यक है और इस प्रकाशन की उन्नति के लिये इस बात की आवश्यकता है कि प्यार की शक्ति स्थायी और दृढ़ हो। यौवन स्थिर रखने के लिये जीवित रहना आवश्यक है और जीवित रहने के लिये अधिक जीवित रहना।

जब जीवन की शक्ति बढ़ने से रुक जावे तो यह कम होने लग जायेगा और जीवन की न्यूनता बुढ़ापे के विशेष कारणों में से एक है। किन्तु इस अवनति को रोकने के लिये केवल इतना आवश्यक है कि सदैव प्यार किया जाये, सारे शरीर को पूर्ण प्रेम की आन्तरिक प्रक्रियायों से परिपूर्ण कर दिया जाये।

प्रेम का प्रभाव न केवल जीवनोन्नति को स्थायी बना सकता है प्रत्युत वास्तविक जीवन की नवीनता को प्रकटित करने की भी प्रवृत्ति रखता है। इसका कारण यह है कि प्रेम की प्रक्रियायें किसी अन्य प्रक्रिया की अपेक्षा मन और शरीर में अधिक निर्माणात्मक शक्ति को जागृति करेंगी और निर्माणात्मक शक्ति के

बल को बढ़ाना मानो पुनः उत्पन्न करने की क्रिया को उन्नति देता है।

वह उत्पादिनी शक्तियां जो प्रेम के प्रभाव से उत्पन्न होती हैं, सदैव आदर्श को जन्म देने की प्रवृत्ति रखती हैं क्योंकि प्रेम की प्रवृत्ति उसी ओर है। इसलिये जब मनुष्य की आत्मा में प्रेम की प्रबलता हो तो उसके भीतर एक तीव्र प्रवृत्ति इस बात की पाई जाती है कि सारा मनुष्य शरीर इस आदर्श के अनुकूल ही तैयार हो। यह तबदीली वैसी ही है जैसे किसी पुरानी चीज़ को नया कर दिया जाय जिसका फल यह होगा कि यौवन के साधन अपने जीवन को स्थायी बना सकेंगे।

सच्चे ग्रहस्थ जीवन व्यतीत करने से यौवन को स्थायी बनाने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है इसलिये नहीं कि रति क्रिया यौवन को स्थायी बना सकती है, वरन इसलिये कि एक सच्चे ग्रहस्थ जीवन में प्रेम के उत्तम गुणों को प्रकट करने का अवसर मिलता है, किन्तु प्रेम का प्रकाश स्वयं यौवन की सफ़ाई स्थाई नहीं बनाता। आवश्यक है कि वैज्ञानिक विचारों और कर्मों के दूसरे सिद्धान्तों से भी काम लिया जाये, परन्तु एक दृढ़ उच्च और सदैव उन्नति करने वालों प्रेम का स्वभाव को प्रारंभिक साधनों में गणना की जानी चाहिये।

जिन लोगों को कोई ऐसा साथी नहीं मिला कि जिससे वह वास्तविक ग्रहस्थ का सम्बन्ध पैदा करें उन्हें चाहिये कि अपने प्रेम का प्रकाश एक विश्वव्यापी मैत्री द्वारा करें और उनके शरीर में जितनी उत्पादिनी शक्ति उत्पन्न हों उन्हें योग्यता तथा प्रतिभा के विकास की शक्ति में परिवर्तन करें। इसका अर्थ यह है कि उन्हें अपनी शक्ति को ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि वह मन और उत्तम कोटि के शरीर की अद्भुत शक्तियों को उन्नति दे सकें।

शरीर की उत्पादिनी शक्ति का परिवर्तन करने के लिये आवश्यक है कि जब कभी वह शक्तियां शरीर में प्रबलता से

प्रगट हों तो उत्तम अथवा सूक्ष्म शक्तियों पर ध्यान दिया जाये। यह सूक्ष्म शक्तियां शरीर के प्रत्येक भाग में बसी हुई होती हैं और शरीर के सूक्ष्म भाग द्वारा अपना प्रभाव दिखलाती हैं। जब इन सूक्ष्म शक्तियों पर ध्यान आकर्षित किया जाये और मनुष्य शरीर की तमाम उत्पादिनी शक्ति को सूक्ष्म शक्ति के संघर्ष में लाने की इच्छा पैदा हो तो इससे उत्पादिनी शक्ति की गति बदल जायेगी और वह सूक्ष्म शक्ति के मैदान में काम करने लगेगी।

जब उत्पादिनी शक्ति सूक्ष्म शक्ति के मैदान में काम करने लगेगी तो मनुष्य की उत्पादिनी शक्ति अपने आपको शरीर और मस्तिष्क की हर कोठरी में प्रकट करने लगेगी और मस्तिष्क व शरीर दोनों की उन्नति को बहुत कुछ सहायता मिल सकेगी। इसका फल यह होगा कि जो शक्ति केवल उत्पादिनी इच्छा को स्थायी बना रही थी वह मनुष्य शरीर की प्रत्येक चीज़ को दोबारा पैदा करने के काम में भाग लगी।

उत्पादिनी शक्ति द्वारा शरीर का पुनःनिर्माण कराने के लिये आवश्यक है कि इन शक्तियों की प्रगति सूक्ष्म की जाये क्योंकि जब तक कोई शक्ति सूक्ष्म न हो उसे किसी नव उत्पादक मार्ग पर नहीं डाला जा सकता। विदित रहे कि सूक्ष्म होने का तात्पर्य यहां पर उस शक्ति को उसकी वास्तविक उत्पादिनी दशा में आने से है। समस्त उत्पादिनी शक्ति वास्तविक उत्पादिनी अवस्था से उत्पन्न होती है। इस लिये यह बात सहज ही समझी जा सकती है कि उन्हें किसी और प्रकार के उत्पादक कार्य में लगाने से पूर्व उन्हें उसी अवस्था में लाना किस लिये आवश्यक है।

व्यस्त उत्पादिनी शक्ति को उसकी वास्तविक अवस्था में पहुंचा देने को कायापलट कहते हैं, और इस की विधि यह है कि व्यस्त उत्पादिनी शक्ति को सूक्ष्म शक्ति के मैदान में वापिस खींच लिया जावे। जब ऐसा हो गया तो नई शक्तियां इच्छा की आज्ञा पालन करेंगी अर्थात् समस्त परिवर्तित शक्ति वह करने

लग जावेगी जो उस समय मन करवाना चाहे, यद्यपि इस में संदेह नहीं कि इस इच्छा का तीव्र और दृढ़ होना आवश्यक है।

जब मनुष्य शरीर की उत्पादिनी शक्ति की कायापलट हो चुके तो मन अपनी दृढ़ इच्छा द्वारा इस शक्ति से शरीर का पुनः निर्माण कर सकता है। इस प्रकार उत्पादिनी शक्ति को इस बात की शिक्षा दी जा सकती है कि वह सदैव नवीकरण नियम के साथ मिलकर काम करे। और परिवर्तित शक्तियां सदैव शारीरिक शक्ति से सूक्ष्म होती हैं। इस लिये न केवल शरीर सदैव नया होता रहेगा प्रत्युत जब २ नया होता रहेगा वह अधिकाधिक सूक्ष्म, उन्नतिशील और उत्तम होता जावेगा।

अटूट प्रबल प्रेम की क्रियायें उन तमाम उत्पादिनी शक्तियों को जो शरीर में निहित हैं जागृति देती हैं तथा काया पलट के क्रम द्वारा इन शक्तियों को मनुष्य शरीर के किसी ऐसे भाग पर डाला जा सकता है जहां उत्तम उन्नति की इच्छा हो। हां यह बात आवश्यक है कि इन शक्तियों पर शासन करने की इच्छा अधिक प्रबल हो और वह श्रेष्ठ उन्नति को अपना ध्येय समझें। जब तक कि यह शक्तियां शरीर का पुनः निर्माण और तयार करने और उसमें सुक्ष्मता पैदा करने का कार्य करती रहेंगी बुढ़ापे का आना असंवभ है।

प्रेम शक्ति से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि प्रेम विश्वव्यापी हो। इसका तात्पर्य यह है कि हम हर चीज़ से और हर मनुष्य से उत्तम रूप से उदारता के साथ प्यार करें किन्तु इस पूर्ण प्रेम को प्रकट करने में ध्यान केवल तत्व की ओर देना चाहिये। वास्तविक प्रेम दोषों की उपेक्षा करता है। यह अपना ध्यान केवल उस महत्व और दैवत्व पर ही देती है जो हर वस्तु के तत्व में होते हैं और यह प्रेम जिस वस्तु की ओर ध्यान देता है उससे प्यार भी करता है। ऐसे प्रेम को जो मन और आत्मा के अन्दर पूर्ण रूप से हो जागृत करना सम्भव है।

बड़ा मन सदैव अधिक प्यार करता है। वास्तव में कोई मन उस समय तक बड़ा नहीं हो सकता जब तक कि वह अधिक प्यार न करता हो। प्रेम की शक्ति ही गुरुत्व की शक्तियों को जागृत करती है और शक्तियां प्रेम की महत्ता के विचार से स्वयम् प्रेम प्राप्त करती हैं। इसलिये महत्ता की शक्ति को बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि अधिक प्यार किया जाये। किन्तु कोई मन उस समय तक अधिक प्यार नहीं कर सकता जब तक कि वह हर चीज़ से प्यार न करने लग जाये और कोई मन उस समय तक हर चीज़ से प्यार नहीं कर सकता जब तक कि वह अध्यात्मिक प्रेम के वर्ग तक न पहुंच जाये॥

हर चीज़ से अध्यात्मिक प्रेम करना मानों हर चीज़ के उत्तम गुणों से प्रेम करना है क्योंकि आत्मा सदैव हर चीज़ को पहिचान लेती है। हर चीज़ के उत्तम गुणों से प्रेम करना मानों अपने स्वभाव के उत्तमांश को प्रकट करना है, और हमारे अन्दर जो बातें हैं उनमें से उत्तम २ बातों को प्रकट करना मानो पुरानी हालत से निकल कर नई में प्रविष्ट होना है। सदैव नई हालत में प्रविष्ट होते रहना मानो सदैव यौवन आवस्था में रहना है और जब हम हमेशा प्यार करते रहें तो हम सदैव यौवनावस्था में रहते हैं॥

श्रेष्ट अध्यात्मिक प्रेम के विकास को उन्नति देने के लिये व्यक्तिगत प्रेम के किसी पहलू को कम करना नहीं पड़ता। हर एक प्रेम अपने वर्ग में सच्चे प्रेम का दर्जा रखता है, किन्तु हर प्रकार का प्रेम प्रकट करना आवश्यक है और इसके भीतर वह तीव्र व कोमल भावना होनी चाहिये जिसे केवल आत्मा ही जीवन में जागृत कर सकती है। प्रेम की शक्ति पूर्ण रुप से हर रास्ते से प्रकट करनी चाहिये, किन्तु इसकी प्रकृति हमेशा ऊपर की ओर होनी चाहिये। प्रेम की आंखें मनोहर, मानसिक उद्देश्य के अनुसार और किसी ओर लगी रहनी चाहियें अर्थात उन बातों की ओर जो किसी मनुष्य के उत्तम स्वभाव में पाई जा सकती हैं। जब हम मनुष्यों और वस्तुओं से प्रेम करें तो हमें उन पुरुषों या वस्तुओं के

उत्तम मानसिक उद्देश्य से प्रेम करना चाहिये। आवश्यक है कि मन अपना ध्यान उन उच्च आदर्शों पर रक्खे जिनका यथाशक्ति अनुमान कर सकते हैं। प्रेम का उद्देश्य श्रेष्ठ और सच्चा होना चाहिये॥

जब प्रेम उस प्रकार प्यार करता है जिस प्रकार प्यार करने के लिये इस का जन्म हुआ है तो प्रकट है कि यौवन सदैव स्थिर रहेगा, क्योंकि जब प्रेम की अग्नि सदैव श्वेत ताप की अवस्था में पहुंचती रहे तो वृद्धता, निर्बलता, अपूर्णता, रोग, अपवित्रता इत्यादि सब उसमें कूड़े कर्कट की भांति भस्म हो जाते हैं और हर मनुष्य का शरीर वैसा ही स्वच्छ हो जाता है और वैसा ही तरुण और बलयुक्त दिखलाई देता है जैसे किसी पवित्र और मन को प्रसन्न करने वाले बच्चे के प्रेम की शक्ति प्रत्येक ऐसी वस्तु को भस्म कर देती है जो प्रेम की भांति शुद्ध न हो और यही शक्ति हर एक को अपरिमित जीवन दे देती है क्योंकि प्रेम हर एक जीवन की जान है॥

जब किसी मनुष्य का शरीर निर्मल और स्वच्छ हो और उसमें जीवन की पूर्ण शक्ति रूप से भरी हो तो यौवन के तत्व उसके शरीर में अधिकाधिक बढ़ने लगते हैं जिससे सिद्ध होता है, कि सदैव प्रेम करना मानो सदैव युवा रहना है।

अष्टदश अध्याय

ऐसा जीवन क्योंकर व्यतीत किया जाये जिससे यौवन सदैव स्थिर रहे।

ऐसा जीवन व्यतीत करने के लिये जिससे यौवन सदैव स्थिर रहे, पहली आवश्यक बात यह है कि हम हर रोज़ पुराने को उतारते रहें जिसका आशय यह है कि हर एक ऐसी चीज़ को शरीर से निकाल दिया जाये जो अपना कर्तव्य पालन कर चुकी

हो। किसी ऐसी चीज़ को जो अपना कर्तव्य पालन कर चुकी हो, अपने शरीर के अंदर रखना मानो बुढ़ापा लाने की प्रवृत्ति उत्पन्न करना है क्योंकि व्यर्थ मल के एकत्र होते जाने से नवीकरण रूप की प्रवृत्ति रुक जावेगी।

वह वस्तु जो अपना कर्तव्य पालन कर चुकी हो, चाहे वह शारीरिक अंश हो या मानसिक दशा या विचार उसे पुनः कार्य्य में नहीं लाया जा सकता और वह वस्तु जो किसी काम की न हो वह शरीर में रुकावट पैदा करती है जिससे स्वाभाविक क्रिया में बाधा पहुंचती है। मन या शरीर में व्यर्थ मल के एकत्र हो जाने से अस्थि जैसी कठोरता उत्पन्न होने की क्रिया आरंभ होगी, क्योंकि जो चीज़ सेवन में न हो वह जीवित नहीं होती और मृत होने की दशा में जिस कोठरी से उसका सम्बन्ध होता है उसे वह मुर्झाती सुखाती और कठोर बना देती है। प्रति दिन पुरानी बातों की ओर से मरते रहने के लिये मन को आवश्यक है कि अर्द्ध चेतन मन द्वारा बाहर निकालने का क्रम स्थापित करे क्योंकि अर्द्ध चेतन मन ही चीज़ों को पकड़ता और छोड़ता रहता है। हर रोज़ पुरानी बातों की ओर से मरते रहना मानो नई बातों में अधिक जीवित रहना है। इस लिये शरीर में पुरानी और अनावश्यक बातों को निकालते रहने के लिये आवश्यकता केवल इस बात की है कि अर्द्धचेतन मन को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय कि वह सदैव सीधी नई बातों के महान जीवन में प्रविष्ट होता रहे।

हर चीज़ में से निकलने की स्वाभाविक विधि यह है कि उसे फोड़ कर बाहर निकल आया जाये और पुरानी चीज़ों को फोड़ कर बाहिर नई चीज़ में प्रविष्ट होना मानो बिना प्रयत्न के पुरानी चीज़ों को अलग करते जाना है। पुरानी चीज़ों को निकालने का प्रयत्न करना मानो उस का सामना करना है और जिस चीज़ का सामना करते जावें वह अवश्य हमारे पास रहती है। जब हम अधिक बड़ी उत्तम और पूर्ण चीज़ों की ओर पूर्ण ध्यान दें तो घटिया और अपूर्ण चीज़ें स्वयम दूर हो जाती हैं।

प्रति दिन अर्द्धचेतन मन पर बड़े होकर नयी अवस्था में प्रविष्ट होने की दृढ़ इच्छा उत्पन्न करने से शरीर के भीतर इस बात की प्रवृत्ति पैदा होती जायेगी कि वह हर ऐसी चीज़ से जो अपना कर्त्तव्य पालन कर चुकी हो निकल कर उस नवीन चीज़ में प्रविष्ट हो जिसे हम अपने महान उद्देश्य को उन्नति देने के कार्य में ला सकते हैं। अर्द्धचेतन मन का यह अनुभव ऐसा गहरा होना चाहिये कि शरीर के अंणु २ में यही इच्छा बसी हुई हो कि केवल उस चीज़ को रक्खा जाये जो इस समय वास्तविक काम की है।

हर रोज़ मरना मानों एक स्थायी नवजीवन दाता क्रम में से गुज़रना है, क्योंकि मरने से वास्तविक तात्पर्य यह है कि व्यर्थ मलों को फेंक दिया जाये और जो चीज़ें मानव उन्नति के विषय में स्थायी मूल्य रखती हैं उन्हें जीवन और कर्म के उत्तम वर्गों में बदल दिया जाये और जब तक शरीर में नवीन रूप से उत्पत्ति का क्रम जारी है यौवन के तत्व स्थाई रहेंगे। नवीन रूप से उत्पत्ति का क्रम एक नवीकरण क्रिया है जो मनुष्य को इस योग्य बनाती है कि वह अपने आपको शरीर की उत्तम अवस्थाओं के अनुसार तैयार कर सके। इस लिये जब तक नये सिरे से उत्पत्ति का क्रम जारी है बूढ़ा होना असंभव है।

ऐसा जीवन व्यतीत करने के लिये जो यौवन को स्थायी बनाये, पहली आवश्यकता यह है कि उस चीज़ को जो अपना कार्य समाप्त कर चुकी हो, बाहर निकाल दिया जाये और दूसरा यह कि हम उसमें दाखिल हों जो हमारे उद्देश्य की पूर्ति कर सके। तात्पर्य यह है कि प्रथम तो प्रतिदिन घटिया जीवन की ओर से मरा जाये और दूसरे हर रोज़ उत्तम जीवन में अधिकाधिक जीवित रहा जाये इन दोनों साधनों से एक साथ और बराबर काम लेना चाहिये क्योंकि वे एक दूसरे पर निर्भर हैं॥

प्रति दिन अधिकाधिक जीवन में प्रविष्ट होने के लिये आवश्यक है की जीवन की आन्तरिक चेतनता को बढ़ाया जाये जिसकी विधि यह है कि जीवन की अत्युत्तम लहरों की सारे

जिनका चित्र हम अपने हृदय में खींच सकते हैं बहुधा ध्यान देना है। जब हम अधिक जीवन को अनुभव करने का यत्न करें तो आन्तरिक चेतन वर्ग के जानदार तत्व पर ध्यान आकर्षित होना चाहिये और जब यह तत्व किसी सीमा तक प्राप्त हो जाये तो उस जीवित तत्व की आत्मा की ओर ध्यान देना चाहिये। यह क्रिया चेतनता को जीवन की गहराई तक पहुंचा सकेगी और जीवन की आन्तरिक चेतना स्थायी रूप से बढ़ती रहेगी॥

जीवन की चेतनता को उन्नति देना मानो जीवन की शक्ति और उत्तेजना को उन्नति देना है। इस प्रकार मनुष्य का शरीर दिन प्रति दिन अधिक जानदार होता जायेगा और जब तक सजीवता बढ़ती जाये बुढ़ापे के लक्षण शरीर में प्रविष्ट नहीं हो सकते। जीवन की अवनति ही से बुढ़ापा और मौत आती है, इसलिये, जब तक जीवन उन्नति पर है मनुष्य का यौवन अवश्य ही स्थिर रहेगा॥

ऐसा जीवन व्यतीत करने के लिये जो यौवन को स्थायी बनाये आवश्यक है कि जीवन की ओर मानसिक प्रवृत्ति पूर्ण रूप से जीवन के उद्देश्य के अनुकूल हो। इसका आशय यह है कि हमें जीवन को एक ऐसी शक्ति समझना चाहिये जो स्वाभाविक रूप से जीवित रहने वाले को अधिकाधिक जीवन में ले जाती है। जीवन बोझ नहीं बल्कि एक शक्ति है जो तमाम बोझों को दूर करती है और पूर्ण स्वतंत्रता दिलाती है। जीवन को बोझ समझना मानो शरीर में चिन्तायुक्त अवस्था पैदा करना है और ऐसी दशा में बुढ़ापा अवश्य पैदा होता है। ऐसे विचार से जीवन की उन्नति करने की राह में भी रुकावट पैदा होती है, जब कि यह यौवन को स्थायी बनाने के लिये बहुत आवश्यक है॥

जीवन की ओर उचित मानसिक प्रवृत्ति रखना मानों जीवन को एक ऐसी वस्तु समझना है जो जितनी अधिक जीती है उतनी ही अधिक देर जीवित रहती है। उचित जीवन व्यतीत करना मानो अधिक जीवन व्यतीत करना है। अधिक जीवन व्यतीत करना

मानो जीवन की शक्ति मूल्य और आनंद को बढ़ाना है और जब यह बातें उन्नति पर हों तो यौवन को स्थायी रखने की प्रवृत्ति भी उन्नति पर रहेगी ॥

अधिक जीवित रहने के लिये आवश्यक है कि न केवल जीवन बल्कि हर एक जानदार वस्तु से अधिक अनुराग रक्खा जाये। जीवन से पूरा अनुराग रखने का अर्थ यह है कि मानसिक रूप से जीवन के साथ रहें और जितने अधिक निकट हम जीवन के साथ रहें उतना ही अधिक जीवन हमें प्राप्त होगा। जीवन से पूरा अनुराग रखना मानो अधिकाधिक जीवन में उन्नति करना है क्योंकि गहरे अनुराग का स्वभाव उस वस्तु के विस्तीर्ण क्षेत्र में अधिक बढ़ता है जिस पर अनुराग केन्द्रित हो। इस प्रकार जीवन से पूर्ण अनुराग रखने से जीवन के प्रमाण और शक्ति में सदैव उन्नति होती रहेगी और जब इस प्रकार जीवन व्यतीत किया जाता हो यौवनावस्था कभी दूर न होगी ॥

जीवन से ऐसा अनुराग रखना कि हर एक परमाणु में जीवन की आत्मा समझा जाये मानों जीवन की शक्ति को स्थायी उन्नति देना है। इस उन्नति का फल यह होता है कि शरीर के किसी भाग में जीवन की न्यूनता नहीं होती। इस प्रकार सदैव जीवन की अधिकता रहेगी और बुढ़ापे के लक्षण उस जगह दाखिल नहीं हो सकते जहां जीवन की अधिकता हो, जिस प्रकार अंधकार उस जगह प्रवेश नहीं कर सकता जहां कि प्रकाश की अधिकता हो ॥

जितना अधिक हम जीवित रहने का यत्न करें उतना ही अधिक जीवन हमें व्यतीत करने को मिलेगा। प्राप्ति सदैव मांग के अनुसार होती है और यदि अपरिमित जीवन का सामना अपरिमित जीवन की एक दृढ़ और अनिवार्य इच्छा के साथ किया जाय तो अधिक जीवन के लिये वास्तविक मांग पैदा हो जायेगी। इस दशा में आवश्यक मात्रा में प्राप्ति का भी अवश्य ही प्रबंध हो जायेगा ॥

इस बात को अनुभव करना कि जीवन एक शक्ति है जो हमें अधिक बड़ी चीज़ों और उंचाई की ओर आगे २ ले जावेगी मानों उस शक्ति की आत्मा के भीतर प्रविष्ट होना है और इस दशा ही में जब कि हम जीवन की आत्मा में प्रविष्ट होते हैं हम अधिक और अधिक जीवन की आन्तरिक चेतनता में प्रविष्ट होते हैं। इस प्रकार हमें ऐसा जीवन प्राप्त होता है जो सदैव बढ़ता रहता है और यह अवश्य ही यौवन को स्थायी बनावेगा।

आयु का विचार न रखते हुये क्रियात्मक दैनिक जीवन में यौवन के जीवन को व्यतीत करने के लिये मनुष्य का चालचलन उसके अपने शरीर की वर्तमान अवस्था पर निर्भर होना चाहिये। एक व्यक्ति क्या कार्य्य कर सकता है और क्या नहीं कर सकता, यह इस बात पर निर्भर नहीं कि उसने इस पृथ्वी पर कितने अधिक या कम साल व्यतीत किये हैं। वस्तुतः यह वर्षों का प्रश्न ही नहीं बल्कि इस बात का प्रश्न है कि इसके शरीर में बुढ़ापे के चिन्ह वर्तमान हैं या नहीं।

उन व्यक्तियों को जो कार्य्य करने की शक्ति रखते हों इस लिये कार्य्य करने से वञ्चित न करना चाहिये कि वह इतने साल व्यतीत कर चुके हैं जितने कि उनके दूसरे साथी जिन में उस काम के करने की योग्यता न पाई जाती हो। जो आदमी एक सौ साल का हो जाये किन्तु उसमें बुढ़ापे के चिन्ह वर्तमान न हों उसे वही काम करने का अधिकार प्राप्त है जो एक पचीस वर्ष का युवक करने का अधिकार रखता है, क्योंकि जब तक शरीर में बुढ़ापे के चिन्ह वर्तमान न हों उस समय तक शरीर तरुण और बलयुक्त रहता है और वह एक ऐसा काम कर सकता है जो किसी जवान और बलवान शरीर द्वारा किया जा सकता है।

जो लोग योग्य हों वह काम करने के ऐसे ही अधिकारी हैं जैसे कि साधारणतः योग्य पुरुषों को अधिकार हुआ करता है और वर्षों का इससे कोई संबन्ध नहीं। यह सोचना कि जो लोग १ शताब्दी या इससे अधिक समय व्यतीत कर चुके हों वे विशेष २

काम नहीं कर सकते क्योंकि वे बूढ़े हैं, मानों आयु को स्वीकार करना है और जब दूसरों में आयु की हालतों को स्वीकार किया जाये तो उससे स्वयम् हमारे भीतर भी वह अवस्थायें उत्पन्न होती हैं।

इस बात का निर्णय करना कि अमुक मनुष्य क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता बिलकुल उसकी शक्ति और योग्यता पर छोड़ देना चाहिये। यदि किसी ८० वर्ष वाले मनुष्य में एक ३० वर्ष वाले मनुष्य के बराबर शक्ति हो तो जीवन के प्रत्येक वर्ग में प्रथमोक्त को वही पद प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है जो अंतिमोक्त रख सकता है। यदि किसी सौ वर्ष या इस से अधिक आयु के मनुष्य में बुढ़ापे के लक्षण वर्त्तमान हों और वह युवा रह सकता हो तो वस्तुतः अब भी युवा है और एक युवा पुरुष की भांति जीवन व्यतीत कर सकता है। वस्तुतः संसार के लिये वह एक कम आयु के मनुष्य की अपेक्षा अधिक उपयोगी है क्योंकि उसे अधिक अनुभव प्राप्त है।

हमें इस बात को अपने मन पर भली प्रकार अंकित कर लेना चाहिये कि अधिक वर्ष गुज़रने से निर्बलता, बुढ़ापा और निकम्मापन उत्पन्न नहीं होता। केवल बुढ़ापे की दशायें ही शरीर को निर्बल और निकम्मा कर देती हैं और यह दशायें वर्षों के व्यतीत होने से नहीं होतीं कदापि नहीं। वह तो इस प्रकार पैदा होती हैं कि हम मानसिक या शारीरिक अथवा दोनों प्राकृतिक नियम को तोड़ें।

किन्तु जिन लोगों में बुढ़ापे की दशायें उत्पन्न हो चुकी हैं उन्हें यह न समझ लेना चाहियें कि हम वह बात नहीं कर सकते जो वह लोग कर सकते हैं जिन में वह दशायें नहीं होतीं। उचित उपाय यह है कि पहले बुढ़ापे के कारणों को दूर किया जाये और उसके पश्चात जब यह हो गया तो तरुणाई की शक्ति पुनः प्राप्त हो सकती है।

हम तरुणाई का कार्य्य केवल इस अवस्था में कर सकते हैं कि हमारे भीतर जवानी की शक्ति वर्तमान हो किन्तु वह शक्ति उस समय तक हमारे भीतर वर्तमान नहीं हो सकती जब तक हमारे शरीर में बुढ़ापे के लक्षण वर्तमान हों। न बुढ़ापे की दशायें इस प्रकार दूर हो सकती हैं कि हम वह काम करने लग जावें जिन्हें केवल युवक ही कर सकते हैं। हम अपने आपको युवा प्रगट करके यौवन प्राप्त नहीं कर सकते और न यौवन के अनुसार कर्म करके कर सकते हैं। यौवन प्राप्त करने की विधि तो यही है कि बुढ़ापे के कारण दूर कर दिये जायें और प्रत्येक मनुष्य यदि चाहे तो उन कारणों को अपने शरीर में से दूर कर सकता है।

बुढ़ापे की दशायें दूर करना अर्द्ध चेतनता की क्रिया है और इसलिये जवान प्रगट होने या जवानों के से काम करने से कुछ सहायता नहीं मिल सकती। जब आप अपने शरीर से बुढ़ापे के कारणों को दूर कर दें तो बिलकुल ही जवान हो जायेंगे। आप जवान नज़र आयेंगे और बिना प्रयत्न किये जवानों के से काम कर सकेंगे। यौवन की शक्ति भीतर से आती है। सच्चे जीवन की आन्तरिक चेतना में अधिकाधिक प्रविष्ट होने से शक्ति जागृत होती है और जब यह शक्ति किसी मनुष्य में जागृत हो जाये तो बुढ़ापे के कारण बिलकुल लुप्त हो जाते हैं, चाहे वह मनुष्य कितनी ही आयु व्यतीत कर चुका हो॥

उन्नविंश अध्याय

सब बातों में नियम और मर्यादा से काम लेना

शरीर की सब क्रियायों को ठीक अवस्था में रखने के लिये इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि जीवन, विचार और गतिमति में पूर्ण नियम से काम लिया जाये और शरीर की क्रियाओं का सुचारु रूप से संपादित होना जवानी को स्थायी बनाने के

लिये आवश्यक है। अतः सारी बातों में नियम से काम लेना व्यक्तित्व का एक प्रधान अंग होना चाहिये। किन्तु मन को नैयमिकत्व के वर्त्तमान वैयक्तिक विचार के अधीन नहीं कर देना चाहिये॥

जब व्यक्तिगत मन इस विचार से, कि एक २ क्षण तक नियमित होना आवश्यक है प्रभावित हो जाये तो यह बात लगभग असंभव हो जाती है कि वह स्वयं निर्धारित नियम की सीमा से बाहर काम करे और इस प्रकार यह अपनी उन्नति के मार्ग में बाधक होता है। किन्तु जो मन दूसरी सीमा तक जा पहुंचे और सारे नियमों की उपेक्षा करे वह अपने लिये एक ऐसा मानसिक जगत निर्माण कर लेता है जो न केवल अपने भीतर संकीर्णता लिये होता है वरन् जीवन के नियमों और सिद्धान्तों से भी बिलकुल सानुकुलता नहीं रखता॥

नैयमिकत्व के संबन्ध में ठीक मध्यमार्ग खोजने के लिये मन को यह सोचने की शिक्षा देनी चाहिये कि तुम हर बात कर सकते हो, किन्तु शरीर के लिये आवश्यक है वह केवल ऐसे ही काम करे जो उसकी शक्ति में हों और जो कुछ यह करे मर्यादा के साथ करे॥

मन को इस बात की आज्ञा देनी चाहिये कि वह सदैव उन्नति करता रहे, तमाम बंधनों को तोड़ डाले और अपने नियमों पर अधिकार प्राप्त करे, किन्तु जब तक वह अपने लिये एक अधिक बड़े मानसिक जगत की रचना न कर ले वह अपने निर्दिष्ट मार्ग से बाहर पग न रक्खे। जब मन स्थायी रूप से किसी अधिक बड़े जगत में स्थिर हो जाये तो शरीर की योग्यता बढ़ने लगेगी और पुराने नियम अनावश्यक प्रतीत होंगे किन्तु शरीर की योग्यता उस समय तक न बढ़ेगी जब तक कि मानसिक संसार वास्तव में बड़ा न हो जाये॥

जब कोई आदमी केवल यह सोच कर कि जो कुछ मैं करता हूं उससे अधिक कर सकता हूं अपने शरीर को उस महान काम में अर्पण कर दे तो वह असफल रह जाता है, जिसका कारण यह है कि शरीर की क्षमता उसी समय नहीं बढ़ जाती जब हम यह

विचार कर लें कि अधिक कर सकते हैं। यह सच है कि जो आदमी सोचता है कि मैं अमुक काम कर सकता हूं, वह उसे कर सकता है, किन्तु केवल इन अर्थों में कि जो मनुष्य कल्पना करता रहता है कि मैं इस शक्ति को उन्नति कर सकता हूं वही उस काम को कर सकता है॥

ठीक मार्ग जिसे ग्रहण करना चाहिये वह यह है कि अब शरीर की शक्तियों से उनकी योग्यता के अनुसार काम लिया जाये और उसके पश्चात मन को उन्नति दी जाये अर्थात् यह सोचा जाये कि हम अधिक काम कर सकते हैं। मन को उन्नति देते रहने से शरीर की भी उन्नति होती रहेगी किन्तु स्मरण रक्खो कि शारीरिक उन्नति मानसिक उन्नति का फल होती है। यह मानसिक विकास वैज्ञानिक मानसिक उन्नति द्वारा क्रिया में आता है और इस प्रकार उत्पन्न नहीं हो जाता कि हम जितना कर सकते हैं उससे अधिक करने का केवल इसलिये यत्न करें कि हम विचार करते हैं कि ऐसा कर सकते हैं। जब मनुष्य विचार करता है कि मैं अमुक काम कर सकता हूं तो उसके अंदर सोई हुई शक्ति बहुत कुछ जागृत हो जाती है, किन्तु उस शक्ति का उस समय तक व्यक्तिगत कर्म निर्माण में नहीं वर्ता जा सकता जब तक कि उसकी पूर्ण शिक्षा न हो और इस शिक्षा के लिये वैज्ञानिक मानसिक उन्नति आवश्यक है। क्रियात्मक रूप से इस सिद्धान्त से काम लेने की विधि यही है कि इस बात को सोचते रहो कि मैं जो काम चाहूं कर सकता हूं। हां अपने शरीर को उस से अधिक काम करने पर मजबूर न करो जितना कि तुम अनुभव करते हो कि मैं कर सकता हूं। जब मन की उन्नति होगी तो तुम बल और योग्यता की उन्नति अनुभव करोगे और उस समय अधिक मात्रा में काम करने के लिये तैयार रहोगे।

नैयमिकत्व के नियमों का पालन करने के लिये इसी सिद्धान्त से काम लेना चाहिये अर्थात् शरीर जीवन और कर्म दोनों में

नियमानुसार हो और सोचने की विधि भी नियमानुसार हो, किन्तु मन का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह स्थायी रूप से अपनी विधियों और आदतों में उन्नति करता जाये और एक सदैव उन्नति करने वाले जीवन की आवश्यकता के अनुसार नैयमिकत्व की विधियों को बदलता रहे।

मर्यादा के नियम से वैज्ञानिक रीति पर काम लेने के लिये हर मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी वास्तविक योग्यता को समझे क्योंकि मर्यादा स्थिर रखने से उतने ही जीवन या शक्ति से काम लिया जाता है जितना कि शक्ति में हो। जब आदमी उससे जितनी कि उसकी वर्तमान शक्ति है, अधिक काम करने की कोशिश करता है तो मानो वह मर्यादा को अपने हाथ से खोकर अपने शरीर के क्रम में गड़बड़ी पैदा करता है। ऐसे ही यदि वह इतना खाने पीने का यत्न करता है जितना कि वह कर नहीं सकता, या उतना आनंद भोगने का यत्न करता है जितना कि उसमें शक्ति नहीं तो मानो वह मर्यादा नियम को भंग करता है। वह अपने शरीर की क्रियाओं को उन की अंतिम सीमा से परे खींचता है और इसलिये अपने ऊपर विरोधिनी दशायें लाता है।

ऐसी कोई चीज़ नहीं जो वास्तव में बुरी हो और न कोई चीज़ ऐसी है जो इस दशा के अतिरिक्त कि हम उसे अधिक सेवन करते या उसे बहुत अधिकता से करने का यत्न न करें हमें हानि पहुंचा सके। इसलिये जब सब बातों में मर्यादा नियम से काम लिया जाये तो हर काम जो हम करें उपयोगी सिद्ध होगा।

परन्तु मर्यादा नियम का संबन्ध जीवन की केवल उन बातों तक परिमित नहीं जो इस समय कार्य्य रूप में है प्रत्युत उन सब बातों से संबन्ध रखता है जो कार्य्य रूप में आने के लिये उत्पन्न हुई हैं। न कोई काम सीमा से अधिक और न बहुत कम करना चाहिये। किसी शक्ति को बेकार रख छोड़ना मानो जीवन नियम भंग करना है और यह बात बिलकुल वैसी ही है कि उस शक्ति से बेहद काम लें। शरीर के प्रत्येक अंग से काम लेना चाहिये और उस काम लेने की दशा में मर्यादा को न छोड़ना चाहिये।

जब शरीर का कोई भाग मलीन हो तो यद्यपि उसका अस्तित्व होता है तथापि वह जीवित नहीं होता और जो चीज़ जीवित न हो वह अति शीघ्र मुर्झा, शुष्क हो, हड्डी बन नष्टप्राय हो और शरीर के भीतर मृतप्राय बन जाती है। इस तत्व में यह प्रवृत्ति भी होती है कि वह शरीर के उन भागों को जिनसे उसका संब ... र बना देता है, ... ा करने की प्रवृ ...

... ं करते और वह ... ता है। अतः यौव ... र शरीर को पूर्ण ... को पूर्ण रूप से ... ो सकती है कि ... पूर्ण रूप से निय ...

... खने के लिये आ ... ात्मक काम में ... रा संभव हो सक ... म में न लाई जा ... किन्तु उसी प्रक ... क्रिया शक्ति को ... लिये कि जब आ ... श्यक है कि वह ... न भाग पर केवि ... य सूक्ष्माति-सूक्ष ...

... नुसार काम लेने ... ारिक जीवन दोनों पर वैज्ञानिक दृष्टि डाली जाये। आवश्यक है कि प्रत्येक

नियमानुसार हो और सोचने की विधि भी नियमानुसार हो, किन्तु मन का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह स्थायी रूप से अपनी विधियों और आदतों में उन्नति करता जाये और एक सदैव उन्नति
करने मिकत्व की
विधि

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

ने के लिये
हर को समझे
क्यों के से काम
लिय जसे जितनी
कि शिश करता
है त शरीर के
क्रम खाने पीने
का या उतना
आनं के नहीं तो
माने शरीर की
क्रिय र इसलिये
अपने

ौर न कोई
चीज़ धिक सेवन
करते हमें हानि
पहुंच म से काम
लिय ा।

बातों तक
परि य बातों से
संबन हुई हैं। न
कोई चाहिये।
किसी भंग करना
है और यह बात बिलकुल वैसी ही है कि उस शक्ति से बेहद काम लें। शरीर के प्रत्येक अंग से काम लेना चाहिये और उस काम लेने की दशा में मर्यादा को न छोड़ना चाहिये।

जब शरीर का कोई भाग मलीन हो तो यद्यपि उसका अस्तित्व होता है तथापि वह जीवित नहीं होता और जो चीज़ जीवित न हो वह अति शीघ्र मुर्झा, शुष्क हो, हड्डी बन नष्टप्राय हो और शरीर के भीतर मृतप्राय बन जाती है। इस तत्व में यह प्रवृत्ति भी होती है कि वह शरीर के उन भागों को जिनसे उसका संबन्ध होता है मुर्झा देता और अस्थि की भांति कठोर बना देता है, जिसका फल यह होता है कि शरीर में बुढ़ापा पैदा करने की प्रवृत्तियां जड़ पकड़ लेती है।

शरीर के जो भाग मलीन हों वह उन्नति नहीं करते और वह चीज़ जो उन्नति नहीं करती वह पुरानी होती जाती है। अतः यौवन को स्थायी बनाने के लिये आवश्यक है कि सारे शरीर को पूर्ण रूप से सजीव बनाया जाये और इस सारे जीवन को पूर्ण रूप से प्रगट किया जाये, और यह बात इस दशा में पूरी हो सकती है कि शरीर की हर एक शक्ति और क्रिया अपना काम पूर्ण रूप से नियमानुसार करती रहे।

हर एक क्रिया को पूर्ण रीति पर स्वाभाविक रखने के लिये आवश्यक है कि उसकी शक्ति केवल किसी निर्माणात्मक काम में लगाई जाये और यह बात रूपांतर के नियमों द्वारा संभव हो सकती है। जब कोई क्रिया सामान्यतः निर्माणात्मक काम में न लाई जा सके तो उचित है कि उस क्रिया को किसी भिन्न किन्तु उसी प्रकार के काम में लगाया जाये। शरीर की तमाम क्रिया शक्ति को ऐसे पूर्ण रूप से मन के अधिकार में लाने के लिये कि जब आवश्यकता हो रूपान्तर हो सके मन के लिये आवश्यक है कि वह अपना ध्यान शरीर के प्रत्येक अङ्ग के अर्द्ध चेतन भाग पर केन्द्रित करे और इस क्रिया काल में अपने अधीनस्थ सूक्ष्माति-सूक्ष्म शक्तियों को यथाशक्ति कार्य्य में लाये॥

शरीर की प्रत्येक क्रिया से पूरा और नियमानुसार काम लेने के लिये आवश्यक है कि मानसिक और शारीरिक जीवन दोनों पर वैज्ञानिक दृष्टि डाली जाये। आवश्यक है कि प्रत्येक

संस्कार जो मन में प्रविष्ट हो वह मनोरंजक हो। ऐसे हर एक चीज़ जो शरीर के भीतर प्रविष्ट हो मनोरंजक होनी चाहिये किन्तु साथ ही आवश्यक है कि हम किसी बात से संदेह न करें। मनुष्य के लिये किसी विशेष प्रकार का भोजन आवश्यक नहीं न हमें शारीरिक और मानसिक व्यायाम की विशेष भारी विधियों की आवश्यकता है, तथापि इन बातों पर हमें यथा संभव ध्यान देना चाहिये ॥

हर चीज़ खा पी लेना और उसे अच्छा कहना विज्ञान सम्मत नहीं। हम किसी चीज़ के विषय में चाहे कुछ भी कहें तथापि वास्तव बात यह है कि उस के गुणों में इससे कोई अंतर नहीं आता। साथ ही यह बात स्मरण रखने योग्य है कि उन चीज़ों के विषय में हमारा मानसिक प्रभाव बहुत बड़ी सीमा तक उन स्वाभाविक प्रभावों में परिवतन कर देता है जिन्हें वह चीज़ उत्पन्न कर सकती है। साइंटिफ़िक होने के लिये आवश्यक है कि हम भौतिक संसार की उत्तमोत्तम वस्तुओं को चुन करके उनको अपने उत्तम विचार के साथ मिला लें। इस प्रकार हम इस योग्य हो सकेंगे कि जीवन के स्वाभाविक और मानसिक दोनों पहलुओं से उत्तम प्रभाव प्राप्त कर सकें और यही वास्तव में हमारा उद्देश्य है ॥

यदि हम खाने पीने और रहने में असावधानी से काम लें और उसके साथ ही यह चाहें कि इन बातों के अनुचित प्रभाव को विचार की शक्ति से नष्ट कर दें तो यह मानो शक्ति को नष्ट करना है और कोई मनुष्य जिसकी शक्ति नष्ट हो रही हो युवा नहीं रह सकता ॥

यौवन को स्थिर रखने के लिये न केवल इस बात की ही आवश्यकता है कि हमारे भीतर जो शक्ति है उसे स्थिर रक्खें वरन् इस बात की भी कि उस शक्ति को सदैव बढ़ाते रहें और यह बात इस सूरत में आसानी से हो सकती है कि हम साइंटिफ़िक जीवन व्यतीत करें और इस प्रकार रहें कि हम सदैव अधिक जीवित रहते चले जा रहे हैं ॥

यौवन को स्थायी बनाने के लिये आवश्यक है कि शरीर की आवश्यकताओं को पूर्ण किया जाये और इसलिये शर्त है कि मन और शरीर को आहार प्राप्त हो, यद्यपि बहुत अधिक आहार देना भी अनुचित है। सारे शरीर से भली भांति व्यायाम करवाना चाहिये किन्तु इस बात का विचार रहे कि यह व्यायाम कृत्रिम न बन जावे। प्रत्येक प्रकार के व्यायाम में मानसिक अनुराग और नवजीवन पैदा करना इसलिये आवश्यक है कि बिना इसके व्यायाम कृत्रिम बन जाता है और कृत्रिम व्यायाम शरीर को घिसाता है। यह उसे कभी उन्नति नहीं देता। इससे शक्ति बढ़ती नहीं व्यय होती है। इससे कभी लाभ नहीं होता, हां हानि सदैव होती है॥

जिस प्रकार शरीर के लिये एक ताज़ा प्राकृतिक वायु मंडल की आवश्यकता है, वैसे ही मन के लिये ताज़ा मनोमंडल की। निकृष्ट वायु में सांस लेना मानो शरीर के जीवन को निर्बल करना है और जब शरीर की शक्ति घटने लगती है तो यौवन की शक्ति भी घटने लग जाती है। ऐसे गंदे विचारों को सोचने का बुरा प्रभाव पड़ता है। अपरिवर्तनीय, और रुके हुये मनोमंडल में रहना निकम्मापन और बुढ़ापे के संक्षिप्त मार्गों में से एक है तथापि अधिकांश लोग इस प्रकार के मानसिक वायु मंडल में जीवन व्यतीत करते हैं॥

यौवन के गुणों को सदैव स्थिर रखने के लिये आवश्यक है कि हर चीज़ जो किसी रूप रंग में शरीर के काम न आये उसके भीतर यौवन की आत्मा वर्तमान हो अर्थात् वह महान निर्माणात्मक शक्ति से नयी और ताज़ा निकली हुई हो और उसमें मनोरंजक तत्व उत्तम पाया जाये। जब तमाम बातों के उपयोग में मर्यादा नियम से काम लिया जाने लगे तो जिस चीज़ में यौवन के तत्व मौजूद होंगे वह अवश्यमेव यौवन को प्रकट करेगी और इसका फल यह होगा कि मनुष्य सदैव युवा रहेगा॥

विंशति अध्याय

निद्रा जब भली भांति प्राप्त की जाये तो उसमें भी यौवन लाने की शक्ति वर्तमान होती है।

जब मनुष्य का चेतन अस्तित्व सो जाता है तो वह अर्द्ध-चेतन भाग में जा दाखिल होता है और ऐसा काम करने से उसके दो उद्देश्य होते हैं—एक उद्देश्य तो यह होता है कि दिन भर के अनुभवों के फल को मन के घेरे में पहुंचा दिया जाये और दूसरा यह कि नये जीवन की शक्ति प्राप्त करली जाय, जिससे जागृति के समय शरीर को दोबारा भरा जा सके।

अर्द्ध चेतन मनका स्वभाव और क्रियायें कर्म विषयक मन और शरीर की अवस्थाओं को नियत करती हैं और चूंकि हर बात जो अर्द्ध चेतन मन में प्रविष्ट हो वह उसके स्वभाव और कार्यों पर प्रभाव डालती है, इसलिये यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि सचेत अस्तित्व सोते समय अर्द्ध चेतन मन तक केवल उन्हीं बातों को ले जाये जो इस उद्देश्य की उन्नति करें, जिन्हें उस मनुष्य ने दृष्टि में रक्खा हो।

बुढ़ापे की दशायें अर्द्धचेतन मन ही में उत्पन्न होती हैं और यही बात यौवन की दशाओं पर घटती है, किन्तु यह बात कि अर्द्ध चेतन अस्तित्व में कौन २ सी बातें उत्पन्न होती हैं, विशेष कर उन बातों पर निर्भर होती है जिन्हें सोते समय सचेत मन भीतर ले जाता है। इसलिये युवा रहने की कला का निर्भार बहुत बड़ी सीमा तक निद्रा लेने की कला पर है।

जो बात अर्द्धचेतन मन में चली जाये वह वैयाक्तिक स्वभाव का अंग बन जाती है। किन्तु सचेत अस्तित्व सोने से पहले इन बातों को दूर कर सकता है, जो वैयक्तिक स्वास्थ्य यौवन और भलाई के लिये हानिकारक सिद्ध होने वाली हों और

इस प्रकार मानों वह शरीर की भविष्य स्थिति को पूर्ण रूप से अवश्य स्थिर कर सकता है। संक्षेपतः सोने का समय मानों बोने का समय है। उस समय जो जी चाहे बोया जा सकता है और जो कुछ हम बोयेंगे वही काटेंगे।

उचित रूप से निद्रा प्राप्त करने के यह अर्थ हैं कि हमारे अर्द्ध चेतन मन में केवल वही संस्कार विचार और इच्छायें प्रविष्ट हों जिन्हें हम अपने मन या शरीर में उत्पन्न करना चाहते हैं।

भली भांति निद्रा लेना मानों सारे अर्द्ध चेतन मन का एक उत्तम, महान और अधिक पूर्ण मानसिक कल्पना के अनुसार पुनः निर्माण करना है और वह भी मन की एकाग्रता और मीठे आराम की हालत में। एक आनन्द दायक नींद से जागृत होना मानों मन की उस अवस्था की चेतनता में जागृत होना होता है जो अर्द्ध चेतन मन के नवपरिवर्तन हो जाने के पश्चात प्राप्त होती है और अर्द्ध-चेतन मन का नवपरिवर्तन सदैव निद्रावस्था में उस दशा में होता है जब कि हम अपने २ मनको ऊपर के भाग में लेकर सोवें अर्थात् उत्तम विचार हमारे भीतर वर्तमान हों जिनका पीछे वर्णन हुआ।

मनको ऊपरी तह में रख कर सोना मानों अर्द्ध चेतन मन में केवल उन्हीं संस्कारों को प्रविष्ट करना है जो निर्माणात्मक प्रवृति रखते हैं। इसका फल यह होता है कि प्रातःकाल अर्द्ध चेतन मन अपेक्षाकृत गत सायं की अपेक्षा अधिक उत्तम दशा में होता है। इससे यह बात पाई जाती है कि यदि मन प्रति रात्रि को सोते समय ऊपरी भाग में हो तो अर्द्ध चेतन मन चंद मास या चंद साल में केवल इस क्रिया से बहुत कुछ उन्नति प्राप्त कर सकेगा और जो अवस्था अर्द्ध चेतन मन की हो वही सारे शरीर की होती है।

सोने से पहिले मन को ऊपरी भाग में पहुंचाने के लिये आवश्यक है कि कुछ क्षण के लिये सारा ध्यान अपने आदर्श की उच्चतर कल्पना पर केन्द्रित कर लिया जाये और उस दशा में चेतन

मन वास्तव में मस्तिष्क की उच्च स्थिति की उत्तम दशाओं की ओर जायेगा। इस ऊपरी वर्ग में मनको वह सुख तथा अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होगा जो वास्तविक जीवन को इतना मूल्यवान और मनोरंजक बनाता है, और जो बात मन को ऊपरी वर्ग में दिखाई देगी वही अचेतन मन में जाकर अंत में उक्त मनुष्य का स्वभाव बनेगी।

यदि मन निचले वर्ग में सोये तो वह तमाम क्लेश निराशायें भूलें घबराहट की बातें दुर्भाव, भ्रम और व्यग्र विचार जो दिनके समय होते रहते हैं, अर्द्ध चेतन मन में प्रविष्ट हो जायंगे इससे अर्द्ध चेतन मन जो वृक्ष समूह उपजायेगा उसमें बीमारी कठिनाई, निर्धनता, कष्ट, निर्बलता और बुढ़ापा उत्पन्न करने वाले साधनों ही के फल लगेंगे। यदि मन हर रात या क़रीब २ हर रात उसी दशा में सोता रहा तो अर्द्ध चेतन मन धीरे २ अधिक अवनत दशा में गिरता जायेगा, यहां तक कि अन्त में उसकी सारी शक्ति नष्ट हो जावेगी। इसके पश्चात यतः शरीर स्थिर नहीं रह सकता इस लिये बहुत शीघ्र समाप्त हो जायेगा।

इस बात के कि क्यों एक सामान्य पुरुष ३० या ४० वर्ष व्यतीत होने पर अवनतोन्मुख होजाता है भिन्न २ कारण हैं, जिनमें से एक के अतिरिक्त शेष सबका उल्लेख हो चुका है और वह कारण यह है कि अर्द्ध चेतन मन हर साल निर्बल और अधिक घटिया होता जाता है, क्योंकि चेतन मन निचली तह में सोता है सामान्य व्यक्ति के प्रारम्भिक वर्षों में उत्तरदायित्व थोड़ा होता है, किन्तु २५ या ३० वर्ष के पीछे यह उत्तरदायित्व बहुत बढ़ने लगता है, और एक सामान्य कोटि के मनके लिये वह एक बोझ की भांति ज्ञात होता है। मन उन्हीं बोझों को लेकर सो जाता है और उससे अर्द्ध चेतन मन निर्बल हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि शरीर क्या स्वास्थ्य योग्यता और बल के विचार से और क्या उत्साह और जीवन के विचार से अवनतोन्मुख हो जाता है। इस

से बाढ़ रुक जाती है, और बाढ़ रुक गई तो फिर बुढ़ापा आरम्भ हो जाता है।

जीवन के उत्तरदायित्व को बोझ न समझना चाहिये। वह कभी उस समय तक बोझ नहीं प्रतीत होता जब तक कि हम सब चीज़ों से लाभ उठाने के लिये जीवित रहें और यह अवस्था उस समय तक स्थिर रहेगी जब तक अर्द्ध चेतन मन को उन्नति देते रहें। यह काम केवल उसी दशा में हो सकता है कि उन कठिनाइयों, रुकावटों और कष्टों को जो दिन के समय में हमारे सामने आई हों, उन्हें सोने से पहले चेतन ध्यान से निकाल दिया जाय॥

उत्तम कोटि का अर्द्ध चेतन मन तैयार करने के लिये आवश्यक है कि केवल उच्च कोटि की चीज़ों को ही उस में प्रविष्ट होने दिया जाये और यह इस प्रकार हो सकता है कि हम सोते समय अपना ध्यान उत्तम वस्तुओं की उत्तम २ कल्पनाओं पर दें। इसका मतलब यह है कि सोने से पहले थोड़ी देर अर्थात यदि संभव हो तो घंटा दो घंटा मन की ऊपरी तह में प्रविष्ट हो जावें। उस दशा में चेतनता की वही अवस्था हमारे आन्तरिक महान में प्रविष्ट हो जायेगी॥

यदि हम इस रीति पर सोने लगें तो अर्द्धचेतन मन का गुण जीवन और शक्ति में बराबर बढ़ता और संशोधित होता रहेगा। इसका परिणाम यह होगा कि सारा शरीर उन्नति करता रहेगा और जब तक शरीर उन्नति करता रहे वह अवश्य युवा रहता है। किन्तु साधारण रीति पर सो जाना मानो अर्द्धचेतन मन को निर्बलता और हीनता में प्रविष्ट होने देना है, जिसका अवश्यम्भावी परिणाम बुढ़ापा होता है। अधिकांश लोग अपने मन को निचली तह में ही रख कर सोते हैं, किन्तु जब तक कि हम स्वभाव से ऊपरी तह में न सोते हों, यौवन स्थिर रखना संभव नहीं। यौवन को स्थायी बनाने के लिये अर्द्धचेतन जीवन को सदैव उन्नति देते रहना चाहिये।

क्योंकि यौवन को बढ़ाव से पृथक नहीं किया जा सकता और तमाम बढ़ाव और उन्नति का आरंभ उन्नतिकारी अर्द्ध चेतन जीवन में ही होता है। किन्तु मन को निचली तह में लेकर सोना मानो सब कांशस मन में विचार और अनुभव की उन दशाओं को साथ ले जाना है, जो उन्नति में बाधक होती हैं जब कि मन को ऊपरी तह में लेकर सोना मानो अर्द्ध चेतन मन पर केवल उत्तम चित्र अंकित करना है जिनमें निर्माणात्मक शक्ति होती है और यह बड़ी चीज़ों के निर्माण की प्रवृत्ति रखते हैं। इसलिये यह बात प्रगट है कि मन को ऊपरी तह में लेकर सोना उस दशा में नितान्त आवश्यक है कि यौवन के गुणों को स्थिर रखना हो।

जब हम उचित प्रकार से सोयें तो जागने पर नवस्फूर्ति का अनुभव होता है,मन नया और चेतनता उत्साह पूर्ण होती है, शरीर पूर्ण बल प्राप्त कर चुकता है और सारा शरीर बल से भरा हुआ प्रतीत होता है। हम अपने आपको इसलिये युवा अनुभव करते हैं, क्योंकि वास्तव में युवा होते हैं। हमारे भीतर पुनः यौवन के तत्व उत्पन्न हो चुके होते हैं और हमें चाहिये कि दिन का कार्य इस बात को ध्यान में रख कर आरंभ करें कि हमारे भीतर यौवनावस्था की क्षमता गुण और शक्ति वर्तमान है।

जब हम सोने लगें तो हमें अर्द्धचेतन मन में इस विचार को प्रकट रूप से जगा कर प्रविष्ट होना चाहिये कि हम युवा हैं और जागृत होकर उसी विचार को अपने शरीर के अणु २ में हृदयंगम करा देना चाहिये। अर्द्ध चेतन मन में इस विचार को लिये हुये प्रविष्ट होना कि हमारे भीतर योवन की शक्ति वर्तमान है, मानो चेतनता से शरीर को बहुत अधिक परिमाण में वह शक्ति दिलाता है यौवन लाने वाली होती है। इसका फल यह होता है कि शरीर युवा प्रतीत होता है और आयु के विचार के बिना वास्तव में युवा होता है।

दिन को इस विचार के साथ आरंभ करना कि हमारे भीतर यौवनावस्था का बल वर्तमान है मानो दिन भर यौवन लाने वाला

व्यवहार रखना है। इसके पश्चात बहुत शीघ्र यह स्वभाव में दाखिल हो जावेगा और जो आदमी प्रतिदिन इस प्रकार गुज़ारे वह स्थायी रूप से अपने शरीर में यौवन उत्पन्न करता है और इसलिये सदैव युवा रहता है।

निद्रा से यथेष्ट लाभ उठाने के लिये २४ घंटे में से ७-८ घंटे निद्रा में व्यतीत करने चाहियें, किन्तु यह कभी ६ से कम या ९ से अधिक न हो। अपर्यप्त निद्रा लेना मानो अपर्याप्त जीवन प्राप्त करना है क्योंकि जीवन की सारी शक्ति भीतर ही से पैदा होती है और बहुत निद्रा लेना मानो मन को शक्तिहीन बना देता है। ज्यों ही शरीर में नवीन रूप से शक्ति उत्पन्न हो जाये यदि उस शक्ति को निर्म्माण के काम में न लगाया जाये तो काम के लिये उनकी इच्छा स्वयम् होगी और बिना उस काम के अवसर होने के काम की इच्छा करना मानो शक्ति का ह्रास करना है, इसलिये आवश्यक कार्य्य शीघ्र ही प्रातः काल के समय करने चाहियें। इससे काम उत्तम होगा, और जब फिर रात आयेगी तो मन की ऊपरी तह में सोना अपेक्षा कृत सुगम कार्य्य होगा।

एकविंश अध्याय

उत्तम स्वास्थ्य की आवश्यकता और उसे प्राप्त करने की विधि।

शरीर की तरुणाई को सदैव स्थिर रखने के लिये उत्तम स्वास्थ्य एक आवश्यक वस्तु है, किन्तु इस दशा को प्राप्त करना कुछ कठिन नहीं क्योंकि शरीर के भीतर इस प्रकार की शक्ति वर्तमान है, जिसके कारण वह अपने लिये उत्तम स्वास्थ्य पूर्ण रूप से उस समय तक प्राप्त कर सकता है जब तक यह व्यवस्थित रूप में स्थिर रहे।

मनुष्य शरीर के प्रत्येक अणु में स्वास्थ्य का तत्व वर्तमान है और यह लगभग जब कार्य्य में लगा हो सारे परमाणुओं को पूर्ण स्वास्थ्य देने की शक्ति रखता है। इसलिये उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य शरीर में स्वास्थ्य के उन समस्त तत्वों को बराबर काम में लगाये रखना है। यह काम भिन्न २ प्रकार संपन्न किया जा सकता है, परन्तु उनमें एक विधि सर्वोत्तम है।

जब किसी चिकित्सा प्रणाली से शरीर को स्वास्थ्य लाभ होता है, तो उसका कारण यह होता है, कि स्वास्थ्य के वे तत्व जो शरीर में छुपे रहते हैं, इस चिकित्सा प्रणाली से जागृत और उत्तेजित हो जाते हैं। रोग को दूर करने वाली केवल एक शक्ति है और वह शक्ति है जो पहिले से मनुष्य जीवन में सोई पड़ी है। इस शक्ति को जागृत करना मानो रोगी को स्वस्थ करना है और कोई तरीक़ा जिसके द्वारा उस शक्ति को जागृत किया जा सके उसको रोग की चिकित्सा में सफलता से वर्ता जा सकता है।

मनोवांछित फल प्राप्त करने के लिये जो चिकित्सा विधि प्रयोग में लाई जाये उससे केवल रोग का प्रतिकार करने का काम न लेना चाहिये बल्कि इस से प्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य की उस शक्ति में अधिक उत्तेजना उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिये जो मनुष्य के शरीर में वर्तमान होती है। इसको यूनानी में मिज़ाज कहते हैं। मिज़ाज के विषय में लिखा है कि वह स्वयं रोग की चिकित्सा करता रहता है। जब रोगी अवस्थायें शरीर पर अधिकार प्राप्त कर लेती हैं तो स्वास्थ्य की शक्ति के नियमित संचालन में बाधा उपस्थित होती है और यह मनुष्य शरीर में स्वास्थ्य शक्ति के घटने से होती है।

अतः चिकित्सा की एक मात्र वैज्ञानिक विधि स्वास्थ्य को बढ़ाना है। इस विधि से काम लेने के लिये पहली आवश्यक बात यह जानना है कि स्वास्थ्य शक्ति को क्यों घटने दिया गया था और इसका कारण प्रायः विपरीत मानसिक प्रवृत्ति में मिलेगा। शरीर में जीवनीय शक्ति के कम होने का वास्तविक कारण यह

होता है कि बे जाने बूझे अन्धा धुन्ध कार्य्य शक्ति को नष्ट कर दिया जाता है और यह ह्रास सदैव उस चीज़ (रोग) के विषय में उनकी अनुचित प्रवृत्ति से पैदा होता है जिस पर कि शक्ति व्यय की जाये।

जब किसी काम में शक्ति नष्ट हो तो यह समझ लेना चाहिये कि उसका कारण उस काम को उचित रीति से न करना है जिसका अर्थ यह हो सकता है कि उस काम को उचित रीति से ग्रहण न किया गया था। यदि हम काम करते समय यह विचार करें कि वह थकाने वाला और शरीर को जीर्ण करने वाला है तो यह अनुचित धारणा है, जिसका फल यह होता है कि शक्ति नष्ट होती है, किन्तु यदि काम की हर एक क्रिया को उन्नति की क्रिया समझा जाय तो हर एक क्रिया जो काम में व्यय की जाय, उन्नति में सहायता देती है॥

शरीर की क्रियायें वही काम करती हैं जो हम उन्हें करने को कहें। जब हम भली भांति विश्वास कर लें कि कार्य्य शक्ति का ह्रास करता है तो कार्य्य की हर एक क्रिया शक्ति का ह्रास करेगी परन्तु यदि इस उद्देश्य को दृष्टि में रख कर कार्य्य करें कि प्रत्येक क्रिया कार्य में अधिकाधिक शक्ति प्रविष्ट कर सकती है तो उस दशा में काम व्यायाम के बराबर हो जायेगा। ऐसे काम से शक्ति नहीं घटती वरन् विपरीत इसके वह उस शक्ति को प्रस्तुत करता है। यही अवस्था आनंद की है अर्थात आनंद प्राप्त करते समय मन को जिस ढर्रे पर चलाया जावेगा उसके अनुसार शरीर की शक्ति घटती बढ़ती जावेगी। आनंद को केवल व्यक्तिगत तुष्टि का एक साधन समझना और जो आनंद प्राप्त किया जाये, उसे नीचे से नीचे दर्जे तक पहुंचा देना है, किन्तु सुख की आत्मा प्राप्त करने के लिये आनंद में व्यस्त होना मानो मन का सम्बन्ध जीवन के सूक्ष्म तत्वों से स्थिर करना है, जिसका फल यह होता है कि नया जीवन और आनन्द भी अधिक मात्रा में प्राप्त होता है॥

जीवन, क्रिया विचार और रहन सहन के विषय में मानसिक प्रवृति उसी नियम के अनुसार जीवन शक्ति को घटाती

बढ़ाती रहती हैं, इसलिये स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये पहली आवश्यक बात मन को उन दशाओं में लाना है जिनमें शक्ति नष्ट नहीं होती प्रत्युत विपरीत इसके सदैव एकत्रित होती रहती है॥

संग्रह की प्रवृत्तियां सदैव अपरिमित की ओर मुख किये रहती हैं और उनका उद्देश्य सब चीज़ों की आत्मा से संबन्ध रखते हुये काम करना होता है। जब मन हर क्रिया में उस क्रिया की आत्मा तक पहुंचने के लिये प्रविष्ट होता है तो यह ठीक ढंग है, किन्तु उसी अवस्था में जब यह आत्मा के अपरिमित जीवन और शक्ति का खुला मार्ग स्वीकार करती है॥

किसी विचार, नियम या सिद्धान्त की चेतनता पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेना मन को जीवन और क्रिया के सूक्ष्म अनुभव में स्थिर करना होता है और इस कार्य्य को करने की शक्ति बड़ी मूल्यवान होती है क्योंकि सारी स्वाभाविक क्रिया की जड़ क्रिया पर अधिकार प्राप्त कर लेना है। अतः जिस प्रकार की क्रिया उत्पन्न की जाये वैसी ही शारीरिक क्रिया या तबदीली हो सकती है॥

अपनी इच्छा के अनुसार किसी चीज़ में तबदीली पैदा करने के लिये मन को जीवन के सूक्ष्म अनुभवों में लाओ और जो परिवर्तन तुम वास्तव में देखना चाहते हो उसका चित्र अपने मन पर अंकित करो। इस साधारण क्रिया से अर्द्धचेतन मन उस काम को करने पर प्रवृत्त होता है जो तुम उस से करवाना चाहते हो और अर्द्धचेतन मन का ध्यान जिस काम पर दिया जावे वह उसे अवश्य ही करके रहता है॥

स्वास्थ्य लाभ में दूसरी आवश्यक बात स्वास्थ्य की उस शक्ति को अधिक उत्तेजना देना होता है जो शरीर के प्रत्येक भाग में छिपी होती है और इस विषय में पहला पग जो उठाया जाये वह बुद्धि को इस बात का विश्वास दिलाना होता है कि शरीर अपना स्वास्थ्य स्वयम् उत्पन्न करने की शक्ति रखता है। यदि शरीर में इस प्रकार की शक्ति वर्तमान न होती तो केवल शरीर

की पुष्टि प्राप्त कर लेने से शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त कर लेना असंभव होता किन्तु यह बात कि केवल प्रकृति ही नीरोगता प्रदान करती है। पूर्ण रूप से सिद्ध करती है कि प्रकृति को स्वास्थ्य का वास्तविक रहस्य ज्ञात है॥

भिन्न २ चिकित्सा प्रणालियों का महत्व केवल इस बात में पाया जाता है कि वह प्रकृति को अच्छा करने वाली शक्ति को काम में लाने और जागृत करने की शक्ति रखती हों और उनमें सर्वोतम आध्यात्मिक विधि है अर्थात मन व शरीर का मिलाप,मन की शक्ति से चिकित्सा। रासायनिक विधि सदा चीज़ों की आन्तरिक दशा तक नहीं पहुँचती अर्थात उसमें तह तक जाने की शक्ति नहीं होती, किन्तु आध्यात्मिक विधि से जब बुद्धिमानी से काम लिया जाये तो यह तकलीफ़ की जड़ तक पहुँच कर उसे दूर कर सकती है॥

वास्तव में यह बात जानना और मानसिक रूप से अनुभव करना कि मनुष्य शरीर अपना स्वास्थ्य स्वयम् उत्पन्न करने की शक्ति रखता है, मानो इस आध्यात्मिक विधि के लिये मार्ग खोलना है और स्वास्थ्य के सार के विषय में यह आन्तरिक विश्वास प्राप्त करने के लिये आवश्यकता केवल इस बात की है कि प्रकृति और उसकी बलदायिनी शक्ति के विषय में दार्शनिक तर्क किया जाये। किन्तु जो लोग उत्तम स्वास्थ्य रखते हैं वह शांति के समय शरीर के प्रत्येक भाग को स्वास्थ्य के तत्वों से परिपूर्ण देख सकते हैं॥

जब स्वास्थ्य की शक्ति इस प्रकार अनुभव की जाये तो मानो पूर्ण स्वास्थ्य की चेतनता आरंभ हो गई और इस चेतनता को स्थायी रूप से उन्नति देना इसलिये अत्यन्त आवश्यक है कि हम जिस चीज़ के विषय में सचेत हों उसे सदैव पूर्ण रूप से प्रदर्शित करते हैं। अतः पूर्ण स्वास्थ्य की चेतनता को गहरा करना और उन्नति देना स्वास्थ्य को अधिक परिमाण और उत्तम रूप में शरीर द्वारा प्रकट करे॥

जब मन को तार्किक परिणाम या सचेत अनुभव द्वारा इस बात का विश्वास हो जाये कि उत्तम स्वास्थ्य के तत्व शरीर के प्रत्येक भाग में वर्तमान हैं तो तत्व उसके प्रत्येक भाग में उस समय तक स्वास्थ्य पैदा कर सकते हैं, जब तक कि वह संघटित रूप में हों। उस समय स्वास्थ्य के उन तत्वों को पूरी और प्रत्यक्ष क्रिया में रखने का यत्न किया जा सकता है ॥

इसके पश्चात आवश्यक है कि मन पहले शरीर के प्रत्येक भाग में स्वास्थ्य के अस्तित्व को स्वीकार करे। इससे मन की क्रियाओं का संबन्ध उन तत्वों के साथ उस पूर्ण रूप से स्थापित हो जावे कि जब कभी मन चाहे उसकी मांग का उत्तर स्वास्थ्य के तत्व की ओर से दिया जायेगा। आवश्यकता के समय स्वास्थ्य तत्व को अधिक जागृतावस्था लाने के योग्य होना मानो सदैव अपने पास एक ऐसी चिकित्सा रखना है जो अचूक है। स्वास्थ्य के तत्वों की क्रिया में लाने के लिये सब से पहले उन तत्वों का अर्द्धचेतन जीवन पर प्रभाव डालना आवश्यक है, क्योंकि हर एक काम का आरंभ सब कांशस ही से होना उचित है और तत्वों को सब कांशस पर प्रभाव डालने के लिये मन को आवश्यक है कि वह अपना ध्यान स्वास्थ्य की ओर आकर्षित करे और स्वास्थ्य के लिये दृढ़ इच्छा करे। मन की इस क्रिया से जीवन की गहराइयों तक में चेतनता प्रविष्ट होगी और इसका फल यह होगा कि वास्तविक स्वास्थ्य अधिक प्रकट होगा ॥

साधारणतः सब कांशस मन पर स्वास्थ्य का चित्र अंकित कर देना चाहिये और "मैं स्वस्थ हूं" इस कथन को अर्द्ध चेतन विचार की एक सजीव शक्ति बना देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त साधारणतया सब विचार इस नियम के अनुसार होने चाहियें कि मनुष्य शरीर सदैव अच्छी दशा में रहता है। न कभी शब्दों न कभी विचार द्वारा इस महान सचाई का खंडन करना चाहिये कि सच्चा मनुष्य सदैव स्वस्थ है; न मनुष्य को स्वयन इस बात का कभी विचार करना चाहिये कि मैं वास्तविक मनुष्य के अतिरिक्त कुछ और हूं।

सदैव स्वस्थ जीवन और आनंद की चेतनता में रहना मानो अर्द्धचेतन मन में सच्चे स्वास्थ्य की कार्यकारिणी शक्ति को स्थिर करना है और यही हमारा अभीष्ट है। मनुष्य शरीर में निहित स्वास्थ्य बहुत बड़े परिमाण में वर्तमान है। हमें केवल यह करना है कि उस स्वास्थ्य को काम में लायें, किन्तु इसका संबंध अर्द्ध चेतन मन से होना चाहिये अन्यथा यह स्थायी न होगा।

जब सब कोशिस जीवन का स्वास्थ्य अधिक परिमाण में काम में लाया जावेगा तो स्वास्थ्य के विशेष २ तत्व शरीर द्वारा उतने ही अधिक परिमाण में प्रगट होंगे और यदि क्रिया को उन्नति के साथ जारी रक्खा जाये तो शरीर के साधारण स्वास्थ्य में स्थायी उन्नति हो जायेगी और इस प्रकार एक सदैव उन्नति करने वाले जीवन की बढ़ती हुई शक्ति की ओर से जो मांग स्वाभाविक रीति से पैदा हो वह पूरी होती रहेगी।

केवल स्वास्थ्य का उत्तम दशा में होना ही नहीं पर्याप्त है। हमेशा उन्नति करना जीवन का नियम है, और जीवन के साथ एकता व सहानभूति होने के लिये आवश्यक है कि हर बात जीवन के साथ २ उन्नति करे इसलिये स्वास्थ्य की उत्तमता और शक्ति में हमेशा वृद्धि करना आवश्यक है। केवल उत्तम स्वास्थ्य पर ही संतुष्ट होना मानो स्वास्थ्य को नष्ट करने लग जाना है, क्योंकि जो चीज़ आगे की ओर बढ़ने से रुक जाय वह पीछे को हटने लग जाती है। स्वास्थ्य के ह्रास को रोकने के लिये आवश्यक है कि उत्तमोत्तम स्वास्थ्य प्राप्त किया जाये।

जब शरीर के किसी भाग में कोई कष्ट अनुभव हो तो मन को चाहिये कि अपने ध्यान को स्वास्थ्य तत्व के उस भाग पर केन्द्रित करे जहां उस कष्ट का आरंभ हुआ है। किन्तु इस प्रकार ध्यान को केन्द्रित किया जाना बलपूर्वक होना चाहिये क्योंकि इस कार्यशैली से सदैव उस चीज़ में क्रिया पैदा होती है जिस पर ध्यान केन्द्रित किया गया हो। जिस जगह कोई रोग उत्पन्न हो उसके स्वास्थ्य तत्व को गति में लाना मानो उस रोग

को दूर कर देना है। जब बीमारी नई हो तो इस प्रकार शीघ्र ही उसकी पूरी चिकित्सा हो सकती है। पुराने रोग भी चंद सप्ताहों या इससे भी कम समय में दूर हो सकते हैं। कोई रोग असाध्य नहीं। मनुष्य शरीर में किसी रोग की अपेक्षा नीरोगता की शक्ति अधिक है क्योंकि प्रथम स्वाभावानुकूल और अन्तिम स्वाभाव विरुद्ध है। इसलिये अध्यावसाय से काम लिया गया तो अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

स्वास्थ्य के तत्वों को उन भागों में भी अधिक क्रिया में लाना चाहिये जो कि उत्तम स्वास्थ्य की दशा में हो, प्रथम इस लिये कि सारे शरीर में स्वास्थ्य की अधिकता शरीर के प्रत्येक भाग के किसी रोग को दूर करना सुगम कर देगी और दूसरे इसलिये कि हमेशा उत्तम स्वास्थ्य रखने के लिये हमें स्वास्थ्य की उत्तरोत्तर उन्नति करनी चाहिये।

द्विविंश अध्याय

इस बात पर विश्वास रक्खो कि युवा रहना स्वाभाविक बात है!

जीवन का उद्देश्य बराबर उन्नति करना है। जीवन के समस्त नियमों का निर्भार इसी उद्देश्य पर है और जीवन के सारे नियम इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता देने को बने है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में उन्नति करने आगे बढ़ने और उत्तम दर्जा पाने की प्रवृत्ति प्रदान की गई है, इस लिये जो चीज़ इस अटूट उन्नति के मार्ग में बाधक हो, या सतत उन्नति के सानुकूल न हो वह अप्राकृतिक है और जो चीज़ अप्राकृतिक हो वह प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन से पैदा होती है।

मनुष्य शरीर की सतत उन्नति को सहायता देना मानो शरीर के प्रत्येक परमाणु और शक्ति आदि को बराबर उन्नति देना है। इससे क्रिया बढ़ती है अर्थात् वह उत्तम कोटि की क्रिया जिसके कारण मनुष्य के प्रत्येक प्रयत्न से महान फल पैदा होते हैं, किन्तु यह फल उस दशा में प्राप्त नहीं होते कि मनुष्य शरीर को निर्बल और बूढ़ा होने दिया जाये। बूढ़ा होना मानो स्वास्थ्य के विरुद्ध चलना है। इससे तमाम उन्नतियों का नाश होता है और इन परिणामों के महत्व और परिमाण में अंतर आता है जो स्वभावतः जीवन की क्रियाओं से प्राप्त होते हैं। अतः बूढ़ा होना स्वभाविक और जीवन के नियमों के उल्लंघन में सम्मिलित है॥

जीवन के नियमों के अनुकूल होकर कार्य्य करने के लिये आवश्यक है कि मनुष्य स्थायी रूप से आगे की ओर उन्नति करे किन्तु जब वह अपने आपको बूढ़ा होने देता है तो वह आगे की ओर नहीं बढ़ता बल्कि अपने शरीर को नीचे की ओर जाने देता है।

अतः प्रगट होता है कि बुढ़ापा आने का क्रम जीवनोद्देश्य के विरुद्ध है और यह ईश्वर प्रदत्त नहीं। यतः बूढ़ा होना स्वभाव विरुद्ध है, अतः प्रगट है कि जवान रहना प्रकृति के अनुकूल होगा। अतः प्रत्येक मनुष्य जो प्रकृति के अनुकूल रहना चाहता है, उसे केवल इस बात का पूर्ण विश्वास रखना चाहिये कि युवा रहना स्वाभाविक है बल्कि इस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये कि वह सदैव युवा रहे॥

यह बात कि अक्षय यौवन ईश्वर प्रदत्त है उन सब लोगों पर प्रकट हो सकती है जो प्रकृति के वास्तविक जीवन को तलाश करें, किन्तु इसको वही लोग प्राप्त कर सकते हैं जो प्रकृति के अनुकूल रहना चाहें बरन यथाशक्ति इस बात का यत्न करना चाहिये। ईश्वर ने मनुष्य को सतत उन्नति करने की शक्ति दी है और उसे अपरिमित शक्तियां दी हैं जिनके द्वारा ऐसी उन्नति को सहायता दी जा सकती है। इसलिये प्रकृति के सानुकूल रहने के लिये मनुष्य को उस अधिकार से लाभ उठाना चाहिये जो उसे दिया गया है॥

इस विश्वास को दृष्टि में रख कर जीने का कि युवा बने रहना स्वाभाविक है आशय यह है कि समस्त जीवन, विचार और क्रिया का आधार इस विश्वास को बनाया जाये। इसलिये हर बात जो कही या की जाये वह युवा बने रहने के विचार के अनुकूल होनी चाहिये। सानुकूल होने के लिये आवश्यक है कि चंद एक साधारण बातों और विचारों को पूर्णतया बदल दिया जाये। हमें यह न कहना चाहिये कि "मैं इतना बूढ़ा होता जाता हूं" प्रत्युत इसके स्थान में यह कहना चाहिये कि "मेरा जीवन काल बढ़ रहा है।" पहले कथन से मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि बुढ़ापा वास्तव में आ रहा है और ऐसे विचारों से सदैव बुढ़ापा उत्पन्न होने की प्रवृति होती है। दूसरे कथन से आयु की उपेक्षा की जाती है और मन पर दीर्घ जीवन प्राप्त करने का विचार अंकित होता है॥

यौवन के विचार के सानुकूल होकर रहने के लिये आवश्यक है कि कभी बुढ़ापे के लिये कुछ एकत्रित करने का विचार न करना चाहिये क्योंकि इससे मन बुढ़ापे के ज़माने की ओर देखता और उसकी आशा करता रहेगा, इसलिये बुढ़ापा पैदा होगा। विरुद्ध इसके हम जो कुछ संग्रह करें वह इसलिये होना चाहिये कि इससे महान भविष्य में काम लिया जा सके। संचय के विचार में रहने से हमारे जीवन की सारी शक्ति हमारे अपने ही संसार में स्थायी उन्नति पैदा करेगी और एक महान भविष्य की ओर बराबर देखते रहने से शक्तियां हमारे लिये एक महान भविष्य उत्पन्न कर सकेंगी॥

ठीक उसी प्रकार आपद काल के लिये कुछ बचाना नितान्त अवैज्ञानिक है। विपद्काल की आशा करना मानो अपने लिये स्वयं विपत्ति पैदा करना है और इस विचार को दृष्टि में रखना कि हमें शायद कोई विशेष आवश्यकता पड़े, मानो अपनी शक्तियों को अधिकाधिक परिमित करना है, यहां तक कि आवश्यक सामान प्रस्तुत करने के विषय में उनकी योग्यता क्रियात्मक रूप से पूर्णतयः रह जाती है॥

वैज्ञानिक रीति पर चलना यह है कि 'वर्तमान' काल में जो कुछ संचय करें वह इसलिये हो कि भविष्य हमारे पास अधिकता से रह सके और इस प्रकार हम इन महान अवसरों से लाभ उठा सकें जोकि उन लोगों को अवश्यक ही प्राप्त होगा जो अधिक समय तक जीवित रहेंगे। ईश्वरमय नियम के अनुकूल बनने के लिये हमें युवा रहने की आशा करनी चाहिये और युवा रहना मानों एक उपयोगी जीवन व्यतीत करना है। इस प्रकार का जीवन स्वभावतः प्रयत्नों के बड़े २ क्षेत्रों में प्रविष्ट होगा, और इन अवसरों से अधिक लाभ उठाने के लिये हम इन चीज़ों को जो वर्तमान दशा में उत्तम हैं जमा करना चाहिये॥

किन्तु हमें वर्त्तमान काल में कंजूसी से काम न लेना चाहिये। जिस वस्तु से अब लाभ उठाया जा सकता है उससे अभी काम लेना चाहिये। कोई ऐसी चीज़ वर्तमान काल में संग्रह न करनी चाहिये जिससे यदि वर्त्तमान दशा में काम लिया जाये तो यह उन्नति का कारण सिद्ध न हो। न हमें वर्त्तमान काल में कोई चीज़ इसलिये बचानी या जमा करनी चाहिये कि भविष्य में हमें आवश्यकता पड़ेगी। यदि हम अपनी शक्ति से वर्त्तमान काल में यथासंभव अधिक लाभ प्राप्त कर सकें तो भविष्य में कोई आवश्यकता न पड़ेगी प्रत्युत भविष्य में बड़े २ अवसर प्राप्त होंगे और हमें नहीं चाहिये कि उन अवसरों के लिये मुहताज रहें॥

इस विश्वास के अनुसार पूर्ण रूप से रहने के लिये कि युवा रहना स्वाभाविक है। मैं "जवान हूंगा" का कथन बार २ मन पर अंकित करना चाहिये। वस्तुतः सारी आयु का इस बयान के अनुसार व्यतीत होना आवश्यक है॥

यौवन के वास्तविक अर्थ में जीवन व्यतीत करना मानो पूरे तौर पर यह जान लेना है कि हम यौवनावस्था में हैं अर्थात हम इस महान सच्चाई से अभिज्ञ हैं कि वास्तविक जीवन सदैव युवा रहता है, तो इस विश्वास के साथ जीवन व्यतीत करना एक स्वभाव सा बन जाता है कि युवा रहना स्वाभाविक है क्योंकि जो

चीज़ वास्तविक है, वही वास्तविक हो सकती है और जो बात स्वभाव सी बन जाये वह अर्द्ध चेतन मन में प्रविष्ट हो जाती है। इस कारण से कि जो दशा अर्द्ध चेतन मन की होती है वही मनुष्य के सारे शरीर की होती है युवा रहना जीवन का एक न पृथक होने योग्य अंग बन जायेगा। इस विश्वास के साथ जीवन व्यतीत करने के लिये कि युवा रहना स्वाभाविक है चेतन मन को जहां तक संभव हो प्रकृति की आत्मा के भीतर प्रविष्ट होने की शिक्षा देना आवश्यक है। संभव है बाह्य दृष्टि से प्रकृति भिन्न २ विचार उपस्थित करे, किन्तु प्रकृति की आत्मा की गहराई में अटूट उन्नति और जवानी के विचार अवश्य ही अंकित होते हैं और हमें अपने विश्वास की नींव को बाह्य कारणों पर नहीं बरन् वास्तविक सचाई पर स्थापित करना चाहिये। जब मनको पूर्ण रूप से इस बात का अनुभव हो जाये कि युवा रहना स्वाभाविक है तो मनुष्य स्वाभाव की शक्तियां यौवन उत्पन्न करना आरंभ करती हैं। उस समय वह स्वभावविरुद्ध पैतृक आदतों का अनुराग छोड़ देती हैं और उस काम को करने लगती हैं जिसके लिये उन्हें उत्पन्न किया गया था। इस दशा में सारा शरीर आयु के झूठे विचार से छुट जाता है और वास्तविक जीवन की रक्षा में आ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जीवनोद्देश्य अर्थात अटूट उन्नति को मनुष्य जीवन में सहायता मिलती हैं और सतत उन्नति का आवश्यक परिणाम अक्षय यौवन होता है॥

आगे को बढ़ना मानो युवा रहना है और क्योंकि आगे को बढ़ना स्वाभाविक है, इसलिये युवा रहना भी स्वाभाविक है। अतः बुढ़ापा उस आदमी के लिये नहीं जो स्थाई उन्नति की दशा में रह कर स्वाभाविक जीवनोद्देश्य को पूरा करे। उसके लिये भविष्य यौवन के एक चमकते चित्र का पद रखना है जो सदैव अधिकाधिक मनोहर और मानसिक सिद्धान्त के अनुसार होता जाता है॥

जीवन—जीवन तत्व—से परिचित होना मानो इस बात को जानना है कि वास्तविक जीवन सदैव युवा रहता है और जो मनुष्य जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करे वह उस प्रकार की

अवस्था ग्रहण कर लेता है। अतः प्रगट है कि जो मनुष्य वास्तविक जीवन निर्वाह करता रहेगा वह उस समय तक जब तक कि जीवित है युवा रहेगा और वास्तविक जीवन स्थायी है॥

त्रिविंश अध्याय

वर्ष गांठ के दिन क्या किया जाये

यह बात महत्व नहीं रखती कि किस मनुष्य ने इस संसार में कितना समय व्यतीत किया है। हां! यह बात बहुत आवश्यक है कि मन को वर्षों के विचार विशेषकर उस विचार के विषय में जो वर्ष गांठ से पैदा होता है, ठीक दशा में रक्खा जाय। सामान्य व्यक्ति के लिये वर्ष गांठ के दिन और बूढ़ा होने का क्रम यह दोनों बातें न पृथक करने योग्य विधि पर होती है। यही कारण है कि वर्ष गांठ के विषय में साधारण विचार बूढ़ा करने वाला होता है, किन्तु तत्व यह है कि वर्षगांठ का बुढ़ापा आने के क्रम से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। इस लिये इस सारे लेख को एक बिलकुल ही भिन्न प्रकाश में देखना चाहिये।

जब कोई व्यक्ति कहे कि (I am so many years old) मैं इतने वर्ष का बूढ़ा हूं तो वास्तव में वह सत्य नहीं बोलता क्यों कि बुढ़ापा एक झूठी दशा है और वर्षों से उत्पन्न नहीं होता। यह एक वैज्ञानिक बात है, कि वर्ष किसी व्यक्ति के भीतर बुढ़ापे की कोई अवस्था उत्पन्न करने के नितान्त अयोग्य होते हैं, इस लिये बुढ़ापे और वर्षगांठ का कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं। वैज्ञानिक रीति पर चलना हो तो मनुष्य को कभी न सोचना चाहिये कि मेरी आयु इतने वर्ष की है क्योंकि ऐसे विचारों से आयुवृद्धि का अवसर मिलता है, किन्तु यद्यपि वर्ष बुढ़ापा उत्पन्न नहीं कर सकते तथापि विचार शक्ति कर सकती है और जो विचार बुढ़ापे की आशा करे वह बुढ़ापे को पैदा भी कर देगा। अतः वर्ष

और बुढ़ापा इन दोनों शब्दों को कभी एक ही शब्द में मिला कर न लिखना चाहिये। यह एक दूसरे का खण्डन करते हैं और इन्हें कभी एक दूसरे के साथ मिलाया नहीं जा सकता।

बुढ़ापे की कल्पना करना ही भूल है, क्योंकि वास्तव में बुढ़ापा कुछ है ही नहीं। वह चीज़ जिसे हम बुढ़ापा कहते हैं, एक भ्रम है और आवश्यक है कि इसे भुला दिया जाय। हां कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि मैं अपने वर्तमान व्यक्तिगत जीवन में इतने साल व्यतीत कर चुका हूं, क्योंकि यह बात सच है कि जितने साल वह व्यतीत कर चुका है उतने साल वह जीवित रहा, परन्तु यह बात असत्य है कि उन वर्षों ने बुढ़ापा उत्पन्न कर दिया है। जब वर्ष गांठ का अवसर आये तो मन पर यह विचार भली भांति अंकित कर देना चाहिये कि उन्नतिकारी जीवन में एक और पग आगे की ओर उठ चुका है। वर्ष गांठ को उन्नति का चिन्ह समझना चाहिये, क्योंकि वास्तव में यह उन्नतिकारी जीवन ही है। जब हम सतत उन्नति का जीवन व्यतीत करें तो हर एक वर्षगांठ के अर्थ यह होंगे कि हम इतने वर्षों वृद्ध नहीं होते प्रत्युत मनोहर जीवन में इतनी उन्नति करते चले जा रहे हैं। और सच्चे वर्षगांठ मनाने की विधि यह है कि उक्त मनुष्य अपने लिये यह बात सिद्ध करले कि मैंने वास्तव में आगे की ओर एक पग उठाया है, जिस का आशय यह हो सकता है कि मैं शारीरिक रूप से शक्तिशाली ऊपरी अवस्था में अधिक युवा, शरीर में पूर्ण, मन की दृष्टि से अधिक चतुर और आत्मिक रूप से अधिक सुन्दर बन गया हूं।

जब अपनी वर्षगांठ मनाने लगो तो यह न समझो कि मेरी आयु एक वर्ष बढ़ गई है या मैं एक साल मृत्यु और क़ब्र के समीप पहुंच गया हूं। ऐसे विचार को हमेशा के लिये दूर कर देना चाहिये वरन् इसके बदले सदैव यह समझना चाहिये कि मैं एक पग उस जीवन के समीप पहुंच गया हूं जो महान्, उच्च, सुन्दर और आदर्श जीवन है और जिसे तुमने उस समय अपनी मानसिक दृष्टि के सामने रक्खा था जब कि तुम्हारी आत्मा तुम पर प्रकाश डाल रही थी।

एक भारी आदर्श ऐसा होता है, जिसे प्रत्येक मनुष्य दृष्टि में रक्खे होता है। इस आदर्श के मार्ग में बहुत सी इच्छाओं की पूर्ति के अतिरिक्त इस बात की भी आवश्यकता है कि बहुत सी कामनाओं की पूर्ति की जाय, बहुत से आदर्शों को प्राप्त किया जाये और बहुत से स्वप्नों को सच करके दिखाया जावे। उन सब बातों के पीछे अंत में वह आदर्श आता है। वास्तविक और उन्नतिकारी जीवन व्यतीत करने के अर्थ यह हैं कि हम एक दूसरे के बाद तमाम आदर्शों को प्राप्त करते हुये इस महान आदर्श की ओर बढ़ते चले जायें यहां तक कि मन की हर एक इच्छा पूरी हो जाये। इस दशा में प्रत्येक वर्षगांठ उस महान पुण्य का चिह्न होगी, जो इससे पहले साल में उक्त मनुष्य ने प्राप्त किया हो।

वर्षगांठ के दिन का उन्नति से संबन्ध समझना मानो प्रत्येक वर्षगांठ को उस रूप में देखना है कि उस में जीवन की संपन्नता का एक बड़ा भाग प्राप्त हो चुका है, और जिस बात की हम आशा करें वही निस्संदेह प्रकट होती है। जब हम अगली वर्षगांठ को इस रूप में देखें कि जिन बातों के लिये हम जीवित रहे और यत्न करते रहे हैं यह उनकी प्राप्ति का वास्तविक साधन है, तो इसका परिणाम यह होता है कि जब वह वर्षगांठ का दिन आता है तो जीवन की सारी शक्तियां हमारी इच्छा की पूर्ति के लिये केन्द्रित होकर कोशिश करती हैं। हर एक वर्षगांठ को नये जीवन का आरम्भ समझना अर्थात् एक ऐसा जीवन कि जिस में पहिले की अपेक्षा अधिक प्राप्ति शक्ति मौजूद हो, मानो जीवन की तमाम शक्तियों को उस काम में व्यय करना है, जिसकी बदौलत यह महान् स्वप्न भी पूरा हो सके। जब वर्षगांठ के विषय में सालों पर भी ध्यान दिया जाये तो सदैव यह कहा करो कि मैं इतने वर्ष का युवक हूं क्योंकि वास्तव में सत्य भी यही है। तुम इतने वर्ष के बूढ़े नहीं हो क्योंकि तुम बूढ़े हो ही नहीं सकते। वास्तविक जीवन में बुढ़ापा सार नहीं रखता, किन्तु तुम इतने वर्ष के युवक इस लिये हो कि तुम इतने वर्ष जीवित रह चुके हो और इन वर्षों में बराबर जवान रहे हो। संभव है तुम्हारे शरीर में बुढ़ापे की

दशायें वर्तमान हों, किन्तु ये तुम से सम्बन्ध नहीं रखती। उन्हें उन वर्षों ने पैदा नहीं किया जो तुम व्यतीत कर चुके हो। वह तो केवल भूलें हैं और वह उस समय अदिष्ट हो जायेंगी जब तुम इस बात का दृढ़ विश्वास कर लोगे कि तुम युवा हो, क्योंकि ईश्वर ने यौवन हर मनुष्य के अधिकार में दे रक्खा है। जब तुम दूसरों के विषय में यह जानना चाहो कि वे कितने साल आयु के व्यतीत कर चुके हैं तो हमेशा यह प्रश्न करो "तुम कितने जवान हो" अथवा तुम कितने साल व्यतीत कर चुके हो किन्तु तुम बुढ़ापे का शब्द भी मुख से उच्चारण न करो। ऐसे विचारों का वैज्ञानिक मन में कोई स्थान नहीं। इस बात को बताने में तुम कभी संकोच न करो कि तुम कितने युवा हो। जब तुम से कहा जावे तो सदैव अपने वर्षों की ठीक संख्या बताया करो, क्योंकि झूठ बोलने से अक्षय यौवन लाभ करने में सहायता नहीं मिलती। जितने वर्ष तुम व्यतीत कर चुके हो उनकी संख्या को छिपाना मानो चेतन मन को आयु से भयभीत बनाना है और आयु से भयभीत होना मानो आयु उत्पन्न करना है।

वैज्ञानिक रीति से यह बात ठीक नहीं कि तुम अपने आपको १८-२२.२७ वर्ष की आयु का बताओ, जब कि तुम उससे दुगुने या तिगुने वर्ष व्यतीत कर चुके हो। इससे तुम बुढ़ापे के क्रम को रोक सकते हो यह विचार ठीक नहीं। इसके अतिरिक्त ऐसी बातें कभी किसी प्रकार सत्य नहीं होतीं और अर्द्ध चेतन मन को किसी असत्य बात से प्रभावित करना मानो उसके भीतर उक्त बात की प्रवृत्ति पैदा करनी है कि वह अचेतनता में असत्य बात को स्वीकार करे जिसका परिणाम यह होता है कि हमसे सहस्रों प्रकार की भूलें हो जाती हैं। किसी मनुष्य के प्रश्नों के उत्तर में इन वर्षों की संख्या बताना, जो तुम व्यतीत कर चुके हो, वैज्ञानिक बात है और उन नियमों के अनुकूल है जो तुम्हारे यौवन को स्थायी बनाने वाले हैं किन्तु तुमसे इस प्रकार का प्रश्न पूछने का अधिकार केवल उन्हीं लोगों को हो सकता है जो तुम्हारे जीवन में व्यक्तिगत

अनुराग रखते हों या जिन्हें कोई न्याय संबन्धी झगड़े का निबटारा करना हो। केवल शंका समाधान करने के लिये इस प्रकार का प्रश्न पूंछना तरुणाई को सहायता नहीं देता, क्योंकि जो लोग समाधान के लिये इस प्रकार का प्रश्न पूंछते हैं वे बुढ़ापे के विचार को दृष्टि में रखते हैं, तरुणाई को नहीं। वे इस प्रकार अपने असंयत स्वभाव के कारण स्वयम अपने ऊपर बुढ़ापा लाते हैं। इन वर्षों की संख्या जो कोई मनुष्य व्यतीत कर चुका हो दूसरे दर्जे का महत्त्व रखती है और उसे ऐसा ही विचार करना चाहिये तथापि किसी मनुष्य को इस विषय में स्वयम् किसी को धोखा देना उचित नहीं। वैज्ञानिक रीति यह है कि तुम्हें अपने वर्षों का गर्व हो और उन वर्षों ने जो पूर्ण जीवन, विस्तीर्ण अनुभव, महान् शक्ति और अधिक बलयुक्त यौवन उत्पन्न किया हो उस पर तुम्हें गर्व हो। और यह परिणाम उस दशा में अधिकाधिक साल व्यतित करने से भी उत्पन्न होते हैं जब हम बराबर उन्नतिकारी जीवन व्यतीत करते हैं। जब प्रत्येक वर्ष को यह समझा जाये कि यह जीवन की शक्ति और प्रसन्नता में वृद्धि करने का अवसर हो तो हर वर्ष अधिक शक्ति, अधिक मान और अधिक प्रसन्नता उत्पन्न करेगा। अधिक वर्ष इन्हीं बातों को अधिक परिमाण में उत्पन्न करेंगे, इसलिये जो वर्ष हम व्यतीत कर चुके हों, उन पर हमें उचित गर्व हो सकता है। हमें इस बात पर उचित गर्व हो सकता है कि हम अधिक समय तक जीवित रहे हैं, क्योंकि जितने समय तक जीवित रहे हैं, बहुत अच्छी तरह रहे हैं। जो मनुष्य वास्तविक जीवन व्यतीत करता है उसको अधिक वर्ष गुजरने पर अधिक बलयुक्त यौवन प्राप्त होता है। वह मानो प्रतिदिन अपूर्ण यौवन से गुज़र कर उत्तम विकास के यौवन में प्रविष्ट होता है। ऐसा मनुष्य सदैव युवा रहता है और हर वर्ष जो गुज़रता है उस के कारण उसे अपने जीवन में अधिक शक्ति अधिक योग्यता और अधिक उन्नत मन प्राप्त होता है। उस के लिये प्रत्येक वर्ष एक ऊपर को ले जाने वाला मार्ग और प्रत्येक वर्षगांठ पहले की अपेक्षा अधिक ऊंचाई पर पहुंचने का लक्षण है।

किसी वस्तु को पुराना या अधिक दिन का कहना अवैज्ञानिक है, क्योंकि जो वस्तु सतत स्वास्थ्य रखती हो वह कभी पुरानी हो नहीं सकती और जिसका कोई स्थायी स्वास्थ्य नहीं उसका वर्णन ही क्या है। मनुष्य जाति के सर्वोत्तम,आविष्कार यथा संगीत, शिल्प, साहित्य और वैज्ञानिक आविष्कार कभी पुराने नहीं हो सकते। उनकी शक्ति अब भी वही है, जैसे उस समय तक थी जब वह प्रथम बार प्रगट हुये थे और यही शक्ति उनके भीतर अनिश्चित पीढ़ी तक स्थिर रहेगी। यह चीज़ अब भी वैसी ही तरुण है जैसे आरंभ में थी। वे वास्तविक जीवन की उत्पत्ति हैं, इसलिये वे स्थायी हैं। यह कहना कि अमुक गीत, अमुक ग्रन्थकार, अमुक गायक, अमुक दार्शनिक अमुक अध्यापक पुराना है यह सब जीवन की एक असत्य कल्पना है। किसी वस्तु को केवल इस आधार पर पुराना कहना या समझना कि वह विगत वर्षों में पहले से मौजूद थी, मानो आयु और वर्षों को समर्थक मानना है, और यही वह विचार है जिसे हमें बिलकुल दूर कर देना चाहिये। काल को अनन्त समझना और यह समझना कि चीज़ जो पहले थी अब है और भविष्य में सदैव रहेगी यही ठीक साइंस का विचार है। जो मनुष्य जीवन को इस रूप में लेता है उसके लिये सब बातें स्थायी हैं और जो वस्तु सदा रहने वाली है कभी पुरानी नहीं हो सकती। अतः मानसिक संसार में चारों ओर यौवन ही का साम्राज्य दिखाई देता है और इसी स्प्रिट में वह रहता है, इसलिये जो जीवन वह व्यतीत करता है वह तरुणाई का जीवन होगा। अतः प्रत्येक वर्षगांठ एक नये दिन की उत्पत्ति का दर्जा रक्खेगी अर्थात् एक ऐसा रमणीक दिन जैसा उसने पहले कभी नहीं देखा है।

चतुर्विंश अध्याय

हम संसार में कितने दिन तक जीवित रह सकते हैं।

बड़ी से बड़ी बात जो कोई मनुष्य कर सकता है वह यह है कि अनन्त वर्तमान काल में सब से महान, सब से उत्तम सब से अधिक प्रसन्न और सब से अधिक उपयोगी जीवन व्यतीत करे। समय का विचार करना विज्ञान-विरुद्ध बात है और संसार में अपने जीवन की कोई अवधि नियत करना मानों जीवन काल को कम करना है। इसकी सर्वोत्तम विधि यह है कि प्रत्येक क्षण हम ऐसी अच्छी प्रकार गुज़ारें कि वह क्षण अपने आप में पूर्ण हो। जो मनुष्य भली भांति अपना जीवन व्यतीत करेगा वह अधिक जीवन व्यतीत करेगा। वास्तव में इस बात का निर्भार कि हम इस पृथिवी पर कितने समय तक रह सकते हैं इस बात पर है कि हम कैसी अच्छी प्रकार रहते हैं। जब तक वर्तमान समय निर्माणात्मक है, उसके भीतर जीवन शक्ति बढ़ती जायेगी और जब तक हम अपने जीवन की वर्तमान दशा को उन्नति दे सकें हम अपने जीवन की वर्तमान दशा में रहते रहेंगे। अच्छी प्रकार रहना मानो अधिक रहने के बराबर है और अधिक रहना अधिक काल तक रहने के। अच्छी प्रकार रहने के लिये इस बात की आवश्यकता है कि सारा ध्यान जीवन पर केन्द्रित किया जाये अर्थात् सब से बड़े सब से उत्तम, सब से लम्बे और सब से पूर्ण जीवन पर जिसका चित्र अपनी कल्पना में खींचना मन के लिये संभव है। मृत्यु की कल्पना कभी चेतनता के भीतर प्रविष्ट न होनी चाहिये। उद्देश्य अब जीवित रहना होना चाहिये और जो मनुष्य वास्तव में अब जीवित रहता है वह अब केवल जीवन की उस विपुलता और मूल्य का ही विचार रखता है जो वह इस जीवन को जिसे वह अब व्यतीत कर रहा है, दे सकता है।

जीवन का उद्देश्य जीवित रहना है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आवश्यक है कि सारा ध्यान जीवन की ओर दिया

जाये। जीवन और मृत्यु दोनों का विचार करना मानों ध्यान को विभक्त कर देना है, जिसका परिणाम यह होता है कि जीवन की शक्ति घट जाती है, जीवन निर्वाह भली भांति नहीं हो सकता। हम जीवन से वह बात प्राप्त करने में असफल रहते हैं जो जीवन हमें दे सकता है। हम हर प्रकार से और हर रूप में वैयक्तिक अस्तित्व की शक्ति को परिमित करते हैं और इस प्रकार इस संसार में जितने दिन हमें रहना है उनमें न्यूनता आ जाती है। मन के ऊपर यह बात अंकित करना कि तुम एक विशेष समय के लिये पृथ्वी पर रहोगे, मानो जीवन शक्ति का ह्रास करना है जिसका परिणाम यह होता है कि जीवन की शक्तियां एक अस्थायी व्यक्तिगत जीवन के लिये प्रयत्नशील होती हैं। ऐसे विचारों से शरीर में बुढ़ापे के साधन भी पैदा होते हैं क्योंकि किसी समय बूढ़े होने की आशा मानो बुढ़ापे के साधनों का विचार करना है, जिससे वे साधन अब पैदा होते हैं।

चाहे हम एक सौ वर्ष तक रहने की आशा करें, चाहे, एक सहस्र वर्ष, फल एक समान होगा। अब कोई समय नियत करना मानो आयु और मृत्यु की आशा करना है और उन वस्तुओं की आशा करना मानो जीवन, शक्ति और विचार को उन वस्तुओं के उत्पन्न करने में व्यय करना है, इसलिये भविष्य काल और मृत्यु का विचार करना अब अपने शरीर के भीतर बुढ़ापा उत्पन्न करने की दशायें उत्पन्न करना है। जो मनुष्य एक सहस्र वर्ष जीवित रहने की आशा करता है वह अपने अर्द्ध चेतन मन में आयु और मृत्यु का वैसा ही विचार करता है जैसे ७० साल जीवित रहने की आशा करने वाला। दोनों ही अपने शरीर में बुढ़ापा लाने वाली दशायें उत्पन्न करते हैं और संभव है कि दोनों बुढ़ापे के कारण लाचार होकर ६० ही वर्ष की आयु में कूच कर जायें।

मन के ऊपर इस विषय में कि हम कितने वर्ष पृथ्वी पर रह सकते हैं किसी समय की सीमा निश्चित करना एक भूल है। वास्तव में मन पर किसी भी प्रकार की सीमा निश्चित करना

जीवन शक्ति को घटाना है और जीवन शक्ति को अब घटाना मानों अभी से वृद्धता और मृत्यु की ओर चल पड़ना है। ठीक मार्ग यह है कि इस बात का विचार ही न किया जाये, कि हम इस संसार में कितने समय तक जीवित रह सकते हैं वरन अब सतत जीवन की चेतनता में जीवन व्यतीत किया जाये।

जीवन का यह उद्देश्य नहीं कि हम किसी स्थान पर कितने समय तक रहें वरन यह है कि कितनी अच्छी प्रकार हर जगह रहें। हमें यहां उस समय तक जीवित रहना है जब तक वह उद्देश्य पूरा न हो जाये जिसके लिये हम यहां आये थे। इस बात का निर्भार कि किसी मनुष्य को इस उद्देश्य की पूर्ति में कितना समय लगेगा, इस बात पर है कि वह जीवित रहता हुआ अपने जीवन को कितनी भांति व्यतीत करता है। इसलिये वह अपने लिये कोई समय नियत नहीं कर सकता। वह केवल यही कर सकता है कि अब इतना दीर्घ जीवन जितना उसके लिये संभव हो व्यतीत करने लगे। जिस उद्देश्य के लिये हम यहां आये हैं, उसे पूर्ण करने के पश्चात् हमारा इस संसार में रहना सतत जीवन के नियमानुकूल नहीं। किसी समय हमें कूच करना है, और ऐसे अन्य भवन में भी रहना आत्मा के भाग्य में लिखा है किन्तु इस बात से कि हमें कब यहां से कूच करना है, अभी हमारा कुछ संबंध नहीं। हमें यहां भविष्य जीवन का विचार करना, उसके लिये रहना, या काम करना नहीं है। हम तो यहां अपनी वर्तमान दशा पर विचार करने, काम करने और उसके लिये रहने को वर्तमान हैं अर्थात् इस लिये कि अपने शरीर की सारी शक्तियों को उस समय में व्यय करें जो हम अब व्यतीत कर रहे हैं।

जब हम इस वर्तमान जीवन के उद्देश्य और संभाव्यताओं की छान बीन करते हैं तो इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि मध्य श्रेणी का मनुष्य जितने समय तक इस पृथ्वी पर रहता है वह इतना कम है कि उसमें इस उद्देश्य का ज़रा सा भाग भी समाप्त नहीं किया जा सकता जिसके लिये वह यहां आया था, तथापि प्रा:

न सोचना चाहिये कि जीवन बहुत छोटा है । यह विचार करना कि जीवन बहुत छोटा है मानो उसे छोटा बनाना है, जब कि यह विचार करना कि जीवन स्थायी है और हम अपरिमित समय से इतना जीवन प्राप्त कर सकते हैं, जितना हम व्यतीत करना चाहें। जीवन को इच्छानुसार दीर्घ और बड़ा बनाते हैं।

एक सामान्य व्यक्ति का जीवन भूलों के कारण घट जाता है जिन में बहुत सी पैतृक रूप से दायभाग में मिली होती हैं, किन्तु वह इन दोषों को दूर कर सकता है और जब वह ऐसा करे तो उसे ज्ञात होगा कि अपने अस्तित्व को महान बनाने के लिये मनुष्य की शक्ति बहुत ही विलक्षण है। केवल एक मास के लिये ही इस सारी शक्ति को स्थिर रक्खा जाये जो शरीर में उत्पन्न होती है तो मनुष्य शारीरिक और मानसिक रूप में इतना बलवान हो जाता है कि मन को यह बात अनुभव होने लगती है कि जो शक्ति स्थिर रक्खी गई है वह मानो बाहर से प्राप्त की गई है। इसलिये यह बात प्रकट है कि यदि कोई व्यक्ति अपनी शक्ति को न केवल स्थिर रखता जाये वरन उसे बढ़ाता जाये तो अपने अस्तित्व को सुदीर्घ काल तक स्थिर रख सकता है॥

किसी संघठित शरीर के भीतर अपने अस्तित्व को स्थायी बनाने की इतनी शक्ति होती है जिस का सामान्य मन ने इस से पहले कभी अनुमान नहीं किया। प्रकृति हर एक शरीर के भीतर एक शक्ति रख देती है जिसके द्वारा वह अपने जीवन को उस समय स्थिर रख सकती है जब तक कि उस जीवन का उद्देश्य पूरा न हो जाये, इसलिये किसी चीज़ का उस समय तक नष्ट हो जाना स्वाभाविक नहीं जब तक कि वह अपने वर्ग में अपने काम को समाप्त न करे। जब कोई चीज़ अपने काम को अपूर्ण छोड़ दे तो जान लो कि किसी प्राकृतिक नियम का उलंघन हुआ है। इसके लिये किसी विशेष व्यक्ति को दोषी नहीं ठहरा सकते क्योंकि क्षतिपूर्ति का अवसर भी मिलेगा किन्तु इस विषय में एक बहुत बड़ी सचाई स्मरण रखने योग्य है और वह यह कि यदि हम

अपने वर्तमान जीवन के उद्देश्य को पूरा करने से विवश रहें तो हमें भविष्य में इस उद्देश्य के लिये काम करना पड़ेगा। यह बात कहां घटित होगी इसका हमारे लेख से कोई संबंध नहीं किन्तु परिमाण में उन्नति प्राप्त करने से पूर्व इसका करना प्रत्येक दशा में आवश्यक है। आवश्यक है कि दूसरा पग उठाने से पूर्व पहला पग उठाया जाये और जो बड़ी बात कोष में वर्तमान है उसे प्राप्त करने से पूर्व छोटी को जो हमारे पास है पूर्ण किया जाय॥

प्रत्येक व्यक्ति को यह बात ठीक प्रतीत होगी कि वर्तमान समय को नष्ट करने से कुछ प्राप्त नहीं होता और कोई बात उस आदमी को इससे अधिक लाभदायक नहीं हो सकती कि वह जीवन को व्यतीत करना जीवन का महान उद्देश्य समझे। यहां हम अकस्मात नहीं आगये हैं। वास्तव में दैवयोग का इस विषय से कोई संबंध नहीं। हम यहां इस लिये आये हैं कि वर्तमान जीवन हमारे लिये हमारे अपने भीतर कोई ऐसी चीज़ रखता है जो अमर अस्तित्व की शोभा को बढ़ाने वाली है। जब हम उस वस्तु को पालेंगे तो उस ऊंचाई पर चढ़ सकेंगे जहां हमारे लिये कोष वर्तमान हैं अर्थात ऐसे कोष जो उन चीज़ों से कई गुना, अधिक मूल्यवान हैं, जिन से हम पहले से अभिज्ञ हैं॥

जीवन का मार्ग अनंत उन्नति का है जो कि सदैव ऊपर को चढ़ता हुआ आत्मा को आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाता है, किन्तु वास्तविक जीवन का प्रताप किसी भविष्य काल तक के लिये स्थगित नहीं है। उन्नतिकारी जीवन हर क्षण में सर्वांग पूर्ण है। जब तक जीवन के परिमाण में उन्नति होती रहे वर्तमान क्षण जो कुछ अपने अधिकार में रख सकता है वह सब प्राप्त होगा और उसी के भीतर हर चीज़ का उत्तम रूप वर्तमान होगा जिसकी मन अब कामना करे।

उन्नतिकारी जीवन व्यतीत करना वर्तमान काल में जीवन की स्थायी उन्नति के लिये रहना है और यह बात आवश्यक है कि भविष्य पर किसी प्रकार का ध्यान न दिया जाये। जो मनुष्य इस

प्रकार का जीवन व्यतीत करता है वह उस समय तक पृथ्वी पर जीवित रहेगा जब तक कि वह उद्देश्य जिसके लिये वह आया था, पूरा न हो जाये, और जब तक वह जीवित रहेगा उसके भीतर यौवन का पूरा बल वर्तमान रहेगा। ऊपर को उठता हुआ जीवन व्यतीत करना मानो जीवन में एक स्थायी उन्नति उत्पन्न करना है, और जब तक कोई मनुष्य अपने जीवन को उन्नति देता रहता है वह न केवल अपने वर्तमान रूप में जीवित रहेगा प्रत्युत वह व्यक्तिगत रूप में युवा भी रहेगा।

हमारा उद्देश्य पृथ्वी पर उस समय तक रहना है जब तक यहां कार्य समाप्त न हो जाये, जब तक हम वह सब बातें प्राप्त न कर लें जो प्राप्त करने योग्य हैं, जब तक हम वह सब कुछ पा न लें जो पाने के योग्य है, जब तक हम वह सब कुछ न कर लें जो करने के योग्य है, जब तक हम वह सब कुछ दे न दें जो यहां दिया जाता है, और जब तक हम उस सर्वोच्च शिखर पर न पहुंच जायें जो यहां पाया जाता है। हमें इस विश्वास पर रहना चाहिये कि हमारे भीतर इतनी जान है कि हम उस समय तक बल यौवन और स्वास्थ्य के साथ रहेंगे जब तक इस निर्दिष्ट स्थान तक न पहुंच जायें। परन्तु हमें कितने समय के वाक्य पर विचार करने के लिये कभी न रुकना चाहिये। "हम इस पृथ्वी पर कितने समय तक रह सकते हैं" हमें इस प्रश्न का उत्तर देने का कभी यत्न न करना चाहिये। यदि हम जीवन का ठीक उपयोग करें तो उस समय तक जीवित रह सकते हैं जब तक यहां रहने योग्य कोई वस्तु यहां वर्तमान है। जब हम वास्तविक रीति पर रहने लगें तो हमें यहां पर इतनी रहने योग्य बातें दृष्टिगोचर होंगी कि यहां से कूच करने का विचार ही दूर हो जावेगा। जब हम अपने वर्तमान जीवन की ऊंचाई पर पहुंच चुकेंगे उस समय (और उस समय से पूर्व नहीं) हम अपना आध्यात्मिक ध्यान दूसरी दुनिया के रास्ते की ओर आकृष्ट करेगा किन्तु एक सचाई इस प्रकार की है जो बहुत शीघ्र उन लोगों को सिद्ध हो जायगी जिन्हों ने जीवन के साथ

सच्चा रहना पसंद किया है, और वह यह है कि हम वर्तमान दशाओं में भी उससे कई गुना अधिक जीवित रह सकते हैं, जितना कि एक सामान्य व्यक्ति जीवित रहता है तथा अपनी दशाओं को उन्नत करके हम उससे भी अधिक जीवित रह सकते और अपने जीवन को दीर्घ बना सकते हैं, या उस समय तक लम्बा कर सकते हैं, जब तक कि हमारा वह काम समाप्त न हो जाये, जिसके लिये हम यहां आये थे और इस सुदीर्घ जीवन से यौवन या प्रसन्नता कभी दूर नहीं हो सकती।

पंचविंश अध्याय

भविष्य काल का एक नया चित्र।

वह जीवन जो नितान्त महान अनंत वर्त्तमान के लिये ही व्यतीत किया जाये उसके लिये अपना पूरा ध्यान वर्त्तमान समय तक ही परिमित करना आवश्यक नहीं। ऐसा जीवन बराबर आगे की ओर बढ़ता रहता है और आगे की ओर बढ़ना, व आगे की ओर देखना भविष्य जीवन का चित्र तैयार करने के बराबर है, और क्योंकि भविष्य जीवन का निर्भार उस चित्र पर है, इसलिये यथार्थ विज्ञान की पूरी शक्ति यदि भविष्य जीवन के चित्र बनाने में व्यय की जायें तो इससे बहुत कुछ लाभ प्राप्त हो सकता है।

जिस बात का चित्र मन के भीतर तैयार हो, उसे जीवन शक्ति पैदा करती है और जीवन में जिस बात की बराबर कामना व आशा रहेगी वह अवश्य ही प्राप्त हो जावेगी; किन्तु सामान्य व्यक्ति आयु क्षीणता व मानसिक ह्रास और ऐसी ही दूसरी बातों की आशा करता है और उसकी आशा के अनुसार यही बातें उसे प्राप्त होती हैं। उसने भविष्य का जो चित्र खींचा है उसमें करीब२ हरएक ऐसी दशा वर्त्तमान हैं, जिससे मनुष्य का जीवन परिवित है, और वह अपने सारे जीवन में इसी गहरी आन्तरिक भावना में रहता है कि उसका भविष्य जीवन उस चित्र के अनुसार होगा।

किन्तु इस प्रकार का विचार स्वभाव और जीवनोद्देश्य के बिलकुल विरुद्ध है । इसलिये जीवन के साथ सच्चा बनने के लिये आवश्यक है कि भविष्य जीवन का नया चित्र तैयार किया जाये ।

यह नया चित्र स्वाभावीक रूप से उस मन के अंदर तैयार हो जायेगा जिसने जीवन की नई कल्पना को स्वीकार कर लिया है, अर्थात उस कल्पना को जो जीवन को सतत उन्नति का मार्ग अटूट उन्नति का अस्तित्व और यह सतत उन्नति की दशा हर ऐसी बात में अंगीकार करता है जिससे मनुष्य के मान भलाई और प्रसन्नता में वृद्धि हो । वास्तव में नई कल्पना क्रियात्मक रूप से हर एक बात को जिसे हम पहले विश्वास करते थे पलट देती है और क्योंकि मनुष्य वैसाही होता है जैसा कि वह सोचता है, इसलिये यह बात स्वाभाविक है कि यह नई कल्पना उसके सन्मुख एक ऐसा भविष्य उपस्थित करे जो क्रियात्मक रूप से उससे बिलकुल उलटा हो जिस की हम उससे पहले और आशा करते रहे हों ।

भविष्य जीवन का चित्र दूसरे आर्थों में आदर्श स्वरुप है, किन्तु वह समस्त आदर्श जो प्रकृति और जीवनोद्देश्य के अनुकूल हो, वास्तव में लाये जा सकते हैं और क्योंकि यह चित्र एक ऐसे आदर्श के अनुसार है इसलिये हम अपने अंदर इस विश्वास को लेकर कार्य्य आरंभ कर सकते हैं कि उसकी हर बात पूरी हो कर रहेगी ॥

जो आदर्श स्वाभाविक और जीवनोद्देश्य के अनुकूल हो उसे क्रियात्मक रूप से प्राप्त करने का रहस्य अब उस चित्र के लिये रहना सोचना और काम करना है जो इस वाह्य जगत में आदर्श संसार के नये चित्र के अनुसार है । इसका मतलब यह है कि एक महान भविष्य की आशा में रहते हुये हमें महान वर्त्तमान का तत्व जानने के लिये जीवित रहना चाहिये ॥

किसी विशेष भविष्य के तत्व को पाने की आशा करना जीवन का एक अंग है । वर्तमान काल एक कारण और भविष्य

इसका फल है और कारण के लिये अपने फल की ओर देखना स्वाभाविक है, किन्तु जब कारण अपने आपको न समझ सके तो यह असत्य प्रभाव का चित्र अपने मन में तैयार कर लेगा जिसका परिणाम यह होगा कि यह अपनी शक्ति को अनुचित रास्त पर डाल कर ग़लत प्रभाव पैदा कर बैठेगी क्योंकि जीवन शक्तियां हमेशा उसी नमूना या चित्र के अनुसार तैयार करती हैं जो मन ने उन के लिये प्रस्तुत की हों।

यह कारण है कि मनुष्य ने अपने विषय में भ्रम में पड़ कर यौवन बल स्वास्थ्य शक्ति बुद्धि प्रसन्नता और मान के भविष्य के स्थान बुढ़ापा निर्बलता क्षणिता निकम्मापन और दुखावस्था का भविष्य तैयार कर लिया है। हां भविष्य के चित्र को बदलकर वह इतना कह सकता है कि अन्तिम को रोक कर प्रथम को तैयार करना शीघ्र आरंभ कर दे किन्तु नया चित्र तैयार करने के लिये आवश्यक है कि वह जीवन को जैसे कि यह है समझे और इसी के अनुसार रहे सोचे और काम करे।

भविष्य जीवन के नये चित्र की नीव इस बात पर स्थिर है कि जीवन को व्यक्तिगत रूप में उस समय तक क़ायम रक्खा जा सकता है जब तक व्यक्तिगत स्वरूप आत्मिक उन्नति के लिये आवश्यक है और यह कि व्यक्तिगत स्वरूप उस समय तक जवानी को कायम रख सकता है जब तक कि वह स्वयम क़ायम रहे।

जीवन के सिद्धान्तों के साथ सच्चा रहना मानो एक ऐसे भविष्य का चित्र तैयार करना और इस बात की पूर्ण आन्तरिक आशा में रहना है कि इस मानसिक चित्र को हर प्रकार से पूरा किया जा सकता है। ऐसे भविष्य को दृष्टि में रखना मानो यह सोचना है कि हमको सदैव युवा रहना है हमको सदैव बुद्धि शक्ति और प्रेम में वृद्धि उन्नति करना है और हर चीज़ जिसकी उन्नति शील मन इच्छा करे वह अधिकाधिक बढ़ेगी।

आने वाले वर्षों का नया चित्र हर बात में हर समय और हर रूप से उन्नति अंकित करता है। इस उन्नति में स्वास्थ्य, बल, यौवन, पूर्ण विमोचन, शारीरिक क्षमता, मानसिक शक्ति, बुद्धि तेज, शरीर तत्व के स्वरूप और प्रकाश सब सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त, बुद्धि, समय, अन्तः दर्शन, अनुभव की दैनिक वृद्धि, शांति, संयोग और आनंद के उच्च वर्ग की ओर सदैव ऊपर उठते रहना, अधिक बलवान और सुन्दर चरित्र का विकास, समस्त मनुष्य शरीर की सतत शुद्धि, जीवन और जीवन की प्रत्येक उस वस्तु में जो जीवन की सम्पन्नता बढ़ा सकती है अधिकाधिक अनुराग, मित्रों, संगतों और परिस्थितियों का अटूट सुधार, जीवन, कल्पना, चेतनता और कर्म के नये क्षेत्रों में दैनिक प्रवेश और आगे बढ़ना, आत्मा का महान आध्यात्मिक शिखर पर अनंत रूप में चढ़ते रहना जहां वह शान्ति ब्राजमान होती है जो ज्ञान आनंद और आत्मा के परम सुख से परिपूर्ण होती है, भी इस में सम्मिलित हैं।

यह आने वाले वर्षों का नया चित्र है जिस को हम अनुभव और प्राप्त कर सकते हैं और जिसको प्रत्येक व्यक्ति जो ऊपर को उठने वाला जीवन व्यतीत करता है और अपने में बराबर यह चित्र रखता है अनुभव कर सकता है। ऐसे भविष्य को प्राप्त करने के लिये अपने अर्द्ध चेतन मन में उसकी पूर्ण आशा रखते हुये जीवित रहना मानो ऐसा भविष्य उत्पन्न करना है। ऐसे भविष्य के साथ रहना जो अभी बन रहा हो वास्तव में जीवन है और जो व्यक्ति ऐसा जीवन व्यतीत करता है सदैव युवा बना रहेगा।

अमृतधारा की सिल्वर जुबली

१० मार्च १९२६ से १६ मार्च १९२६ तक बड़े समारोह से मनाई गई थी

इस सिल्वर जुबली का अद्भुत वृत्तान्त जो सज्जन पूरा २ पढ़ना चाहें, एक कार्ड भेज कर बिना मूल्य मंगवा सकते हैं, संक्षिप्त तौर पर यहां भी लिख दिया जाता है।

१०मार्च १९२६ को प्रातः काल वेद पाठ तथा हवन हुआ और विद्यार्थियों आदि को खाना खिलाया गया। सायंकाल को प्रदर्शिनी और विद्युत चिकित्सा का उद्घाटन—

श्री राजा नरेन्द्रनाथ जी. एम. ए.एम .एल.सी. भूतपूर्व कमिश्नर पंजाब, तथा प्रधान हिन्दु महा सभा ने किया।

उस उत्सव में सहस्रों उपस्थिति थी। पहले पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य ने प्रदर्शिनी के लाभ वर्णन किये और बतलाया, कि यह प्रदर्शिनी ७दिन तक खुली रहेगी। आपने कहा कि विद्युत चिकित्सा को भी जिसकी मशीनें विलायत से मैं लाया था आज से जारी कर दिया जायेगा। इसके पश्चात् **डाक्टर नन्दलाल जी.बी.ए.एल एल.डी.** बैरिस्टर ने एक संक्षिप्त भाषण में पंडित जी की वैद्यक योग्यता, उन की मानसिक उन्नति धार्मिक भिज्ञता, उनके आचार और दानशीलता का वर्णन किया और कहा कि उन्होंने कई दर्जन पुस्तकें लिखकर और पत्र जारी करके देश और चिकित्सा की भारी सेवा की है और आज वह हम सब के धन्यवाद के पात्र हैं।

इस के पश्चात् मौलवी **महबूब आलम सम्पादक "पैसा अख़बार"** ने प्रदर्शिनी की चाबी राजा साहिब के अर्पण की। आपने चाबी लेते हुये एक युक्तियुक्त भाषण में बतलाया कि वह समय गया, जब कि प्रत्येक विदेशी वस्तु अच्छी समझी जाती थी। हमको स्वदेशी वस्तुओं का सन्मान करना चाहिये। देशी चिकित्सा में बहुत गुण है। हां वर्तमान पदार्थ विद्या के अनुभवों को अपने भीतर स्थान देना चाहिये। वैद्यक चिकित्सा के साथ विद्युत

चिकित्सा की सहायता लेना भारतवर्ष में पहिला उदाहरण है। इस के लिये पंडित जी धन्यवाद के पात्र हैं। इस के पश्चात आपने प्रदर्शिनी और विद्युत चिकित्सा विभाग को खोल दिया और, सहस्त्रों पुरुषों ने देखना आरंभ किया।

यह प्रदर्शिनी बराबर सात दिन खुली रही, और सहस्त्रों की संख्या में जनता प्रतिदिन देखनेके लिये आती थी। अमृतधारा भवन बिजली के प्रकाश से खूब जगमगा रहा था। बिजली की अद्भुत पुतलियां और मशीनें जनता को अपनी ओर खेंचती रहती थीं। ४ बजे सांयकाल से १० बजे रात तक अमृतधारा भवन के सामने एक मेला लगा रहता था, बल्कि किसी समय तो रास्ता भी बंद हो जाता था। प्रत्येक मत और प्रत्येक व्यवसाय के स्त्री पुरुष बालक वृद्ध लाभ उठा रहे थे। हर एक ने सराहा और पंडित जी के काम की प्रशंसा की

११ मार्च को प्रातः अनाथों तथा दीनों को भोजन दिया गया और २ बजे से ४ बजे तक हकीमों और वैद्यों का सम्मेलन हुआ जिस में वैद्य सभा और अन्जुमने अतिब्बा के सेक्रेटरियों ने पं०जी के कार्य और उनकी वैद्यक सेवा की प्रशंसा की और यह निश्चय हुआ कि इस जुबली के उपलक्ष में वैद्यों और हकीमों की एक सम्मिलित समिति बनाई जावे जिस के प्रधान पं० जी और मंत्री कविराज हरनामदास बी० ए० नियत किये जावें। कान्फ्रेंस के पश्चात सब वैद्यों तथा हकीमों को एक पार्टी दी गई।

१२ मार्च को ५ बजे से ६ बजे सांयकाल तक जुबली का दिन मनाया गया। लोग चार बजे से एकत्रित होने आरम्भ हो गये थे। आठ दस सहस्र स्त्री पुरुष इस उत्सव में सम्मिलित हुए। लोगों का तांता लग रहा था। हर एक पहिले स्थान लेने के लिये उत्सुक था। इस के प्रधान—

जनाब मसीहउल्मुल्क हकीम अजमलखां साहब शाही हकीम देहलवी थे। सब से प्रथम पं० जी ने अपने जीवन के मनोरंजक और शिक्षादायक वृत्तान्त सुनाए, जो कि सम्पूर्ण "जुबली वृत्तान्त में छापे गये हैं। इस के पश्चात्—

डाक्टर मियां सर मुहम्मद शफ़ी साहिब एम० ए० के० सी० ऐस० आई० ऐल० ऐल० डी० भूतपूर्व सदस्य शिक्षा विभाग

(गवर्नमेंट इंडिया) ने पं० साहब को धन्यवाद दिया, और कहा कि अमृतधारा अपने गुणों के कारण कामयाब है, और मेरे यहां ऐसा कोई समय नहीं होता जबकि दो चार शीशियां मौजूद न रहती हों। **ख़ान बहादुर शेख़ सर अब्दुल क़ादिर साहब बैरिस्टर** भूतपूर्व वज़ीर पंजाब ने फ़रमाया, कि पं० साहिब ने साबित कर दिया है, कि देशी औषधियां बिदेशी औषधियों को मात भी कर सकती हैं। **महाशय कृष्ण बी. ए. सम्पादक "प्रताप"** ने कहा कि पं० जी की उन्नति उनके शुभ गुणों के कारण से है। **जहां कमाते हैं देते भी हैं। आपने अपने पुत्र के बिवाह पर एक बार ही ४० हज़ार रुपया दान कर दिया था।** उपदेशक विद्यालय को आजकल आप ४००) मासिक दे रहे हैं और कोई भी किसी शुभ कार्य के लिये उनके पास जावे, ख़ाली हाथ नहीं जाता।

डाक्टर गोकुलचन्द जी नारंग एम. ए. मेम्बर पंजाब कौंसिल ने कहा कि परमात्मा की दी हुई योग्यता के साथ धैर्य्य और संगठन शक्ति भी हो तब ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यह सब बातें पं० जी में मौजूद हैं। आप उन लाभकारी प्राणियों में से हैं, जिनकी मेघ, नदी अथवा वृक्षों से उपमा दी जा सकती है। **मौलवी गुलाम मुहीउद्दीन साहिब** वकील क़सूरी ने आप के कार्य की प्रशंसा करते हुए फ़रमाया, कि इसके उपलक्ष में पं० साहिब को कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए, कि अनाथों को वैद्यक सहायता प्राप्त हो सके।

सरदार सरदलूसिंह कवीश्वर ने वर्णन किया, कि बिजयी सदा पराजित जातियों की विद्या तथा शिल्प का सम्मान नहीं करते। पं० साहिब धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्हों ने देशी चिकित्सा का सम्मान बढ़ा कर मुक़ाबिला किया।

लाला दुनीचन्द साहिब बैरिस्टर ने घोषणा की कि मौलवी गुलाम मुहीउद्दीनसाहिब की अपील से पं० **जी ने मुझे यह सूचना दने को कहा है, कि वह २० हजार रुपया**

दीनों तथा असहायों को वैद्यक सहायता के लिए जुदा करते हैं।

उत्सव के प्रधान जनाब मसीहुल मुलक साहब ने जनता को धन्यवाद दिया और कहा, कि वह पं० जी को १७, १८ वर्षों से जानते हैं। वह सचमुच परिश्रम धैर्य्य और सत्यता से कार्य्य करने वाले हैं। यदि ऐसे सब लोग मिलकर देश के लिये काम करें, तो स्वराज्य क्यों प्राप्त न हो। हिन्दू मुसलमान जैसे आज एकत्रित हुए हैं, उनको सदा मिलना चाहिए। हिन्दू मुसलिम झगड़ों से देश को बहुत हानि पहुंच रही है। उत्सव के पश्चात् तालियां और "अमृतधारा की जय" के शब्दों से पिंडाल गूंज रहा था *।

एक अद्वितीय विज्ञापन।

अमृतधारा के सहस्रों ऐसे विज्ञापन तैयार हो सकते हैं, जिन में शब्द भी अपनी ओर से न मिलाना पड़े और एक पूरा विज्ञापन बन जावे (क्योंकि ३६ हज़ार पुरुषों के प्रशंसा—पत्र मौजद हैं)। नीचे हमने कुछ पत्रों के थोड़े २ शब्द छांट कर दरज कर दिये हैं। जिन महाशयों के ये शब्द हैं, उनके नाम कोष्टों में साथ २ छाप दिये हैं। आरम्भ से अन्त तक पढ़ जाइये आप को अमृतधारा का वर्णन मिल जायगा, और हमारा इस में एक भी शब्द नहीं।

आप की आविष्कृत अमृतधारा की किसी जिह्वा से श्लाघा करूं। यह एक अद्वितीय औषधि है। इसने वह २ चमत्कार दिखलाये हैं,

---

* विस्तृत विवरण जो कि बड़े मनोरंजक हैं "रिपोर्ट सिल्वर जुबली" में देखिये जो कि मुफ्त मिल सकती है।

जो किसी दूसरी दवाई से असम्भव थे। (मियां शेर मुहम्मद चक नं० ४५ पत्तोकी) इसमें किंचित मात्र अत्युक्ति नहीं, कि अमृतधारा 'यथा नाम तथा गुण' है। निश्चित रूप में यह आवेहयात (अमृत) है, और जगत में कोई इस प्रकार की अद्भुत औषधि आज तक निर्माण नहीं हुई है। सचमुच भारतीय चिकित्सा पद्धति का एक चमत्कार है। भारतवासियों को इस बड़े आविष्कार का अभिमान करना चाहिए। (राजा नरेन्द्र चन्द्र बहादुर सी० एस० आई० आफ़ नादौन) मैं प्रसन्न हूं कि आपने इस दवाई को ईजाद करके जगत का बड़ा उपकार किया है (बा० त्रिवेनी सहाय डिप्टी कलैक्टर आगरा) और सब मनुष्यों को इस उत्तम आविष्कार से अपना ऋणी बना लिया है (पं० दीनदयालु शर्मा व्याख्यान वाचस्पति) सबको जनता के उपकारार्थ किए गए पुरुषार्थ के लिए आपका कृतज्ञ होना चाहिए (टिक्का बलदेवसिंह गुलेर रियासत) निश्चय ही अमृतधारा सब रोगों पर जादू का प्रभाव रखती है, और जितनी भी इसकी प्रशंसा की जावे थोड़ी है (कुंवर प्रद्युम्नसिंह बहादुर वज़ीर बीजा) अमृतधारा में खुदा ने बड़ा प्रभाव दिया है। इस दवाई की कहां तक प्रशंसा करें (शेख़ महम्मद अयूब एण्ड सन्ज़ जनरल मर्चेण्ट सहारनपुर) क्योंकि यह जादू भरी दवाई है, और कई कठिन रोगों के रोगी अजीब तौर से इससे राज़ी हुए हैं। (मिस्टर टी ब्रैडशा लालबाग़ लखनऊ) वस्तुतः इसकी पूर्ण प्रशंसा हो ही नहीं सकती है। कोई दूसरी दवाई इसकी तुलना नहीं कर सकती, बल्कि पास ठहर नहीं सकती (मैडम ई० जानसन साहिबा चुनार) मैं नहीं कह सकता कि संसार में कोई और दवाई भी इतनी शीघ्र प्रभावशाली और निश्चय तौर पर लाभदायक हो सकती है (लाला मोहनलाल मतलब क्लर्क आफ़ कोर्ट सिशन जज लाहौर) निःसन्देह यह बहुत उपयोगी दवाई है। (श्री स्वामी सत्यानन्द जी राजोपदेशक) यह एक सच्चाई है कि अमृतधारा अक्सीरे-आज़म है। (हकीम फ़ीरोज़दीन मुंशीफ़ाजिल लाहौर) सच कहता हूं, कि अमृतधारा में आवेहयात से कहीं बढ़कर गुण हैं। तीर व तलवारका वार खाली जा सकता है, मगर अमृतधारा का रोग पर वार ख़ाली नहीं जा सकता है। यह अपने गुणों के कारण सबजगतमें प्रसिद्ध होरही है। (बाबू पी.एन.जी मालिक नेशनल ग्लास वर्क्स नगीना)मैंने तो जो रोगी आया उसको अमृतधारा देदी,

और सब ही राज़ी होकर खुशी से हंसते हुए वापस हुए। (लाला राजाराम सब डिवीज़नल अफ़ीसर अकलेरा)रोग नया हो या पुराना कोई भी हो अमृतधारा दे दो, यह आराम दे देगी ।(मिस्टर एन.आर आरिस्टन बदायूं) मेरा पहिले ख़याल था, कि एक दवाई इतने रोगों को कैसे उपयोगी हो सकती है, परन्तु जब से यह अमृतधारा इस्तेमाल करना शुरू किया है, मुझे इस बात का पुरा विश्वास होगया है (ला० नरायनदास इंजीनियर) अमृतधारा में बहुत से गुण हैं इसकी पूरी प्रशंसा करनी तो असम्भव है। इससे वैद्यों और डाक्टरों की आवश्यकता नहीं रहती।(शैख़ मुहम्मद जहूर-उल हक मद्रक) बहुत से औषधियों के बक्स खरीदने की आवश्यकता ही क्या है, जब कि अकेली अमृतधारा इतने रोगोंको दूर कर सकती है (राय दीवानचंद एम.ए. सेशन जज)बड़े परिवार वाले घर में सैकड़ों औषधियां रखने की बजाय अमृतधारा को मौजूद रखना काफ़ी है(मियांमुहम्मदअली रईस करंजा ज़िला अकोला) हर घर में चन्द शीशियां अमृतधारा ज़रूरी रखनी चाहियें। अगर कोई घर खाली रहे तो वह अभागा है। (मुहम्मद खुरशीद उद्दीन फ़ारुक़ी) अमृतधारा सचमुच अमृत की तरह गुणकारी है। इसकी जितनी तारीफ़ की जाये थोड़ी है। गत तीन वर्षो से मैं जंगल में हूं, और मेरी अकेली और सच्ची मददगार केवल अमृतधारा है। (राय बहादुर किशनसिंह भील टोला)इस दवा ने परदेश में भरोसा और आश्वासन देने में माता पिता का सा काम किया है। मैं इसकी दिलोजान से उन्नति चाहता हूं। राउ चरणदत्त अल्मोड़ा) ऐसी प्रभावशाली और उत्तम औषधि की एक शीशी प्रत्येक मनुष्य को अपने पास रखनी चाहिये। मिस्टर जे. लूई साहब गवर्नमेंट रेलवे आफ़िस लाहौर) प्रत्येक अमीर ग़रीब के घर में इस दवाई को रखना चाहिये। अमीरों को चाहिए कि वह अधिक मंगवा कर ग़रीबों को मुफ्त बांटें। (सरदार देवेन्द्रसिंह रईस पट्टी)मेरे पास पूरे शब्द नहीं कि मैं हर एक मनुष्यको विश्वास दिला सकूं, कि अमृतधारा प्रत्येक स्त्री पुरुष को अपने पास रखना आवश्यक है। (लाला हरसुखराय मैनेजर पञ्जाब नैशनल बैंक लाहौर) अमृतधारा दोषों से बिलकुल ख़ाली है, और इस से अधिक प्रशंसा की असल तौर पर हक़दार है जो अब तक भिन्न

भिन्न प्रान्तोंके लोगों नेकी है। सचमुच अपने लाभ के ख्याल से यह आप आपनी मिसाल है। (हकीम नासरुद्दीन अहमदखां सुपुत्र शफाउल मुल्क देहली) अगर सब विज्ञापन देने वाले हकीम आप की अमृतधारा जैसी उपयोगी दवाइयों के विज्ञापन देने लग जावें तो लोगों का विश्वास विज्ञापनों में होजावे। (सरदार मुजीब उर्रहमान आनरेरी मजिस्ट्रेट मुजीब नगर) अमृतधारा यकीनी तौर पर अमृत सरोवर है, और इस के गुणों के ख़याल से इस का मूल्य २॥) कुछ भी नहीं है। (बाबू जगन्नाथ प्रसाद भानु कवि ई० ए० सी० विलास पुर) मेरा तो ख्याल है, कि अमृतधारा के प्रत्येक बिन्दु का मूल्य इस की नमूना की शीशी के मूल्य ॥) से अधिक है। (मियां मुहम्मद यासीनखां मुन्सिफ़ सराय मनोली) ईश्वर से प्रार्थना है कि इस का प्रचार घर घर होजावे ताकि लोग कष्ट से बच सकें। प्रभु आप के कार्यालय को दिन दुगुनी रात चौगनी उन्नति दे और सदा आपका नाम चांद की तरह रौशन रहे। (ठाकुर वीरसिंह हाज़िर बाशी मुसाहिब महाराजा साहब बहादुर जम्मू) जो लोग अमृतधारा जैसी औषधि तैयार करने के दावे करते हैं वह असल में जनता को धोखा देना चाहते हैं मगर वह इस में कृतकार्य न हो सकेंगे। प्रत्येक पुरुष जानता है कि वह आपकी अपनी आविष्कार है, और किसी पुस्तक में इसका प्रयोग नहीं मिल सकता है। मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि आपकी औषधियों विशेष कर अमृतधारा को प्रसिद्ध करूं। मैं जनता के उपकार के लिए ही अपने मित्रों को यह विश्वास दिलाने का सदा यत्न करूंगा, कि अमृतधारा की नक़लें किसी काम की नहीं हैं, और इनको नक़्क़ालों के फन्दे में न फंसना चाहिये। (पं० श्रीधर कौल बी. ए. श्रीनगर) मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट बहादुर की मेम को जब कि वह पेट दर्द से तड़प रही थी, और सिविल सर्जन इलाज कर चुका था, अमृतधारा दी, और पन्द्रह मिनट में बिलकुल आराम हुआ। मेम साहिब ने मुझे दस रुपया इनाम दिये और पूछा कि यह दवाई कहां से मिलती है? मैंने बताया कि लाहौर में जनाब पं० **ठाकुरदत्त शर्मा** वैद्य की यह दवाई है (अज़ीज़खां गनूज मुल्क बरार)

उन रोगों के नाम जिनको

अमृतधारा दूर करती है।

सब प्रकार का शिर दर्द, श्वास, कास, पार्श्वशूल, (निमोनिया) नज़ला, ज़ुकाम, विषूचिका, मन्दाग्नि, अरुचि, उदर रोग, गुड़गुड़ाहट, मरोड़, परिणामशूल, अतिसार, वमन, मृगी, दन्त पीड़ा, वा दाढ़-पीड़ा, दांतों से रक्त जाना वा पानी लगना, कर्ण पीड़ा, कर्ण घाव, कर्ण खाज, छींक, नेत्र पीड़ा, फोड़ा, फुंसी, सब प्रकार के घाव, दाद, चम्बल, भिड़, बिच्छू, सर्प का डंक, बावले कुत्ते का विष, गले में दर्द, गला बैठना, मुखशोथ, सर्व प्रकार के ज्वर, मूत्र-कृच्छ्र, सन्निपात, उपदंश, गिलटियां, सन्धिवात, सर्व प्रकार का शोथ, आन्तरिक व बाह्य पीड़ायें, चोट से दर्द, बवासीर, प्लेग, रक्त वमन, प्रसूत, हृदय रोग, कामला, वायुगोला, आर्तव सम्बन्धी सर्व रोग, कण्ठमाला, गुदभ्रंश, डब्बा रोग, बच्चों का दूध न पीना, कम्परोग, लक़वा, अर्द्धांगवात, घ्राणनाश, नकसीर, जिह्वा शोथ, मुख में फुंसियां, मुख का पकना, ओष्ठ शोथ, ओष्ठ फुंसी, दन्तकृमि, मसूढ़ शोथ, गले पड़ना, स्वरभंग, स्तन शोथ, स्तन फोड़ा, आमवात, मतली, यकृत पीड़ा, जलोदर, पांडु रोग, आमा-तिसार, उदर कृमि, भगन्दर, बृक्कद्वय पीड़ा, मूत्राशय पीड़ा, कटि पीड़ा, घुटने का दर्द, पिण्डुली का फूलना, नासूर, सर्व प्रकार की खाज, छपाकी, बहु स्वेद, अग्नि से जलना, इत्यादि इत्यादि दूर होते हैं। पशु पक्षियों के सर्व रोग भी दूर करती है।

क़ीमत बड़ी शीशी २॥) रु० अर्द्ध शीशी १।) नमूना ॥) है

पत्र व्यवहार व तार का पता—

अमृतधारा लाहौर

दफ्तर का पता—मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवन, अमृतधारा रोड़, अमृतधारा पोस्ट आफ़िस, लाहौर।

टेलीफून नं०२००८

आगत पत्र।

अब हम अमृतधारा की प्रशंसा में आये ३६ हज़ार पत्रों में से कुछ पत्र नीचे दरज करते हैं, और पाठकों से प्रार्थना करते हैं, कि वह अवश्य इनको पढ़ें, और ऐसे आविष्कार की दाद दें। अधिक प्रशंसा पत्र देखने हों, तो "अमृत" पुस्तक मुफ्त मंगवायें। इन प्रशंसा पत्रों से मालूम हो जायगा, कि अमृतधारा न केवल मनुष्यों के प्रायः सब रोगों का हुक्मी इलाज है, बल्कि पशु पत्ती आदि के रोगों को भी हितकर है। कठिन रोग जैसे प्लेग, इनफ्ल्युअा नमोनिया, क्षय, सांपका विष, विषमज्वर, विशूचिका, हिस्टीरिया, शूल, उपदंश, गंठिया, गौट और कई अज्ञात रोगों में भी अद्वितीय प्रमाणित हुई है। साधारण रोगों की तो क्या बात है अकस्मात् होने वाली घटनाओं तथा रोगों जैसे चोट से रक्त जाना, आग या गरम पानी या तेजाब आदि से किसी भाग का दग्ध हो जाना, सांप, बिच्छू, भिड़, मच्छर, बावला कुत्ता आदि का काट खाना, शिर पीड़ा, कर्ण पीड़ा, दरद गुरदा, आमाशय का दरद, दन्त पीड़ा, वमन, विशूचिका, अतिसार, मरोड़, पीनस, नज़ला, लू लगना, मूर्छा, किसी विषैली वस्तु का खाया जाना आदि, को अचानक ही खाने अथवा लगाने से दूर करती है। तीव्र कीटाणु नाशक है और छूतदार रोगों से बचने के लिये इसका आंतरिक वा वाह्यिक प्रयोग अत्यन्त सन्तोषजनक है। पुराने रोगों में भी यह जादू का प्रभाव रखती है। यात्रा में इससे बढ़ कर कोई सहायक नहीं है। इस का योग दोष रहित है, यदि किसी रोगी को किसी कारणवश लाभ न करेगी, तो हानि भी न पहुंचायेगी। इसकी इतनी प्रसिद्धि देखकर लोग नकलें भी करने लग गये हैं। पाठकों को सावधान रहना चाहिये। धनी, निर्धन राजे महाराजे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, ब्रह्मो, सिख, आर्य, देव समाजी, राधा स्वामी, देशी, विदेशी, सब इसकी प्रशंसा करते हैं, और सब की यह सम्मति है कि यह बहुत कष्ट, चिन्ता, और व्यय

से बचाती है। इस लिये इसको प्रत्येक मनुष्य को सदा पास रखना चाहिये। नीचे लिखे थोड़े से प्रशंसा पत्र अवश्य पढ़िये।

मखौल उड़ाया करता था।

ला०नारायणदास साहिब चड्ढा बी०ए०सी०आई० ई० लिखते हैं :— "लगभग दो वर्ष हुए होंगे कि मुझे पहले ही पहल आप की निर्मित अमृतधारा सेवन करने का अवसर मिला इस २साल के बीच में "अमृतधारा" की शीशी हमेशा मेरे पास मौजूद रहती रही। मैं पहिले समाचार पत्रों में इश्तिहार औषधियों पर जो दुनिया भर के सर्व रोगों को दूर करने का दावा रखती है, मखौल उड़ाया करता था, परन्तु अमृतधारा का जो थोड़ा बहुत तजरुबा मैंने किया है, उस से यह प्रमाणित हुआ है कि एक ही दवाई एक से अधिक विभिन्न रोगों पर हितकर हो सकती है। आप इसको खूब ज़ोर से प्रकाशित करें, ताकि लोगों को जितना अब लाभ पहुंचा है, उससे भी अधिक पहुंचे"।

पाकिट केस व्यर्थ हैं।

राय दीवान चन्द साहिब एम० ए० एल एल०बी० सेशन जज लिखते हैं:— आज कल पाकिट केसों के बाबत विज्ञापन निकल रहे हैं। मेरी राय में बहुत सी औषधियों और पाकिट केसों को खरीदना व्यर्थ है। अमृतधारा अकेली इस प्रकार की औषधि है जो कि बहुत से रोगों में अति शीघ्र लाभ देती है और जिसके सामने कोई और औषधि दम नहीं मार सकती। मेरी राय में यह औषधि वास्तव में अमृत है और इसके द्रव्य पूर्णतया हानि रहित हैं।

रोग निदान की आवश्यकता नहीं।

बाबू चन्द्रप्रकाश साहिब रियासत साहनपुर जिला बिजनौर से लिखते हैं:— "आज कल जहां कहीं गिल्टी या दर्द मालूम हुई प्लेग का भ्रम हो जाता है। अब तक ऐसे रोगियों पर

बरती, बड़ा फ़ायदा हुआ। "अमृतधारा" में विशेष गुण है कि गर्दन के पास गिलटी हो, या रान के जोड़ में, बद्ध हो या चोट, या दूसरी कोई फुन्सी प्लेग की आकृत वाली हो, सब में विचित्र लाभ देती है। किसी अवस्था में निदान की बड़ी अवश्यकता नहीं हुई। ऐसा प्रभाव दुनिया की और किसी दवा विशेषतः इशितहारी दवा में आज तक नहीं देखागया। सत्य यह है, कि यह सब औषधियों की शाहन-शाह और यथा नाम तथा गुण है"।

रोग का पता न था।

मीर उसमान अलीहुसैन सज्जादा नशीन माजा नसरुल्लाबाद लिखते हैं:—"सचमुच अमृतधारा हर रोग का हुक्मी इलाज है। आधासीसी, दर्द सिर, आंख, गठिया, बद्ध खांसी, सब प्रकार के वाह्यिक व आन्तरिक रोगों पर मैंने आज़माया जादू का प्रभाव पाया। इसके अतिरिक्त मेरी नाक में मांस बढ़ गया जिस से सांस रुक कर बड़ा कष्ट रहता था। रूई के फाया से लगाया ईश्वर की कृपा से बहुत सा मांस गल गया"।

आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

लाला राम लभाया साहिब ठेकेदार गुजरांवाला से लिखते हैं:—"जब से मुझ को अमृतधारा का पता मिला मैंने न कोई और औषधि सेवन की है न मुझे कोई हकीम या डाक्टर के बुलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। जब कभी घर में कोई बीमार होता है अमृतधारा ही देता हूं। मेरी राय में कोई व्यक्ति भी अमृतधारा के बिना नहीं रहना चाहिये"।

हकीम बन गया हूं।

जनाब अमजद अली साहिब ज़िलादार गढ़ौर जिला मिर्जा पुर लिखते हैं:—मेरे पास अमृतधारा हमेशा मौजूद रहती है। चूंकि मेरा अधिकतर निवास ग्रामों में होता है इस लिये सैकड़ों रोगी मेरे पास बिच्छू के काटे हुए आये; जिनकी

आंखों से बराबर आंसू जारी थे, मगर जिस समय मैंने अमृतधारा लगाया, शीघ्र आराम हुआ और हंसते हुए वापस गये। इस के अतिरिक्त सिर दर्द के जो रोगी मेरे पास आये उनको बराबर आराम हुआ। मलेरिया बुखार के अक्सर रोगी मेरे पास आये, पानीमें डाल कर ३ बूंद अमृतधारा दिया, आराम होगया। जितनी प्रशंसा अमृत-धारा की की जावे, वह थोड़ी है, कोई हकीम नहीं हूं मगर जब से आपके कारख़ाने से अमृतधारा मंगाई है, ग्रामों में लोगों ने मुझको हकीम मशहूर कर दिया है"।

कोई घर खाली न रहना चाहिये।

श्रीमान् अमृतलाल साहिब सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस सिटी मजिस्ट्रेट व जज अदालत ख़फ़ीफ़ा राज्य उदयपुर मेवाड़ लिखते हैं किः— मैं अपने दो साल के तजुर्बे के बाद पबलिक को इस बात का निश्चय दिलाता हूं कि "अमृतधारा" में वे सब लाभ निःसंदेह वर्तमान हैं जिनको कि देशोपकारक पंडित जी ने अपने विज्ञापन में प्रकाशित किया है। सचमुच कोई गृहस्थ और बाल बच्चों घर ऐसा नहीं होना चाहिये कि जिस में "अमृतधारा" हर समय मौजूद न रहे। समय पर यह सब प्रकार के रोगों से रक्षा करती है। यदि मैं अपने तजुर्बों को प्रकट करूं तो एक भारी ग्रन्थ होजाए। इसलिये इतना पर्याप्त है, कि हमको इस विश्वास के साथ एक शीशी "अमृतधारा" की अपने घर में मौजूद रखनी चाहिये, कि मानो एक चतुर वैद्य और डाक्टर घर में मौजूद है।

नक़ल नक़ल है और असल असल है।

सैयद गुलाम सफ़दर पुरी मुल्क उड़ीसा लिखते हैं:—

"निस्सन्देह आप की औषधि अमृतधारा ने वह प्रसिद्ध प्राप्त की है कि अन्य औषधियों को स्यात ही मिले। यद्यपि इसकी नक़लें की गई हैं परन्तु असल असल है और नक़ल नक़ल है।

अमृतधारा असली ने वह काम कर दिखाया है कि जहां नक़ली पूरी शीशी भी ख़त्म होजाए फिर भी कुछ प्रभाव नहीं। अतः

आप से इस समय एक शीशी अमृतधारा रिआयती मूल्य पर मांगता हूं।

खेद है वैसी तैयार न हो सकी।

आज़ाद खां स्टोर कपिर मिलिटरी वर्क्स एबटाबाद से लिखते हैं:— "आप की भेजी हुई शीशी अमृतधारा अब ख़त्म होने पर है। कृपया एक शीशी और भेजें क्योंकि इस पर मैं आसक्त हूं और जब तक यह शीशी मेरे पाकिट में न हो चैन नहीं आता। अमृतधारा मैं स्वयं भी तैयार कर सकता हूं परन्तु जैसी अमृतधारा आप की है वैसी तैयार नहीं हो सकती। खुदा जाने आप कौन कौन से द्रव्य इस में डालते हैं"।

मुक़ाबिले को नहीं पहुंचता।

जगमोनलाल कायस्थ भगवन्तपुर जिला कानपुर से लिखते हैं:—"आप की अमृतधारा सचमुच सब से अधिक प्रभावशाली और अच्छी औषधि है। मैं आप का बड़ा कृतज्ञ हूं। सत अजवायन सत कपूर इत्यादि से जो एक प्रकार का अर्क बन जाता है वह आप की अमृतधारा के मुक़ाबले में नहीं पहुंचता" ।

कुत्ता तोता इत्यादि

"अब हाल में जो अनुभव मुझे अमृतधारा से हुआ है उसका वर्णन करता हूं। एक कुत्ता जिसकी आंखें क़रीब २ ऐसी धुन्धली थी कि अच्छी तरह से देख नहीं सकता था केवल शब्द से इधर उधर जाता था आंखों में अमृतधारा तीन चार बार लगाने से अच्छी हो गईं। आंखें पहिले देखने में श्वेत थीं। इसके पश्चात् श्वेतता दूर होने पर क़रीब क़रीब असली हालत पर आ गईं। यह कुत्ता अभी छोटा बच्चा है।

मेरे पास एक तोता छोटी क़िस्म का है।

उस के दाएं पंख में एक प्रकार की खाज थी, उस के कारण से उसने अपने सारे बाल नोच दिये। 'अमृतधारा' लगाने

से बाल नोचना बन्द होगया। अब उसके पंख जम रहे हैं,। और अच्छी अवस्था में आ रहा है। आशा है कि किंचित् दिनों के लगाने से पूर्णतया अच्छा होजावेगा और पंखादि उग आवेंगे।

एक कुत्ते ने दो रोज़ कुछ न खाया था।

"बड़ी चिन्ता थी कि इसको क्या दिया जावे। निदान मन में आई कि 'अमृतधारा, देनी चाहिये अतः शक्कर में मिला कर ज़बरदस्ती उसके मुख में डाली गई एक घंटा पीछे थोड़े चावल और रोटी का टुकड़ा दिया तो थोड़ा सा खाया। दूसरी बार अमृत-धारा, देने से राजी हो गया। फिर अब तक बीमार नहीं हुआ। मेरी ६ शीशियां ६ मास में समाप्त हुई हैं। १२ शीशियों का आर्डर अब दिया है। काश कि 'अमृतधारा' का मूल्य अल्प होता जिससे दिल खोल कर पशुओं की सहायता की जाती। आशा है इस लेख को देशोपकारक में सर्व साधारण के लाभार्थ प्रकाशित कर देंगे"।

लेखक—राधाकिशन सिंह इन्स्पेक्टर कन्टोन्मेन्ट सरवे सेक्शन नं० २ सरवे आफ़ इण्डिया मकान नं० ५ रसूलपुर छावनी

अन्य प्रदेशों में

श्रीमान् महाशय शिवव्रत लाल साहिब एम० ए० सम्पादक "साधू, मार्त्तण्डादि" लिखते हैं:—

श्री मान् पंडित जी! आपका पत्र मिला अमृतधारा के विषय में मेरी सम्मति चाहते हैं। मैं तो यों ही उसको प्रभावशाली मानता हूं, इस कारण से नहीं कि आपके पास १५ सहस्र प्रशंसापत्र वर्त्तमान हैं, वरन् इस कारण से कि मैंने तजरुबे से इसको बहुत गुणकारी पाया है। मैं इसकी शीशी सदैव चीन, जापान, अमेरिका आदि की यात्रा में साथ रखता था, और जहां कहीं सम्भव हुआ, मित्रों और मिलने वालों को इसके मंगाने की सम्मति दी। जापान और सानफ्रांसिस्को में मैंने अपने मैनेजर कन्हैया लाल साहिब से अमृतधारा की शीशियां मंगाकर लोगों में बांटीं। मेरे विचार में जहां वैद्य और डाक्टर न हों वहां अमृतधारा को पास रखना अत्यन्त हितकर है। इससे अधिक मैं और क्या सम्मति दूं"।

विशेष सूचना

अमृतधारा शब्द हमारा है। कोई दुकानदार अगर धोके से इस नाम से कोई और दवाई देते हों, तो कृपा करके इस की सूचना हमको दिया करें। अमृतधारा कार्य्यालय लाखों रुपया के विशाल भवन में स्थापित है। इसके लिए विशेष डाकखाना अमृतधारा डाकखाना के नाम से खुला हुआ है। साथ ही की सड़क का नाम अमृतधारा सड़क है। अमृतधारा भवन के एक भाग का प्रवेश संस्कार सर प्रतूलचन्द्र चैटरजी चीफजज हाईकोर्ट पंजाब ने और दूसरे भाग का एफ. डबल्यू. कन्वे साहिब डिप्टी कमिश्नर लाहौर ने किया था। लाहौर में आने वाले महाशय मैनेजर की आज्ञा से कार्य्यालय को देख सकते हैं।

मैनेजर

अमृतधारा के पांच मिश्रण

सुविधा के वास्ते निम्न लिखित पांच औषधियां अमृतधारा से तैयार करके रक्खी जाती हैं।

(१) अमृतधारा साबुन।

इस साबुन में जो गुण हैं, वह किसी और में नहीं। यह साबुन चर्मज रोग दाद, चम्बल, फोड़ा फुन्सी, खाज, पित्ती, कील, छाइयां आदि को दूर करता है, त्वचा को कोमल व सुन्दर बनाता है, और डिसइन्फैक्टैण्ट भी है, रोगियों को देखने के पश्चात् इससे हाथ साफ़ करने से रोग कीटाणु नष्ट होते हैं, और रोग का भय नहीं होता जनता ने इसे बहुत पसन्द किया है। मूल्य प्रति बक्स ३ टिकियां ॥।=) प्रति टिकिया ।-)

(२) अमृतधारा मरहम।

बहुत से पुराने चर्मज रोगों के दूर करने वाली औषधियों को अपनी प्रसिद्ध अमृतधारा के साथ मिलाने से तैयार की गई है।

अमृतधारा मरहम में कोई पाशविक चर्बी शामिल नहीं है। समस्त चर्म रोगों की अद्वितीय औषधि है। सब प्रकार के घाव, चोट रगड़, फुन्सी, दद्रु, चम्बल, एगजीमा, खाज, छपाकी, छाले, हाथ पांव का फटना, उपदंश के घाव, अर्श मस्से, मच्छर भिड़ आदि के डंक, आग उष्ण जल व तेज़ाब आदि से जलना सब इससे दूर हो जाते हैं। बड़े से बड़े घाव इतनी जल्दी भरने शुरू हो जाते हैं, कि बड़े बड़े डाक्टर चकित रहते हैं। मूल्य १) प्रति डिबिया ।

(३) अमृतधारा बाम ।

इसमें अमृतधारा के साथ ऐसी २ चीज़ें मिलाई गई हैं जो कि चर्म को कोमल करने और बादी बलग़म को दूर करने में उत्तम हैं। इसकी ऐसी शकल है जैसी कि वैसलीन की होती है। बादी बलग़म की पीड़ाओं जैसे गंठिया इत्यादि के लिए अनुपम औषधि है। चर्म फटने के लिए गुणकारी है। शरीर में किसी स्थान पर पेशियों या नाड़ियों की पीड़ा हो उसको मलें। पौंडर की भांति भी सेवन कर सकते हैं। मूल्य प्रति शीशी १)

(४) अमृतधारा लोज़ेंजिज़

(अमृतधारा की मीठी टिकियां)

विलायत से पेपरमेण्टादि की मिष्ट टिकियां विक्रयार्थ भारतवर्ष में आती हैं। हमने अमृतधारा की टिकियां तैयार की हैं। इन के चूसने से अमृतधारा का कुछ लाभ होने के साथ २ दन्त रोग, कफज रोग, कण्ठ खाज, गले पड़ना, कासादि को लाभ होता है। बालकों को विदेशी टिकियां और गोलियां आदि खाने के बदले इन को अपने पास रखना चाहिए। मूल्य १०० टिकियां ।) चार आने ।

(५) अमृतधारा लोशन

मुख और गले के सम्पूर्ण नए पुराने रोगों के लिये यह लोशन संसार भर में अनुपम है । रोग कृमि नाशक गरारे करने के लिये, हैजा प्लेग एन्फ्लूएंजा मलेरिया आदि महामारियों के दिनों में अमूल्य वस्तु है मूल्य १)

अमृतधारा औषधालय की कुछ विचित्र औषधियां—जिन्हों ने संसार को आश्चर्य में डाल दिया है।

मीठा फल—यह विचित्र फल संसार को अचम्भे में डालने वाली औषधि है। जब गर्भ होजावे तो दो मास के पश्चात् तीसरे मास ३गोली दूध से खिलाई जाती हैं। पुत्र ही उत्पन्न होता है। मूल्य १०) लड़का न हो तो मूल्य वापिस करने की शर्त है।

फूलो फलो—यह सूखिया मसान की विचित्र औषधि है, इसको केवल कटि पर मला जाता है, और वहां से महीन २ कृमि निकलते हैं, वही रोग का कारण होते हैं। मूल्य १)

तृतीयक ज्वर तन्त्र—इस औषधि को ज्वर चढ़ने से पहले उंगली पर बांध देने से ज्वर नहीं चढ़ता। मूल्य ॥)

दरद शिकन—इसकी एक पुड़िया के सेवन से चाहे किसी प्रकार की मांस व पट्ठों की पीड़ा हो, जाती रहती है। शिर पीड़ा, जोड़ों की पीड़ा, कटि पीड़ा, गुल्फ, रान या किसी जगह की पीड़ा हो, १५ मिनट में आराम। पुरानी पीड़ा हो तो कुछ दिन सेवन करनी चाहिये। मूल्य १) नमूना।)

बला दूर (अफीम निवारक)—इन गोलियों को खाने से अफीम छूट जाती है। सैकड़ों मनुष्य इससे अफीम छोड़ चुके हैं। मूल्य ६० गोली १॥)

सिपचाच—यह विचित्र नाम एक अकसीर दवाई का है जो कि बड़े कठिन रोगों में रसायन का काम करती है। शरीर में नाड़ी व्रण इत्यादि हो बन्द न होता हो लगाने की औषधि रोग़न मसीहा इत्यादि के साथ इसको खाने को दिया जाता है। शीघ्र लाभ होता है गरमी (आतशक) का माद्दा जब शरीर से निकलता न हो तो ईश्वर कृपा से लाभ होता है। आतिशक को भी गुणकारी है। कुष्ट को लाभदायक है कफज कास और श्वास को दूर करती है बुढ़ापे के गिरे हुए शरीर को उठाती है। वृष्य भी है। जिनको प्रतिश्याय आदि का कष्ट रहता हो या जो वात रोगों से पीड़ित हैं उनके लिये नियामत है। मूल्य ६० गोली २) आधी ३० गोली १)

रोगन मसीहा—नाड़ी व्रण (नासूर तथा भगन्दर को दूर

करता है। इसके लगाने से प्रथम सब पीब निकल कर भीतर से व्रण भरना आरम्भ होता है। मूल्य १ औंस ३), ४ ड्राम १॥) नमूना १ ड्राम ।-)

ज्वरार्क—मलेरिया' जूड़ी या मौसमी ज्वर किसी प्रकार का हो तीन दिन के भीतर २ जाता रहता है। मूल्य ॥) शीशी।

ज्वर नाशक—ज्वर नामकी शत्रु है। प्रायः हकीम इसको अपने पास रखते हैं और इसके बल पर प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। वृद्ध बालक युवा, स्त्री पुरुष किसी प्रकार के ज्वर यहां तक कि प्लेग तक के ज्वर ग्रस्त हो आधी सारी या चौथाई गोली आयु अनुसार दोष तथा प्रकृति को देख कर देदो। दो चार दिन में अच्छा हो जायगा। रियासत जम्मू के एक शाही हकीम ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है और योग निर्माण करनेवाले को सैकड़ों आशीषें दी हैं। मूल्य २६ गोली १) ८ गोली ॥)

अक्सीर बदन—गले व छाती के रोग, कास, श्वास, गले पड़ना आदि के लिए हितकर है। जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा की खांसी में, पीप या रक्त जाने को पूर्ण गुण करती है। मूल्य फी शीशी १॥)

अमृत गोलियां—कफज कास श्वास, पेट दर्द, शीत ज्वर, नेत्र पीड़ा, नेत्र रोग, सब प्रकार का बिष, ज्वर, सन्निपात, दन्तरोग, कोष्टवद्धता, सर्पदंश, बिच्छूदंश, भिड़ का डंक, उदर कृमि, मूत्रबद्ध, आमाशय की निर्बलता, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, सन्धिवात, उपदंश, मुख गन्ध, शिर पीड़ा, कामला, जलोदर, धातुक्षीणता, मृगी, नासूर, अतिसार, मरोड़, कर्णपीड़ा, दन्तपीड़ा, आर्तवबद्धता, गुदभ्रंश, शीत दोष, नाभिपीड़ा, अश्मरी, क्लीव, प्रतिश्याय, मूत्रातिसार, बालकों का डब्बा रोग, इत्यादि २० रोग दूर होते हैं। मूल्य ६० गोली १) नमूना =)

ज्वरारि अभ्रक—यह गोलियां बिषम ज्वर के वास्ते अनुपम व अद्वितीय है। पुराना ज्वर चढ़ता उतरता हो, प्रायः पहले दिन छोड़ देता है। मूल्य १६ गोली १) ८ गोली ॥)

गन्धार रस—प्रायः एक ही मात्रा से अतिसार मरोड़ादि को आराम आता है। विशूचिका के वमन विरेचन को भी आराम होता

है। अतिसार व मरोड़ के वास्ते ऐसी हितकर अन्य औषधि न होगी। मूल्य १) रुपया नमूना =)

दत्त नस्वार—इससे शिर वेदना, आधा शीशी, दाढ़ दर्द, कर्णपीड़ा, नेत्रपीड़ा, प्रतिश्याय, दूर होते हैं। मृगी सन्निपात को हितकर है। मूल्य १) तोला' नमूना।)

सूर्य्य घृत—इसको शरीर पर मलने से सब प्रकार की खाज तर व खुश्क दूर होती है। फोड़ा फुन्सी जिनको कई प्रकार के निकलते रहते हैं, उनके शरीर भी सर्वथा स्वच्छ होजाते हैं। मूल्य २ औंस १), नमूना ४ ड्राम।)

ऐराटी मेद—मोटापे की औषधि है। इस औषधि से प्रति मास ४-५ सेर और कभी १० सेर तक भार कम हो सकता है। मूल्य फी शीशी खुराक १ मास ४), मात्रा १५ दिन २)

प्राणदाता—यों तो अमृतधारा भी विशूचिका के वास्ते अमृत है तथापि ऐसे भयंकर रोग में सहायतार्थ अन्य औषधियां भी हमेशा तैयार रखनी चाहिएं। यह हमारी अनुभूत औषधि है, और ५ घन्टे के भीतर ही इससे प्रायः अराम आ जाता है। मूल्य १५ गोली १)

बाग़ फूल तैल—बालों के तैल जो आज कल तैयार होने लगे हैं समझदार सेवन करने वाले जानते हैं कि इनमें आम अङ्गरेज़ी सफ़ेद तैल (साफ़ किया मिट्टी का तैल) में केवल रंग और सुगन्ध देकर बनाये जाते हैं। रंग और सुगन्धि में आपने बहुत तैल देखे होंगे मगर बाग़ फूल तैल बालों के लिये बहुत गुणकारी है। उनको नरम व कोमल करता है स्याही को स्थिर रखता है, नज़ला जुकाम इत्यादि की अधिकता को रोकता है। सुगन्धि इसकी भीनी २ मनोरंजक और देर तक रहने वाली है। संक्षिप्त में इसके भीतर वह सारे गुण वर्तमान हैं जो एक लाभदायक उत्तम तैल के भीतर होने चाहिएं। मूल्य प्रति शीशी १)

अखण्ड—यह सुरमा दैनिक सेवन के वास्ते है। नेत्रों को

प्राय: रोगों से सुरक्षित रखता है, दृष्टि स्थिर रखता है, और शीतलता प्रदान करता है। मूल्य १ तोला ॥)

अखरौशन—नेत्र रोग तथा पानी जाना, धुन्ध, नया फोला, जाला, कुक्करे, पड़वाल आदि को दूर करता है। मूल्य १ तोला ॥।) नमूना –)॥

फोला क्योरा—यह सुरमा फोला के वास्ते विशेष रूप से हितकर है। धुन्ध, जाला, कुक्करे आदि को भी बहुत शीघ्र दूर करता है। मूल्य ८) तोला, ६ माशा ४) नमूना १)

पड़वाला क्योरा—पड़वालों के लिए विशेष रूप से हितकर है। पड़वालों को उखाड़ २ कर लगाया जाता है, तो फिर नहीं उगते। मूल्य ४) तोला, ६ माशा ४), नमूना ३ माशा १)

मंजन नं० १—दंत रोग यथा रक्तस्राव, पानी लगना दंत पीड़ा, मुख दुर्गन्ध को हितकर है। दांतों को स्वच्छ करता है। मू० ।), नमूना –)

मंजन नं० २—विशेष कर दांतों की सफ़ाई के लिए बनाया गया है। इसके मलते रहने से दांत मोतियों के समान चमकने लगते हैं। जिनके टारटर (मल) जम गया हो, वह उसे उतार कर मलते रहें तो फिर न जमेगा। मू० ।) नमूना –)

मंजन नं० ३ (कारबोलिक मंजन)—यह मंजन अङ्गरेज़ी प्रकार का है। रंग गुलाबी, कारबोलिक टूथ पौडर है, दन्त कृमि नाशक है, दांतों को स्वच्छ करता है। जो विलायती मंजन को पसंद करते हैं, वह इसको सेवन करें। मू० ।) नमूना –)

मंजन नं० ४ हिलते हुए दांतों के लिये विशेष रूप से, और जबकि मसूढ़े पृथक हो रहे हों, गुणकारी है मू० ॥) नमूना =)

मुखरक्षक—मुख के छालों के वास्ते हितकारी है चाहे बालकों के हों, वा बड़ों को। मू० ॥), नमूना ।)

दवाई दाद—इसको चन्द दिन लगाने से दद्रु चाहे जहां हो अच्छा हो जाता है। चम्बल को भी गुणकारी है। बहुत कोमल स्थान पर जब कि खुजलाया हुआ हो थोड़ी देर लगती है और दूसरी जगह नहीं लगती। लगा कर कोई काम बन्द नहीं करना पड़ता। मू० ४ ड्राम १), नमूना १ ड्राम ।)

हरदिल अज़ीज़—जिन लोगों के मुख में दुर्गन्धि आती है यद्यपि उन्हें ज्ञात न हो परन्तु कोई व्यक्ति उनके पास बैठ कर बात करना नहीं चाहता। इन गोलियों को मुख में रख कर चूसते रहने से मुख की दुर्गन्धि दूर होकर सुगन्धि पैदा होती है और दांत दृढ़ होते हैं। मू० ६० गोली १) नमूना =)

मसालह पान—हमने देखा है कि बाज़ारी पान विक्रेता प्रायः मलीन बर्तन आदि में सामग्री रखते हैं, इस लिए यह मसालह नाया गया है, एक पान पर चुटकी रख दीजिए पान तय्यार है, वैसा ही रंग देगा, इसके अतिरिक्त मुख दुर्गन्धि को दूर करेगा, स्तम्भन करेगा, दांतों को दृढ़ करेगा, कफादिको शुष्क करेगा मू०१) नमूना=)

गोली पान—वह लोग जो पान के बड़े २ पत्र मुख में डालने के विना पान का आनन्द लेना चाहते हैं, वह मंगवावें। शेष गुण "मसालह पान" के से हैं। मू० ६० गोली १), नमूना =)

गला क्योरा—यह गोलियां कंठ व छाती के रोगों के लिए रसायन हैं। जिनको शीघ्र २ स्वर भेद हो जाता है, उनके वास्ते गुणकारी है। धांस, कण्ठ खाज, मुख में छाले, लाल जिह्वा इत्यादि को लाभदायक है। मुख में रख कर २-३ गोली प्रति दिन चूसना चाहिए। मू० १६ गोली ॥)

बाल उड़ाने की अनुपम औषधि—इस को पानी में घोल कर लगाने से एक मिनट के भीतर कठोर और कोमल से कोमल स्थान के बाल जड़ से दूर होते हैं। जिस २ ने मंगाया प्रंशसा की है। मू० फी डिबिया ।=), नमूना -)॥

रसबेला (बाल उड़ाने की दवाई) इस औषधि के लगाने से जिस स्थान के बाल चाहो पैदा कर सकते हो। मू० १)

काका तैल (दवाई बाल झड़)--बाल झड़ने बन्द हो जाते हैं। मू० २ औंस २) नमूना ।)

मुख रोब (मूछ बढ़ाने का तैल) यह तैल न केवल मूंछों को वरंच प्रत्येक स्थान के बालों को बढ़ाता है और उनको स्याह रखता है, अहा ! रोबदार मूंछों वाला चेहरा कैसा भला मालूम होता है। मूल्य फ़ी शीशी ३ औंस २), नमूना ।=)

चित्त मोहनी—इस उबटन को स्नान समय मलने से चेहरे के बुरे दाग़, कील, छाइयां आदि दूर होकर चेहरा साफ़ होता है। झुर्रियां नहीं पड़तीं, चेहरे का रंग दिन प्रतिदिन निखरता जाता है। सूरत मन मोहनी हो जाती है। मू० १) नमूना =)

दिल सुन्दरी—यह स्नान के पश्चात् सेवन किया जाता है। एक प्रकार का तैल है, जो चेहरे को चमकाता हैं और दाग कीलादि को दूर करती हैं। यदि स्नान से पहले चित्त मोहनी और स्नान के पश्चात् दिल सुन्दरी का सेवन हो तो बस कहना ही क्या है। मूल्य फी शीशी ॥=), नमूना ।)

प्राणसुख—स्तनों को ढलकने से बचाता है, और ढलके हुए को प्रकृति अवस्था पर लाता, और कठोर व उन्नति करता है। भद्दे स्तन स्त्री के लिए दुखदाई हो जाते हैं। मूल्य ४), नमूना १)

पुरुषों के विशेष रोगों सम्बन्धी कुछ औषधियां।

पूर्ण सूची तथा 'नपुंसकत्व' नाम की पुस्तक मुफ्त मंगाने पर मिलेगी।

इन औषधियों की प्रशंसा में सहस्रों प्रशंसापत्र मौजूद हैं

अकसीर नं० १ महत बाजीकरण औषधि—बहुत सी वीर्यवर्द्धक, उत्तेजक औषधियों का संग्रह है। नपुंसकता की सम्पूर्ण अवस्थाओं में हितकर है। यह पुरुषों के गुप्त रोगों के वास्ते जेनरल औषधि है। शुक्रमेह, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष को बहुत लाभदायक है। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं० २ लक्ष्मीविलास रस—वैद्यक में लिखा है कि यह रस नारद जी ने श्रीकृष्ण जी महराज को बताया था। दूध के साथ नित्य खावे तो बूढ़ा भी युवा के तुल्य होवे। कामदेव के समान हो जावे, सन्निपात, प्रमेह, भगन्दर, कण्ठशोथ, संग्रहणी, मरोड़, खांसी, ज़ुकाम, बवासीर, सन्धिवात, कटिपीड़ा, नेत्रपीड़ा, दृष्टिमांद्य, घ्राण दुर्गन्ध, गलगण्ड, शिरपीड़ा, प्रदरादि को हितकर

है। यह ज्वर अन्य रोग के पश्चात् जो निर्बलता, नपुंसकता, प्रमेहादि होता है। उसको विशेष रूप से हितकर है शुक्रमेह' स्वप्नदोष, शीघ्रपतन को लभदायक है। मूल्य ६४ गोली ४)

अकसीर नं० ११--हृदय, मस्तिष्क, यकृति, आमाशय, मूत्राशय को पुष्टिदायक हे, आनन्दवर्द्धक है, सुस्ती, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष को हितकर है। याकूती का काम भी देती है, अमीरों के खाने के योग्य प्रत्येक प्रकृति के अनुकूल इसका प्रधानांग स्वर्ण है। मूल्य ६४ गोली १०), १६ गोली २॥), नमूना ४ गोली ॥=)

अकसीर नं० १२—विशेषतया शीघ्रपतन के रोगियों के वास्ते है। तीसरे पहर एक दो गोली दूध से खाने से पूरा प्रभाव होता है। नित्य सायं प्रातः एक गोली खाने से शीघ्रपतन का मूलवच्छेद होता है। इसके खाने वाले को खांसी, नजला, जुकाम, कटि पीड़ा, वातज, कफज आदि रोग नहीं सताते। मूल्य ६० गोली ३), २० गोली१), नमूना ५ गोली ।)

अकसीर नं० १४——प्रमेह, शीघ्रपतन, तथा स्वप्नदोष नाशक है। कुसमय की अधिक रतूबत बन्द होती है मात्रा १ माशा सायं प्रातः दूध के साथ दें। मूल्य ३० तोला का ३), १५ तोले का १॥)है॥

अकसीर नं० २० (मन्मथ रस)—वृद्ध को युवा और युवा को मल्ल बनाने के वास्ते यह योग शिव जी महाराजा का निर्मित है। उत्तमता यह है कि तीव्र नहीं है। चिरस्थाई लाभ धीरे २ करता है। सदैव खाने में कोई हानि नहीं है। शिथिलता शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, शुक्रमेह, को दूर करता है। खांसी नज़ला, जुकाम, श्वास, पाण्डु, कामला, अपाचन को हितकर है। रक्त उत्पन्न करता है। पौष्टिक उत्तेजक व स्तम्भक है। मूल्य ६४ गोली ४, ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं० २४ सुखकारक——शीघ्रपतन रोगी का जब तक रोग दूर न हो तब तक कभी २ तीसरे प्रहर दूध के साथ खावें। पश्चात् कोई खट्टी लवणयुक्त वस्तु न खावें। चौगुना असर होता है। मूल्य ३२ गोली २), नमूना ४ गोली ।)

अकसीर नं० २७—·········पश्चात् एक दो गोलियां खा

लीजिए उदासी दूर, सुस्ती चकनाचूर, बल ज्यों का त्यों । नित्य दूध के साथ सायम् प्रातः खावें तो शीघ्रपतन को हितकर है। मूल्य ६० गोली १), नमूना =)

अकसीर नं० २७ (ख)—जिसमें कस्तूरी डाली है। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २)

अकसीर नं० ३१ (धातुवर्धक)—इससे वीर्य बहुत बढ़ता है, और पुष्ट होता है, शुक्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन को भी हितकर है। मूल्य २) पाव, नमूना ५ तोला ॥)

अकसीर नं० ३१ चन्द्रप्रभा वटी—यह वैद्यक योग विविधि नामों से बड़े २ वैद्य वेच रहे हैं, २० प्रकार के प्रमेह, पथरी, अफारा, शूल, मन्दाग्नि, अण्डवृद्ध, पाण्डु, कामला, बवासीर, भगन्दर, नासूर कटिपीड़ा, कास, श्वास, हिक्का, डकार, नज़लादि को हितकर है। वीर्य को शुद्ध करके सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाती है। मू० ३२ गोली १), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं० ३३ अयुर्वेदिक टानिक—स्त्री पुरुष के रज वीर्य को शुद्ध करके सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाती है। यह गोलियां पौष्टिक, बल वर्द्धक, सन्धिवात नाशक, हैं और कटिपीड़ा गुल्फपीड़ा, पार्श्वशूल, रींघनवायादि सर्व वातज कफज रोग मिटाती हैं। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नँ० ३४ (क)—धातुस्राव के वास्ते यह अद्वितीय औषधि है। स्वप्नदोष, शीघ्रपतन को भी शीघ्र दूर करती हैं। मूल्य ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नँ. ३८—शुक्रमेह शीघ्रपतन व स्राव को दूर करती है शारीरिक बल को अधिक करती है मस्तिष्क को लाभ पहुंचाती है। लेसदार औषधि होने पर भी क़ाबिज़ नहीं है। इस के खाने से प्रकृति स्तम्भन बढ़ता है। मूल्य प्रति पाव २), आधा पाव १), नमूना १ छटांक ॥)

तिला नं. १—कुछ सुगन्धी युक्त है। बूढ़ों को विशेष रूप से लाभकारी है, जो शौकिया बल बढ़ाना चाहें यह तिला हितकर है मूल्य ४ ड्राम ५), नमूना १ ड्राम १)

तिला नं. ३—अपना आप गंवाने वालों को विशेष रूप से हितकर है साधारण अवस्था में बहुत गुण करता है। मूल्य १) रुपया नमूना ।)

तिला नं. ४—यह बड़ा भारी प्रचण्ड है चरम का एक परत उतार देता है, परन्तु नसों पट्ठों को बहुत शीघ्र ठीक करता है। ध्वजभंग, नपुंसकता दूर करके पूरा बल प्रदान करता है। मूल्य३), नमूना ॥।)

तिला नं. ६ (स्थूली करण)—स्थूलता के लिए है। मू० ४), आधी शीशी २) इससे कम नहीं भेजा जाता।

स्त्रियों व बालकों की कुछ औषधियां

अबलाराम—हर प्रकार का प्रदर लाल, पीला, श्वेत इससे दूर होता है। कटिपीड़ा, सोम रोग आदि को भी हितकर है, मू० ३२ गोली २), नमूना ।)

पताली—मासिक का कम होना, वा न आना, वेदना सहित आना और तत्सम्बन्धी सर्व रोगों को दूर कर के गर्भाशय को गर्भ धारण योग्य बनाती है और बल प्रदान करती है। मू० २),नमूना ॥)

सोमावती—स्त्रियों को जो श्वेत पानी जाता है, चाहे किसी प्रकार का और किसी दर्जा का हो, इससे आराम आ जाता है। मू० २४ मात्रा २), नमूना ८ मात्रा ॥।)

गर्भ चिन्तामणि रस—गर्भिणी के सर्व रोग, ज्वर, कास, अजीर्ण, शोथ, जी मचलाना, वमन, अतिसार, उदरशूल, शीतादि को लाभ करता है। गर्भिणी की कोई भी व्याधि हो इससे लाभ होता है। मू० ३२ गोली २), नमूना ४ गोली ।)

रक्त स्तम्भक—जब रक्त ऋतुकाल के अतिरिक्त जारी हो तो तीन के सेवन से बन्द होगा। मात्रा, ९ दिन की २), ३दिनकी ॥।)

गोदभरी—जब कि पुरुष का वीर्य ठीक हो यह गोली स्त्री को खिलाई जाती है। प्रथम तो प्रथम ही मास, अन्यथा चौथे मास के भीतर ईश्वर की कृपा से गर्भ स्थित होजाता है। मू० ५)

अबला सुख—यह औषधि स्त्रियों के अनेक रोगों को गुणकारी है, जो स्त्रियां निर्बल हो, दिनों दिन रोगी रहें, यह दवाई गुण करती है। मू० ४० गोली ३), नमूना १० गोली ॥।),

अबलानन्द—इस के भी उपर्युक्त गुण हैं और पित्त प्रकृति वाली स्त्रियों के लिये है। मूल्य ४० खुराक ३), नमूना ।।।)

मन रजन (हिस्ट्रिया की दवाई)—स्त्रियों के इस रोग की अनुभूत औषधि है। मूल्य ६४गोली ४), नमूना १६ गोली १)

ब्रह्मपुत्र रस (अठरा की औषधि)—अठरा से जो सन्तान छोटी अवस्था में मर जाती है। उसकी दवाई मू० ७०७गोली१०

सुखजनाई—इस औषधि को केवल कटि पर बांधने से बालक सुगमता से उत्पन्न होता है। मूल्य १)

गर्भ प्रतिबन्धक—जब कभी गर्भावस्था में स्त्री के प्रणों का भय हो, तो ऐसे यत्न की आवश्यकता पड़ती है कि गर्भ न ठहरे। मूल्य २)

बाल सुख—यह बालकों के वास्ते टानिक औषधि है। मन्दाग्नि कोष्टबद्धता, हरे पीले दस्तों का आना, ज्वर, तृषा, कृषता, बालक का सूखते जाना और सदैव रूग्ण रहना, पित्ताधिकता सब दूर होते हैं। मूल्य ६४ गोली १), नमूना ८ गोली =)

काकड़सत -बालकों को प्रायः होने वाले रोग तथा अजीर्ण अतिसार, ज्वर खांसी आदि को हितकर है। प्रत्येक बालकों वाले गृह में होना चाहिए। मूल्य ॥), नमूना =)

दूधजा--दूध सुखाने की दवाई। मू० २) नमूना ॥)

दूधला--दूध बढ़ाने की दवाई। मू० ७ तोला १)

मान——विषय वासना को दूर करने वाली है। मूल्य २)

पसलीनी——बालकों के डब्बा अर्थात् पसली रोग के वास्ते यह औषधि अति गुणकारी है। मू० ३२ गोली ४), नमूना १)

सरसोब——इस औषधि को गले में बांधा जाता है। बच्चों के दांत आसानी से निकलते हैं। मू० १)

मुश्केबेद——मृगी रोग प्रायः बालकों को हो जाता है । बड़ा दुष्ट रोग है। ईश्वर इस से रक्षा करे। इस औषधि से प्रायः १४ दिन में आराम आता है। मू० १४ गोली २)

बाल- विरेचन—बालकों को सहल और सुगमता से दस्त होता है। मूल्य ६४ गोली १), नमूना ८ गोली =)

काली दूर—यह औषधि काली खांसी के लिये परीक्षित है। मू० १६ गोली ॥)

भयानक रोग आतशक व सोज़ाक

उसके दर्जे, और उस पर जो औषधियां देशोपकारक औषधालय में वर्ती जाती हैं, उनमें से कुछ लिखते हैं

आतशक—उपदंश कठिन रोग है। यदि लापरवाही की जाय, तो पीढ़ियों तक पीछा नहीं छोड़ता उपदंश नर तथा मादीन के भेद से दो प्रकार का होता है। नर उपदंश में गहरे घाव केवल लिंग पर होते हैं, मादीन आतशक का विष रक्त में प्रविष्ट हो जाता है और शरीर पर फूट पड़ता है। इस का पहला घाव साधारण होता है। इसके तीन दरजे होते हैं। पहिले दर्जे में घाव केवल जननेंद्रिय पर होता है। दूसरे में शरीर पर काले दाग, ताम्र रंग की फुंसियां और छोटे २ घाव आदि निकलते हैं। तीसरे दर्जे में हड्डी तक प्रभाव चला जाता है। बड़े २ घाव कुष्टवत होते हैं। आतशक के वास्ते कई औषधियां तैयार रहती हैं। साधारण रूप से यह हैं। अपनी अवस्थानुसार मंगवा लें। या सब वृत्तान्त १) फीस के साथ आने पर हम स्वयं निश्चित करते हैं।

उपदंशौषधि नं. १३—उपदंश नर तथा मादीन को १४ दिन में आराम करती है। अव्वल दर्जे में अकसीर है। दूसरे दर्जे में भी गुणकारी है। मू० ४), आधी २),

उपदंशौषधि नं. १४—इससे २० या अधिक से अधिक ४० दिन के भीतर आराम आता है। दर्जा अव्वल में अद्वितीय है। मू० ४० गोली ४)

उपदंशौषधि नं. १६ (उपदंश विरेचन)—जब कि रोग जीर्ण हो चुका हो, या ऐसा दुःसाध्य हो, कि आराम न आता हो, तो पहिले जुल्लाब लेना उचित होता है। जब असूज, कार्तिक या चैत्र फाल्गुण के उपदंश के फूटने का भय हो तो ऋतु के आरम्भ में यह विरेचन ले लें। मू० ६ माशा १)

उपदंशौषधि नं. १७—यह औषधि द्वितीय तृतीय दर्जा उपदंश दुःसाध्य जीर्णोपदंश के घाव, फोड़ा, फुंसी, व्रणादि को हित कर है, तालू छिद्र को भी गुणकारी है। नासूर को दूर करती है। मू० ६४ गोली ४), ३२ गोली २)

सारसारिष्ट मिश्रित—बहुत सी वैद्यक औषधियों का संग्रह चम्बल, दाद कृष्णदाग़, ताम्रवर्ण, धप्पड़ खुजली, आदि व अन्य किसी भी रक्तदोष को दूर कर के शरीर को कुन्दनवत करता है। मू० ३ औंस २), नमूना ।=)

सोजाक—सोज़ाक में पहिले जलन व पीड़ा होती है, नितान्त कष्ट होता है। दूसरे दर्जे में पीप आना आरम्भ होती है, कुर्रह हो जाता है। जलन धीरे २ बन्द हो जाती है और केवल पीप जाती है वा तार से निकलते हैं। इस से भी बढ़ जावे तो, तीसरे दर्जे में मुत्रावरोध हो जाता है मूत्र की नाली संकीर्ण हो जाती है। कभी २ मूत्र रुक जाता है। तीसरे दर्जे में पहुचा हुआ सोज़ाक बड़ी मुश्किल से दूर हो सकता है और जीर्ण हो जावे तो जाता ही नहीं सोजाक के वास्ते बहुत सी औषधियां तैयार रहती हैं। अवस्थानुसार दी जाती हैं। साधारणतः यह हैं:—

औषधि सोजाक नं. १ (सोजोशाफ)—प्रथम दर्जे में रामवाण का काम देती है। २४ घंटे के भीतर जलन दूर होती है। कष्ट कम होता है, थोड़े दिनों में पूर्ण लाभ होता है। मू०४ ड्राम १)न०।)

औषधि सोजाक नं. २ (चिनाक)—बड़े ही अनुभवों के पश्चात् हमारा स्वयं निर्माणकृत यह योग अकसीर सोज़ाक व कुर्रह है जो कि सोज़ाक की प्रत्येक अवस्था में गुणकारी है। दाह भी हो, पीप हो या दोनों मिले हुए हों, सबको अकसीर है। शुक्रमेहादि को हितकर है। मू० ६० गोली ४), नमूना १५ गोली १)

औषधि सोजाक नं. ३—यह औषधि केवल कुर्रह अर्थात् पीप जाने पर दी जाती है। एक ही दिन के भीतर पीप बन्द होनी आरम्भ होती है। इसके अतिरिक्त उपदंश को हितकर हैं। मू० २), नमूना ।)

अर्श, प्लीहा, हृदय, यकृत, उदर आदि की औषधियां ।

यूं तो अर्श (बवासीर) ६ प्रकार की होती है, परन्तु बड़े दो ही भेद हैं रक्तार्श व वातार्श । कभी पैतृक भी होती है, जो कष्ट साध्य है । प्रसिद्ध औषधियां लिखी जाती हैं ।

अर्शौषधि न. ३—यह खूनी व बादी दोनों को हितकर है । मूल्य ४० गोली २), नमूना ।)

अर्शौषधि नं. ७—यह विशेष कर रक्तार्श को लाभदायक है । ७ दिन के भीतर रक्त बन्द हो जाता है और ३ सप्ताह में पूर्णतया लाभ होता है । मूल्य ४० गोली २), नमूना ।)

अर्शौषधि नं. ९—यह औषधि बलवर्द्धक, शीघ्रपतन, स्वप्न-दोष, शुक्रमेहादि को भी लाभदायक है । विशेष कर रक्तार्श के लिए उपयोगी है । मू० ३० गोली ५), ६ गोली १)

अर्शौषधि नं. १०—बवासीर खूनी बादी को विशेष कर जब कि कोष्ठवद्धता साथ रहती हो, अद्वितीय है । मू० २), न० ।)

प्लीहा—मलेरिया ज्वर अधिक देर रहने से तिल्ली बढ़ जाती है । ज्वर हट जाने पर भी तिल्ली बनी रहती है । कभी उदर की अन्य खराबियों से तिल्ली बढ़ती है । निम्नलिखित औषधियां प्रायः देते हैं ।

प्लीहोदरौषधि नं. २—यह औषधि उस समय दी जाती है, जबकि आमाशय निर्बल हो, तिल्ली साधारतः बड़ी हो । मू०२), न० ।)

प्लीहोदरौषधि नं. ३—पौष्टिक है चेहरे को शीघ्र लाल करती है, बल को बढ़ाती है, अग्नि सदीपन है । मलेरिया के पुराने कीटाणु दूर होते हैं सब प्रकार की तिल्ली दूर होती है । मात्रा २ रत्ती । मूल्य ६ माशा ४) रु०, १॥ मा० १) रुपया

प्लीहारि रस नं. ५—प्लीहा के साथ कोष्टवद्धता हो या तिल्ली बहुत ही पुरानी हो तो यह औषधि गुणदायक है । दूसरी किसी भी औषधि के खाते समय इस औषधि को जारी रक्खा जा सकता है । मूल्य ६० गोली १), नमूना ।)

प्लीहोदरौषधि नं० ६—उस दशा में विशेष रूप से हितकर है, जब कि ज्वर भी साथ हो या कभी २ हो जाता हो। यकृत बिकार को भी लाभ करती है। मूल्य १) नमूना।)

हयात अफ़ज़ा—हृदय की निर्बलता और धड़कन के वास्ते अनुपम औषधि है। मास में आराम आता है। मू० २), नमूना।=)

हृदार्णवरस—हृदय की निर्बलता, धड़कन, हृदय के भेद को हितकर है। मू० १६ गोली २)

मण्डूर वटिका—यरक़ान पांडुरोग यकृत निर्बलता इत्यादि के लिए अक्सीर है। मूल्य १६ गोली १)

शर्क्रारि—मधुमेह, जिस में शक्कर आंती है विशेष कर उसके लिए हितकर है मू० ४), नमूना १)

लाल जवाहर—उदर पीड़ा, गुड़गुड़ाहट, वमन, विषूचिका अतिसारादि रोगों को हितकर है। पाचनशक्ति खूब बढ़ती है। मू० २), आधी शीशी १), नमूना।)

दीपाचन—पाचन के लिए अक्सीर है। कफ़ व वादी को दूर करने वाली भोजन को पचाने वाली, भूख को बढ़ाने वाली, उदरशूल, अफरा, वमन इत्यादि को दूर करने वाली है। मूल्य ॥)

एलवासा—शूल, पेट की बादी, गुड़गुड़ाहट, अफारादि को हितकर, क्षुधावर्द्धक है, कोष्ठबद्धता दूर करता है। मू० १), न० =)

दत्तविरेचन—यह गोलियां जुलाब के लिए अनुपम हैं, एक गोली रात को सोते समय खाने से प्रातः खुल कर १-२ शौच हो जाते हैं। मूल्य ६४ गोली १) रुपया नमूना =)

आराम जान—इससे विरेचन नहीं होता, केवल शौच खुल कर आता है, और प्रतिदिन खाने से अंत्रियों का बल बढ़ कर सतत कोष्टबद्धता दूर हो जाती है। मूल्य ३२ गोली १), १६ गोली ॥)

श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्यरचित सर्व साधारण के उपयोगी स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

काम व रतिशास्त्र (प्रथम भाग)—इसके भीतर २४५ हस्त लिखित चित्र और ५० फ़ोटो के चित्र हैं। स्त्री और पुरुष के सम्भन्ध पर आज तक ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं लिखी गई है। मू० ६), उर्दू ५)

क्या हम लड़का या लड़की अपनी इच्छानुसार उत्पन्न कर सकते हैं ?—इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति करने के विषय में आज तक के वैद्यक, यूनानी, डाक्टरी, कुल अनुसन्धानों का पृथक २ वर्णन है। मू० ।)॥, उर्दू =)॥

घर का वैद्य—घरों में बूढ़े, जवान अथवा बालक स्त्री पुरुषों को होने वाले सम्पूर्ण छोटे बड़े रोगों और अचानक होने वाली घटनाओं के लिए प्रयोग बता देती है। मू० ।)॥, उर्दू =)॥

क्या मैं स्वस्थ हूं—आज तक हिन्दी भाषा में कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई। मर्द, औरत, बच्चा, बूढ़ा, जवान, तन्दुरुस्त बीमार हर एक को ऐसी पुस्तकों के नियमों को जानना चाहिए। मू० ।।।), उर्दू ।≈)॥

मीठी निद्रा—जीवन का तृतीयांश से अधिक निद्रा में व्यय होता है पढ़ो और आयु को बढ़ाओ। मू० १), उर्दू ।।।)॥

स्वास्थ्यरक्षा के दस नियमों का वर्णन—यह एक अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। साधारण नियमों के पालन से स्वास्थ्य प्राप्त होता है और बुढ़ापे में भी जवानी का आनन्द आ सकता है। मू० ॥।), उर्दू ।≈)॥

ऋतु चर्या—इसमें ६ ऋतुओं का सविस्तर वर्णन, इनका मनुष्यों पर प्रभाव, ऋतु अनुसार रोगादि का वर्णन और इलाज रहन सहन खाने पीने, पहिनने के नियम उत्तमता से वर्णन किए हैं। मू० १।), उर्दू ।।।)॥

पुस्तकें मिलने का पता—अमृतधारा लाहौर।

भोजन और स्वास्थ्य—भोजन सम्बन्धी अज्ञान के कारण वर्णन है। मू० १।), उर्दू ।॥)॥

दूध और दूध की वस्तुयें—इसमें दूध और दूध से बनने वाली तमाम वस्तुओं का वर्णन है। मू० १॥), उर्दू १।)

मेरे डाक्टर चचा ने मुझे गृस्हथ की शिक्षा कैसे दी—एक बालक को उसके डाक्टर चचा ने गृहस्थ के कार्यों की शिक्षा बहुत ही उत्तम प्रकार से दी है। मू० ।), उर्दू –)॥

वीर्य—इसमें वीर्य के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान, स्त्री व पुरुष की जननेंद्रियों का आवश्यक वर्णन और स्त्री के वीर्य सम्बन्धी पूर्ण व्याख्या है। मू० ॥=), उर्दू ।=)॥

हर्ड़—हर्ड़ का सम्पूर्ण व्याख्या और सेवन बिधि दरज ह। मू० ।), उर्दू –)॥

ब्रह्मी—इसमें ब्राह्मी का पूरा वर्णन करके सेवन करने के कई उपाय लिखे गए है। मू० –), उर्दू)॥

शीघ्रपतन—सविस्तार चिकित्सा और सर्व प्रकार के योग भी दिए गए हैं। मूल्य ।=)॥, उर्दू ।–)॥

मलेरिया ज्वर का वर्णन—मलेरिया के विषय में आज तक का अनुसन्धान, रोग लगने की विधि, उस के कारण लक्षण दिए हैं। मूल्य ॥=), उर्दू ।–)॥

स्थानाभाव के कारण पुस्तकों के नाम कीमतें लिखते हैं

डाक्टर लुई कोहनी के चार स्नान =)॥, भारतवासियों की शारीरिक निर्बलता ॥।)॥, प्लेग प्रतिबन्धक ॥=), प्रसूतकाल ॥=) शिशुपालन १), रस हृदय तन्त्र ॥), कोष्टवद्धता ॥।) सोज़ाक ॥।), हिस्ट्रिया ॥), दोषज्ञान ॥।), शीतला१), इन्फ्ल्यूएञ्जा ॥),विषचिकित्सा प्रथम भाग ।≡), विष चिकित्सा द्वितीय भाग १।=), प्रदर रोग ।–), गुप्त प्रकाश २॥)

पुस्तकें मिलने का पता: अमृतधारा लाहौर।

१००००-२—३१


AMRITDHARA
अमृत धारा
امرت دھارا
PARTICULARS FROM - AMRITDHARA, LAHORE

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या